सत्य।

कबीरसागर-

सप्तम खंड-

बोधसागर।

भारतपथिक कबीरपंथी-

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित।

जिसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापेखानेमें

छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण-मुंबई.

सब हक्क यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

सत्य नाम।

श्री कबीर साहिब।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर केवल नाम, अमोल नाम सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाक नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दया नामकी, वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे।

द्वादशस्तरंगः।

श्रीग्रन्थ निरञ्जनबोध।

ज्ञानी वचन चौपाई।

काल निरंजन निर्गुण राई। तीन लोक जिहिं फिरे दुहाई॥
सात द्वीप पृथ्वी नौ खण्डा। सप्त पताल इक्कीस ब्रह्मण्डा॥
सहज सुन्नमें कीन्ह टिकाना। काल निरंजन सबहींने माना॥
ब्रह्मा विष्णु और शिव देवा। सब मिल करें कालकी सेवा॥

चित्रगुप्त धर्म बरियारा। लिखनी लिखें सकल संसारा॥
चौरासी लाख अरु चारों खानी। लिखनी लिखे सकल सब जानो॥
पशु पक्षी जल थल विस्तारा। बन पर्वत जल जीव विचारा॥
काल निरंजन सबपर छाया। पुर्षे नामको चिह्न मिटाया॥
सत्तर युग ऐसेही चल गयेऊ। पुर्षे शब्द एक चितमें ठयेऊ॥

पुर्षे बचन।

तबहीं पुर्षे ज्ञानी सों कहऊ। धर्मराय अति प्रबल जो भयऊ॥
यह तो अंश भया बरियारा। तीन लोक जीव कीन्ह अहारा॥
ताहि मारके देव उड़ाई। जग जीवनको लेव छुड़ाई॥

ज्ञानी बचन। साखी।

दोहा-करि प्रणाम ज्ञानी चले, करन हंसके काज।
जोपे काल न मानि है, तुम्हीं पुर्षेको लाज॥

चौपाई।

मान सरोवर ज्ञानी आई। काल कठिन तब छेकी धाई॥
काल कठिन गर्जे बहु बारा। मस्तिक साठ सूठ बरियारा॥
सत्तर योजन गर्जे दंता। प्रलय जो कीन्हीं काट अनंता॥
कान एक आँखें चौरासी। औ मुख आठ हाथ लिये फांसी॥
छत्तीस नाम ताहि पुन जानी। बोलें बचन बहुत इतरानी॥
तीन दंत पाछेको फेरी। यहि विधि तीन लोक किये जेरी॥
एक दंत पाताल चलावा। तहां जाय वासुकको खावा॥
दूजो दंत पृथ्वी चलि आई। देव ऋषी जग दैत्यन खाई॥
तीजो दन्त गयो आकाशा। चन्द्र सूर्य खाये कैलासा॥
ब्रह्मा वेद पढ़त तहां आये। शंकर ध्यान करत तब खाये॥
तीन्हें खाय विष्णुको धाई। सकल खाय पुनि धूर उड़ाई॥
गर्जे दन्त आगे सम भाई। तीन लोक खाई दुनियाई॥

ज्ञानी वचन ।

ज्ञानी देखे दृष्टि पसारा । यातें नाहिं बचे संसारा ॥
ज्ञानी बोल शब्द बरियाई । तुंही काल खाइ दुनियाई ॥

निरञ्जन वचन । साखी ।

दोहा ।

जाहु ज्ञानी घर आपने, मानों वचन हमार ।
तीन लोक पुर्पाई दिये, स्वर्ग पताल संसार ॥

ज्ञानी वचन । साखी ।

चौपाई ।

बोले ज्ञानी शब्द अपारा । मोकहँ दीन्ह पुर्ष टकसारा ॥

साखी ।

मैं जो पठयो पुर्षको, करन हंसके काज ॥
कालहि मारसिंगार हों, दीन्ह सकल मोहे साज ॥

चौपाई ।

मारा काल शब्दका झारा । टूटे दन्त न करै पसारा ॥

निरञ्जन वचन ।

तबै निरञ्जन बोले बानी । कैसे हंस छुडाई ज्ञानी ॥
जगके माह कीन्ह हम वासा । पशु पक्षी जड थलमें आसा ॥
तीन सो साठ पैठ हम लाई । तामें सकल जीव उरझाई ॥
जे दिनते हमने पैठ लगाई । दिन २ उरझे सुझंत नाहीं ॥
तापर काम क्रोध हम डारी । तृष्णा सकल जीवकहँ मारी ॥
इनमें जीव बन्धे सब झारी । कैसे हंसहि लेउ उबारी ॥
तापर कीन्हो एक हम काजा । पाप पुण्य थापे हम राजा ॥
शुभ अरु अशुभ दोइ दंड साजा । ऐसे अटल निरञ्जन राजा ॥

ज्ञानी बचन।

सत्त शब्द हम बोले बानी। बचन हमारे छूटे प्रानी॥
गहै शब्द जब मन चितलाई। भाजे काल जीव लेव छुडाई॥

काल बचन।

तबै काल अस बोले बानी। सकल जीव बस हमरे ज्ञानी॥
तीनसो साठ पैठ उझेरा। कैसे हंसन लेव उबेरा॥
गंगा जमुना सरस्वती जानी। पुष्कर गोदावरी कुछका मानी॥
बद्री केदार हम का ठाऊं। जहां तहां हम तीरथ लगाऊं॥
मथुरा नगर उत्तम जो जानी। जगन्नाथ जस बैठे ध्यानी॥
रेवल पुन कीन्ह ठिकाना। पुष्कर क्षेत्र आय जम थाना॥
हिङ्गुलाज जिन जैहै सोई। कालका नगरकोट महँ होई॥
गढ गिरनार दत्तको थाना। ताहि घेर जम बैठ निदाना॥
कमरू माह कमिक्षा देवी। नीमसार मिसरख जम लेवी॥
नगर अजुध्या रामहिं राजा। सैहैं दइत बांध सब साजा॥
याही पैठ जग जीव भुलाई। किहि विधि हंस देव मुक्ताई॥

ज्ञानी बचन।

तव ज्ञानी अस बोले बानी। जमते जीव छुडावहुँ आनी॥
धुर्व नामको कहुँ समझाई। जम राजा तब छोड पराई॥
घाट बाट बैठे उरझेरा। हमरे शब्दतें होय निबेरा॥
सुना रे काल दुष्ट अनयाई। शब्द संग हंसा घर जाई॥

निरञ्जन बचन।

का ज्ञानी देहो अधिकारा। हमरी नाहिं छूटे जम जारा॥
पांच पचीस तीन गुण आही। यह ले सकल शरीर बनाही॥
तामें पाप पुण्यका वासा। मन बैठे ले हमरी फांसा॥

जहां तहां सब जग भर्मावे। ज्ञान संध कछु रहन न पावे॥
एक शब्दकी केतक आसा। हमरे हैं चौरासी फांसा॥

ज्ञानी वचन।

बोले ज्ञानी शब्द विचारी। छूटे चौरासी की धारी॥
छूटे पांच पचीस गुन तीनो। ऐसो शब्द पुर्ष मुहि दीन्हो॥

निरञ्जन वचन।

हे ज्ञानी का करौं बड़ाई। हमते नाहं छूट जीव जाई॥
इतने जुग भये का तुम देखा। ज्ञानी हंस न एकै पेखा॥
का तुम करो का शब्द तुम्हारा। तीन लोक प्रलय तर डारा॥
साधु सन्त हम देखी रीती। प्रलय परे सकल सब जीती॥
कर्म रेख बाँधे सब साधा। सुर नर मुनि सकलो जग बाँधा॥

ज्ञानी वचन।

ज्ञानी कहैं काल अन्याई। शब्दबिना तू खाय चबाई॥
अब कैस खैहो नटपारा। पुर्ष शब्द दीन्हीं टकसारा॥
जगके जीवन लेऊँ उबारा। कर्म रेख तोरो घर न्यारा॥
पांच पचीस और गुन तीनों। इतने मोर हंस लेउँ छीनो॥
पांच जनेकी मेटौं आसा। पुर्ष शब्द भाषौं विश्वासा॥
शुभ अरु अशुभ का करे निवेरा। मेटौं काल सकल उरझेरा॥

निरञ्जन वचन।

तिर्गुन काल तब बोले बानी। उरझे जीव सकल जमखानी॥
कैसे के तुम शब्द पसारो। कौनसी विधितुम जीव उबारो॥
ऐसे जीव सकल हैं करनी। कैसे पहुँचैं पुर्षके सरनी॥
जग में जीव क्रोध विकरारा। कैसे पहुँचैं पुर्षके द्वारा॥
क्रोधी जीव प्रेत अभिमानी। घरि है जन्म नर्ककी खानी॥

लोभी हाये सर्प विकारा। माटी भखे जीव अधिकारा॥
लोभ जन्म मूकर अवतारा। कैसे पावे मोक्ष को द्वारा॥
विषई विषे सब विषकी खानी। ए सब कहिये जम सहदानी॥
ज्ञानी करे कछु बरियारा। हमते कीन्ह सकल निवारा॥
जोइं ज्ञान होय ज्ञानी। काम क्रोध ते होय नियारा॥
तृष्णा लोभहिं देय बहाई। विषे जन्म सब दूर पराई॥
उनको ध्यान शब्द अधिकारी। काम क्रोध सब होय नियारी॥
नाम ध्यान हंसा घर जाई। कहा दूत जस करौं बड़ाई॥
उनपे जम की परे न छाहीं। तासें हंसा लोकहिं जाई॥

निरञ्जन वचन।

कहैं निरञ्जन सुन हो ज्ञानी। कथि हौं ज्ञान तुम्हारी बानी॥
जुक्त महातम सबे बताऊं। नाम तुम्हारे पन्थ चलाऊं॥
तुम तो एक पन्थ प्रंगासा। हम दश पन्थ काल जग फांसा॥
जग के जीव सबे भर्माऊं। ज्ञानवंत को कर्म दृढाऊं॥
मार जीव को करे अहारा। कथे ज्ञान तुम्हरी टकसारा॥
करे कर्म विष बस भाई। चार वर्ण ले एक मिलाई॥
कुलकों त्याग होयसो न्यारा। चार वर्णको एक विचारा॥
ज्ञान हमारा रहे तन छाई। ते सब जीव काल ले खाई॥
वेषबरन की करिहैं हांसी। ते जीवन पर हमारी फांसी॥
फिर २ आवे जमकी खानी। वे सब सरन हमारी ज्ञानी॥
कैसें पहुँचे पुर्षके सरनी। ज्ञान संधि हमहू दे बरनी॥

ज्ञानी वचन।

कहे ज्ञानी सुन कैल विचारा। हंस हमार होय नहिं न्यारा॥
निसवासर रहे लौ लीना। शब्द विचार होय नहिं भीना॥
हंस हमार शब्द अधिकारा। पुर्ष प्रताप को करे सम्हारा॥

नाम जपै अरु सुतैं उखाई। मिले कर्म लागे नहिं धाई॥
शब्द मान है शब्द सरूपा। निश्चै हंसा होय अनूपा॥
उनको नाम भक्ति की आसा। ताते निरख चले विश्वासा॥

निरञ्जन वचन।

ज्ञानी मोर अपरबल ज्ञाना। वेद किताब भरम हम साना॥
इन को माने सब संसारा। काशि में गंगा मुक्ती द्वारा॥
देहीं दान जो उतरे पारा। ऐसे सुमृत कहैं विचारा॥
येहीं विधि जग जीव भुलाई। जरा मरन सब बंध बँधाई॥
सूतक पातक वेद विचारा। परछ वेदसे करहिं सम्हारा॥
एकादशी मुक्ति की भाई। जोग जग्य करवे अधिकाई॥

ज्ञानी वचन।

सुनहु काल ज्ञानकी सन्धी। छोरों जीव सकलकी फन्दी॥
जब निज बीरा हंसा पावे। जोग बर्त तप सबै नसावे॥
वेद किताबकी छोडे आसा। हंसा करे शब्द विश्वासा॥
ताके निकट काल नहिं आवे। निज बीरा जा सुतै लगावे॥
बीरा पाय भये वटपारा। शब्द सन्ध परखे टकसारा॥
जोग बरत तपहूँ है छारा। अद्भुत नाम सदा रखवारा॥
जेते हंस सरन हम आई। भक्ति करे तो मिटे धुआई॥

निरंजन वचन।

अब तुम ज्ञानी भली सुनाई। मेरो उरझो सुरझो नहिं जाई॥
जो जीवनको भक्ति दृढै हो। शब्द भेद तुम ताहि लखै हो॥
पावे शब्द होय अभिमानी। कैसे ठेके जैहे सो प्रानी॥
शब्द पाय नहिं करे विचारा। कैसे पहुँचे लोक तुम्हारा॥
शब्द पाय कर कर्म जगावे। कैसे ज्ञानी निज घर पावै॥
शब्द पाय कर चले न राहा। ज्ञानी कहाँ मुक्ति की थाहा॥

ज्ञानी वचन।

तब ज्ञानी बोले मुख बानी। सुनिये काल निरञ्जन आनी॥
हंसा भक्ति जो करे हमारो। राखौं सदा शब्द निज धारी॥
काम क्रोध अहङ्कार बिकारा। इन को तज है हंस हमारा॥
शब्द हमारे छोडै फन्दा। पहुँचै लोक मिटै जमदन्दा॥
बीरा नाम पुर्ष को सारा। निर्मल हंस होय उजियारा॥
आवागवन बहुर नहिं होई। काल फांस तज न्यारा होई॥
पहुँचै हंस पुर्ष दर्बारा। अरे काल तोको तज डारा॥

निरञ्जन वचन।

निरंजन बोले गर्भ सों भाई। मोरे फंद टोर को जाई॥
कर्म जंजीर बंधा संसारा। जो पुन हम जग जाल पसारा॥
तीन लोक जोइन औतारा। आवागवन में फिर २ पारा॥
उपजे विनसै रहे भुलाई। देवऋषी मुनि सकल जोखाई॥
सिद्ध साध अरु बडे जो ज्ञानी। बांध २ कर तोपि समानी॥
कर्म रेख तें कोइ न न्यारा। तीन देव सुर असुर पसारा॥

ज्ञानी बचन।

कहे ज्ञानी सुन काल लबारा। करिहौं टूक जञ्जीर तुम्हारा॥
हंसन लैहौं तुर्त उबारी। पुर्ष शब्द दीन्हों मोहे भारी॥
ताहि हुक्म सों मारों तोही। सब संसार तू खाया द्रोही॥
खण्ड २ कर तोरों बाना। मारों काल करों पिसमाना॥
हंसन की मैं करों मुक्ताई। बहुरन जन्महि भौजल आई॥
पुर्ष हंस नोतम है अंशा। ते जग प्रगट कहावै वंशा॥
तिनके सरन हंस जो आई। कोट कर्म सब देयँ बहाई॥
हंस संधि लखि होवें न्यारा। चलते पावे नहिं बटपारा॥

निरञ्जन वचन।

मानों ज्ञानी वचन तुम्हारा। हंस ले जाव पुर्ष दर्बारा॥
चौदह काल जगत में म्हारे। घाट बाट बैठे रखवारे॥
सुर नर मुनि आवें वहि घाटा। दशहि ओर जो जोवे बाटा॥
दुर्ग जगाती बड़ा सिरदारा। बिना जगात कोई उतर न पारा॥
भौजल नदी घाट नहिं थाहू। उतरन काज कहैं सब काहू॥

ज्ञानी वचन।

कहैं ज्ञानी सुन काल हुआऊ। हमरे हंस की बात सुनाऊ॥
बखतर ज्ञान शब्द हथियारा। मार दूत को चले अगारा॥
कोट सिद्ध तेज होय हंसा। जब परवाना आवै बंसा॥
वंश छाप जब पावहि प्राणी। ताहि न रोकै दुर्गा रानी॥
कहा काल तुम करो विचारा। हंस हमार उतारें हैं पारा॥
सार शब्द है हंस बहोरी। ता चढि जाय काल मुख तोरी॥
संधि न पावे ते बटपारा। हंसा पहूँचैं लोक दुआरा॥

निरंजन वचन।

तुमको काल निरञ्जन राई। हे ज्ञानी का करों बड़ाई॥
पाँव पताल शीस आकाशा। सोरह योजन अग्नि प्रगासा॥
गर्जे काल महा बिकरारा। सत्रह लाख लो पाँव पसारा॥
लपके जीभ जिम टूटे तारा। जिम बिजली चमकै अँधियारा॥
सूंढ बढाय दंत अति बाढा। मध्य घेर ज्ञानी कह ठाढा॥
हमरे पौरुष हम बरियारा। तुम ज्ञानी का करो हमारा॥

ज्ञानी वचन।

ज्ञानी पुर्ष शब्द कियो जोरा। पकड़ सूँढ दांत गहि मोरा॥
मारेउ शब्द पांव कर पेली। तोर सूँढ समुद्र गहि मेली॥
पुर्षरूप तबही पुन धारा। जौन सरूप काल औतारा॥

ज्ञानी वचन ।

तब ज्ञानी बोले मुख बानी । सुनिये काल निरञ्जन आनी ॥
हंसा भक्ति जो करे हमारी । राखों सदा शब्द निज धारी ॥
काम क्रोध अहङ्कार विकारा । इन को तज है हंस हमारा ॥
शब्द हमारे छोड़ै फन्दा । पहुँचै लोक मिटै जमदन्दा ॥
बीरा नाम पुर्ष को सारा । निर्मल हंस होय उजियारा ॥
आवागवन बहुर नहिं होई । काल फांस तज न्यारा होई ॥
पहुँचे हंस पुर्ष दर्बारा । अरे काल तोको तज डारा ॥

निरञ्जन वचन ।

निरंजन बोले गर्भ सों भाई । मोरे फंद टोर को जाई ॥
कर्म जंजीर बंधा संसारा । जो पुन हम जग जाल पसारा ॥
तीन लोक मोहन औतारा । आवागवन में ।फिर २ पारा ॥
उपजे विनसे रहे भुलाई । देवऋषी मुनि सकल जोखाई ॥
सिद्ध साध अरु बड़े जो ज्ञानी । बांध २ कर तोपि समानी ॥
कर्म रेख तें कोइ न न्यारा । तीन देव सुर असुर पसारा ॥

ज्ञानी बचन ।

कहे ज्ञानी सुन काल लबारा । करिहौं टूक जञ्जीर तुम्हारा ॥
हंसन लैहौं तुर्त उबारी । पुर्ष शब्द दीन्हों मोहे भारी ॥
वाहि हुक्म सों मारों तोही । सब संसार तू खाया द्रोही ॥
खण्ड २ कर तोरों बाना । मारों काल करों पिसमाना ॥
हंसन की मैं करों मुक्ताई । बहुरन जन्माहि भौजल आई ॥
पुर्ष हंस नोतम है अंशा । ते जग प्रगट कहावै वंशा ॥
तिनके सरन हंस जो आई । कोट कर्म सब देयँ बहाई ॥
हंस संधि लखि होवें न्यारा । चलते पावे नहिं बटपारा ॥

निरञ्जन बचन।

मानों ज्ञानी बचन तुम्हारा। हंस ले जाव पुर्ष दरबारा॥
चौदह काल जगत में म्हारे। घाट बाट बैठे रखवारे॥
सुर नर मुनि आवें वहि घाटा। दुशाह और जो जोवे बाटा॥
दुगें जगाती बड़ा किरदारा। बिना जगात कोई उतर न पारा॥
भोजल नदी घाट नहिं थाहू। उतरन काज कहैं सब काहू॥

ज्ञानी बचन।

कहें ज्ञानी सुन काल सुभाऊ। हमरे हंस की बात सुनाऊ॥
बखतर ज्ञान शब्द हथियारा। मार दूत को चले अगारा॥
कोट सिद्ध तेज होय हंसा। जब परवाना आवे बंसा॥
वंश छाप जब पावहि प्राणी। ताहि न रोके दुर्गा रानी॥
कहा काल तुम करो बिचारा। हंस हमार उतारें हैं पारा॥
सार शब्द है हंस बहोरी। ता चढि जाय काल मुख तोरी॥
सँधि न पावे ते बटपारा। हंसा पहूँचें लोक दुआरा॥

निरंजन बचन।

तुमको काल निरञ्जन राई। हे ज्ञानी का करों बडाई॥
पाँव पताल शीस आकाशा। सोरह योजन अभि प्रगासा॥
गर्जे काल महा बिकरारा। सत्रह लाख लो पाँव पसारा॥
लपके जीभ जिम टूटे तारा। जिम बिजली चमके अँधियारा॥
सूंढ बढाय दंत अति बाढा। मध्य घेर ज्ञानी कह ठाढा॥
हमरे पौरुष हम बरियारा। तुम ज्ञानी का करो हमारा॥

ज्ञानी बचन।

ज्ञानी पुर्ष शब्द कियो जोरा। पकड सूँढ दांत गहि मोरा॥
मारेउ शब्द पांव कर पेली। तोर सूँढ समुद्र गहि मेली॥
पुर्षरूप तबही पुन धारा। जौन सरूप काल औतारा॥

निरञ्जन वचन।

मया आधीन दोइकर जोरी। तुम सतपुरुष सरन हम तोरी ॥
तुमसों बाढ़ बुद्धि हम धारा। अब तुम करहु मोहिं उद्धारा ॥
बालक कोट भांति गरियावत। मात पितामन एक नहिं आवत ॥
तिहिं पुर्ष दीन्ह मोहे राजू। औ पुन दीन्ह सकल मोहिं साजू ॥
तिहिं पर हमने गाउं बसावा। लीन्ह सुन्न ठिकान बनावा ॥
तहां हम साहब जाय रहाई। बिन आज्ञा कछु नाहिं कराई ॥
अबलग साहेब मैं नहिं चीन्हा। सत्त पुर्ष तुम दर्शन दीन्हा ॥
दोइ कर जोर चरणचित लावा। धन्य भाग हम दर्शन पावा ॥
अब मोहिं साहेब भेद बताई। पाऊं चिह्न हंस पहुँचाई ॥

ज्ञानी वचन।

सुन रे काल निरञ्जन राई। पुर्ष नाम है बीरा भाई ॥
जो हंसा चित भक्ति समाई। ताको खूट गहे मत कोई ॥

साखी।

जो निज बीरा पाय है, आवै लोक हमार।
ताको खूंट गहो मत, सुनो काल बटपार ॥

निरञ्जन वचन।

चौपाई।

सुनो गुसाईं विनती मोरी। बीरा पाय करै कछु औरी ॥
ज्ञान कथे अन्त चित वासा। आवागवन की राखों आसा ॥

ज्ञानी वचन।

सुनो निरञ्जन बचन हमारा। नहीं सत्त वह जीव तुम्हारा ॥

साखी।

जा घरतें जिव आइया, ताइ सुध गई खोय।
गोहराय कहों मैं जीवसों, जो शब्द पारखी होय ॥

निरंजन वचन।

चौपाई।

कहे काल तुम भली विचारी। संप देव हम कांध उतारी॥
उनके निकट दूत नहिं आई। साहब हंस देहों पहुँचाई॥

साखी।

साहिब सबको एक है, साहिबका कोइ एक।
लाखन मध्ये को मिले, कोटिन मध्ये देख॥

ज्ञानी वचन। साखी।

जाहु काल घर आपने, शब्द कहीं चितलाहु।
जो फिर सीस उठायहो, बांध रसातल जाहु॥

चौपाई।

जो पुन गह्यो हंसकी बांही। बांध रसातल पठाऊँ तोही॥

निरंजन वचन।

जब तुम रूप दिखावा मोही। तब हम पुरुष चीन्हा तोही॥
प्रथमे ज्ञानी हम नहिं जाना। बन्धु जान कीन्हा अभिमाना॥

ज्ञानी वचन।

धर्मदास तब सों हम आये। गढ रैदास मो धारा पाये॥
प्रथमहिं सतयुग लागा भाई। नृप हरचन्दभये तहाँ राई॥
तहां जाय शब्द गुहराई। जो चीन्हा सो लोक पठाई॥
सतयुग सत्तनाम मोरो नाऊं। देही धर हम मनुष्य कहाऊँ॥

धर्मदाससों वचन।

धर्मदास सुनि टेके पाई। तुव प्रताप सकल सुधि आई॥
काल चरित्र सकल हम जाना। पुर्व लीला सबही पहँचाना॥
जब आपुन आये भौमाहीं। हंस काज जो भयो अब भाई॥

श्री कबीर साहिब और निरंजनकी गोष्ठी समाप्त।

सत्यपुरुषाय नमः।

अथ श्रीबोधसागरे।

त्रयोदशस्तरंगः।

ग्रन्थ ज्ञानबोध।

कबीर वचन।

साखी--सत गुरु जीव प्रबोधके, नाम लखावै सार।
सार शब्द जो कोई गहे, सोई उतरि है पार॥

चौपाई।

भवसागर है अगम अपारा। तामें बुड गयो संसारा॥
पार लगन को सब कोई धावै। बिना नाम कोई पार न पावै॥
यह जग जीव थाह नहिं पावै। बिन सतगुरु सब गोता खावै॥
जग जीवों से कहो गुहराई। सतगुरु केवट पार लगाई॥
यह जग बूड गयो मँझधारा। सतगुरु भक्त भये भवपारा॥
सत्तनाम जो करे पुकारा। जब भव जल उतरेंगे पारा॥
सत्तपुरुष है अगम अपारा। ताको सब में कहों विचारा॥
आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा। निराधार महँ किया पसारा॥
ताहि पुरुष सुमरो रे भाई। तन छोडे जिवलोक सिधाई॥
कहै कबीर नाम गह सोई। भरम छोड भव पारहिं होई॥

साखी।

आदिब्रह्म हिय परखिये, छोडो भरम अजान।
कहैं कबीर जग जीवसे, गहिले पद निरवान॥

सोरठा।

भवसागरको पार, बिना नाम उतरे नहीं।
गहिलेव नाम अपार, कहँ कबीर सब जीवसे॥

चौपाई।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। आदि नाम मैं कहों सब पासा॥
यहि जगसे मैं कहा चिताई। अज्ञानी नहिं माने भाई॥
जौन जीव को ज्ञान न होई। कहे बचन माने नहिं सोई॥
और कहे जुलहा मति हीना। ब्रह्मा विष्णु शिवराम न चीन्हा॥
ऐसे भक्त न देखे भाई। ब्रह्मा विष्णु शिवहि बिसराई॥
जिन्हा हर का मरम न पाई। जुलहा भक्ति न जाने भाई॥
ब्रह्मा विष्णु शिव जग उपजाई। इन तीनोंकी यह दुनियाई॥
रावन छली राम की नारी। रामचन्द्र कीन्हा रण भारी॥
हर सीता को रावन लाये। राम लंकपति चिह्न मिटाये॥
कहाँलों वरणों वार न पारा। तीन देवका सकल पसारा॥

साखी—रामचंद्र वर्णन करूं, त्रयलोकों है नाथ।
जग जिव कहें समझायके, सुनिये जुलहा बात॥

चौपाई।

ऐसे सब जग कहै गुहराई। धर्मदास मैं तुम्हें सुनाई॥
आदि नाम मैं भाखा सुनाई। यह जग जीव न चेता भाई॥
आदि नाम सबको दरसाया। जग जीवोंको ज्ञान सुनाया॥
यह जुलहाको भेद न पाये। अज्ञानी क्यों रार मचाये॥
आदि नामकी सुधि बिसराये। मायामें सब जग लपटाये॥
सचा साहिबको नहिं पाये। राम कृष्ण जग ध्यान लगाये॥
ऐसे भूल गये संसारा। कैसे उतरें भव जल पारा॥
कहें कबीर गहो निज नामा। जब पहुँचे अमरापुर गामा॥
साहब पै जग परे न ध्याना। तिहुँ पुरकाल ठगो हम जाना॥

सब कोइ नाम गहो रे भाई। छोडो दुरगति औ चतुराई॥
भरम जाल मनही ना लावो। सत्तगुरुहमें ध्यान लगावो॥
दुनियामें भरमो मति हीना। जम घर जावगे नाम विहीना॥
यही मता हम जगहि लखाये। धर्मदास विरले जिव पाये॥

साखी–कहै कबीर सुन गायके, सुनो जगत यह ज्ञान।
नीचे त्रयलोकी रहत, ऊपर सतगुरु नाम॥

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। जग जीवोंकी कथा प्रकाशा॥
आदि नाम हम भाख सुनाया। मूरख जीव मरम नहिं पाया॥
राम कृष्ण जग कीन्हा भाई। तुम सुनियो मैं देउँ बताई॥
जगत कहै जुल्हा अज्ञानी। हरिहरका कछु भेद न जानी॥
नीच जात औ भक्त कहाई। हरि के दरस कबहूँ ना पाई॥
वेद पुराण गीता हम जाना। हम से नाहक करे बखाना॥
हमरो वेद कहै निज बाता। रामचंद्र समरथ है दाता॥
चार वेद ब्रह्मा ने ठाना। जुल्हा भूल गये अभिमाना॥
ब्रह्मा विष्णु से और न देवा। ऋषिमुनि करें सबै मिल सेवा॥
ले अवतार जीव जग आये। शालग्राम में सुर्त लगाये॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जग धाये। जुल्हा उल्टा ज्ञान चलाये॥
वेद शास्त्र में हमने जाना। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर माना॥
सार वेद में देखा भाई। रजगुण तमगुण सतगुण सांई॥
गीता भागवत पुस्तक नाना। निशिदिन जाप करें भगवाना॥
आदि भवानी तीनों देवा। इनकी सब मिल साधें सेवा॥
ऐसा ज्ञान हमारा होई। जुल्हा कहा न मानो कोई॥

साखी–तीन देव निजके गहे, राखे देवी आस।
सोई जीव सुख भोग हैं, हंसा करें विलास॥

चौपाई।

ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई। धर्मदास तोहि कथा सुनाई॥
यही जगत की उल्टी रीती। नाम न जाने कालसों प्रीती॥
वेद रीति सुनियो धर्मदासा। मैं सब भाख कहों तुम पासा॥
वेद पुरान में नामहि भाखा। वेद लिखा जानों तुम साखा॥
छत्र शास्त्रमिल झगरा कीन्हा। ब्रह्मरूप काहू नहिं चीन्हा॥
चीन्हो है जो दूसर होई। भर्म विवाद करें सब कोई॥
मूल नाम ना काहू पाये। साखा पत्र गह जग लपटाये॥
डार पत्रको जो कोइ धरही। निश्चय जाय नर्कमें परही॥
भूले लोग कहैं इम पावा। मूल वस्तु विन जन्म गमावा॥
जीव अभागि मूल नहिं आने। डार पत्र में पुरुष बखाने॥
पढे पुराण औ वेद बखाने। सत्त पुरुष जग भेद न जाने॥
वेद पढे औ भेद न जाने। नाहक यह जग झगडा ठाने॥
वेद पुराण यह करे पुकारा। सबहीसे इक पुरुष नियारा॥
ताहि न यह जग जाने भाई। तीन देव में ध्यान लगाई॥
तीन देव की करहीं भक्ती। जिनकी कभी न होवे मुक्ती॥
तीन देव का अजब ख्याला। देवी देव प्रपंची काला॥
इनमें मत भटको अज्ञानी। काल झपट पकडेगा प्राणी॥
तीन देव पुरुष गम्य ना पाई। जगके जीव सब फिरे भुलाई॥
जो कोई सत्त पुरुष गये भाई। जा कहँ देख डरे जमराई॥
ऐसा सबसे कहियो भाई। जग जीवोंका भरम नशाई॥

साखी-रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर बिचार।
अलख पुरुष हृदये लखे, सोइ उतारै है पार॥

चौपाई।

जो २ वस्तु दृष्टिमें आई। सोई सबहि काल धर खाई॥
मूरति पूजै मुक्त न होई। नाहक जन्म अकारथ खोई॥

यह जग करै मूर्तिकी पूजा। करै गर्व हमसे नहिं दूजा॥
पण्डित भक्त भये जग माहीं। पाथर पूजत जन्म गमाहीं॥
ऐसे भक्त भये अधिकाई। पीतरकी निज मूर्ति बनाई॥
इनसे भक्त और नहिं कोई। जिन अपनी दुरमति नहिं खोई॥
आदि ब्रह्मको भेद न पाये। पढ पढ पंडित जग भरमाये॥
अंतकाल जम घेरे आई। तब विद्या कछु काम न आई॥
पाथर पूजें पढें पुराना। पढ गुण अर्थ विवेकहि ठाना॥
ज्ञान कथे हैं बार न पारा। सतगुरु भक्त न जान लवारा॥
ऐसा मत ब्राह्मणने धारा। चले जात हैं जमके द्वारा॥
आदि नाम निज हृदय न राखा। सार शब्द मैं सबसों भाखा॥
यह ब्राह्मणकी है करतूती। ब्राह्मण पूजे होय न मुक्ती॥
आदि नाम भूलो मत भाई। असुर अंश दूरमतहि लखाई॥
धर्मदास देखो जग रीती। सांचा छोड झूँठसों प्रीती॥

साखी।

सार शब्द ना जान है, कहैं कबीर बखान।
यह जग भूले बावरे, गहैं न सतगुरु मान॥
ब्राह्मण भूले बावरे, सरगुण मतके जोर।
लख चौरासी भोगिहैं, पारब्रह्मके चोर॥

चौपाई।

सरगुण माहिं सार नहिं कोई। निरगुण नाम नियारा होई॥
निर्गुणसे सरगुण है भाई। सरगुणमें यह जग छपटाई॥
रजगुण सतगुण तमगुण कहिये। सब मिटजाय ज्ञान जो लहिये॥
तीनों गुण से सरगुण होई। चौथा पद निरगुण है सोई॥
निरंजन नाथ निरंजन राई। निज उत्पत्ति बनाके खाई॥
वाके परे इक नाम नियारा। सो सहज है मूल अपारा॥

उन्हें जगत नहिं जाने भाई। काल अंश राखे भरमाई॥
ब्रह्मा विष्णु शिवहि जम झांके। सत्य कबीर नाम रस छाके॥
नाम अमल रस चाखे कोई। ताको जरा मरन ना होई॥
सतगुरु भक्त करे जो कोई। जाति वर्ण दुरमति सब खोई॥
आदि नामको नित गुण गावे। भवसागर में बहुरि न आवे॥
आदि नामकी गहे जो आसा। सतगुरु काटे काल कि फांसा॥
आदिनाम है गुप्त अमोला। धर्मदास मैं तुमसे खोला॥
गुप्त मता पावे जो कोई। गेही तज बैरागी होई॥
आदि नाम गुप्त संसारा। जो पावे जग से हो न्यारा॥
धर्मदास यह जग बौराना। कोइ न जानें पद निरवाना॥
यहि कारन मैं कथा पसारा। जगसे कहियो नाम नियारा॥
यही ज्ञान जग जीव सुनाओ। सब जीवोंका भरम नशाओ॥
अब मैं तुम से कहों चिताई। त्रयदेवनकी उतपाति भाई॥
साहब कीन्ह इक अजब तमाशा। सो सब कहुँ मैं तुम्हरे पाशा॥
कछु संक्षेप कहों गुहराई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई॥
भरम गये जग वेद पुराना। आदि नामका भेद न जाना॥
राम २ सब जगत बखाने। आदि नाम कोइ बिरला जाने॥
राजा राम को यह जग जानें। तुम से ताको भेद बखाने॥
ज्ञानी सुन सो हिरदे लगाई। मूरख सुने सो मम्म न पाई॥
मा अष्टंगी पिता निरंजन। वे जम दारुण वंश न अंजन॥
पहिले कीन्ह निरंजन राई। पीछे से माया उपजाई॥
माया रूप देख अति शोभा। देव निरंजन तन मन लोभा॥
कामदेव धर्मराय सताये। देवी को तुरतइ धर खाये॥
पट से देवी करी पुकारी। साहब मोहे करो उबारी॥
टेर सुनो सतगुरु तहँ आये। अष्टंगी को बंद छुडाये॥

धर्मराय को हिकमत दीन्हा। नख रेखासे भगकर लीन्हा॥
धर्मराय करे भोग विलासा। मायाको सु रही तब आसा॥
धर्मराय अरु माया साजे। तीन लोक तासे उपराजे॥
तीन पुत्र अष्टंगी जाये। ब्रह्मा विष्णु शिव नाम धराये॥
तीन देव विस्तार चलाये। इनमें यह जग धोखा खाये॥
पुरुष गम्य कैसे के पावे। काल निरंजन जग भरमावे॥
तीन लोक अपने सुत दीन्हा। सुन्न निरंजन वासा लीन्हा॥
अलख निरंजन सुन्न ठिकाना। ब्रह्मा विष्णु शिव भेद न जाना॥
तीन देव सो उनको धावें। निरंजनको वे पार न पावें॥
अलख निरंजन बड बटपारा। तीन लोक जिव कीन्ह अहारा॥
ब्रह्मा विष्णु शिव नहीं बचाये। सकल खाय पुन धूर उडाये॥
तिनके सुत हैं तीनों देवा। आंधर जीव करत है सेवा॥
रामहि रूप धरी है माया। जिन लंकाको राय सताया॥
दश औतार माया ने धरिया। काल अपबल सबको छलिया॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हाँ। काल पाय सबही गह लीन्हाँ॥
ऐसा राम सकल जग जाने। आदि ब्रह्मको ना पहिचाने॥
तीनों देव असुर औतारा। ताको भजे सकल संसारा॥
तीनों गुणका यह विस्तारा। धर्मदास मैं कहों पुकारा॥

साखी।

गुण तीनों की भक्ति में, भूल परो संसार।
कहैं कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरे पार॥

सोरठा।

जग जिव है अज्ञान, आदि नाम नहिं जानहीं।
मायामें लपटान, जीव जमपुरी जावहीं॥

चौपाई।

ऐसा राम कबीर न जाना। धर्मदास सुनियो दे काना॥
सुन्न के परे पुरुष को धामा। तहँ साहब हैं आदि अनामा॥
ताहि धाम सब जीवका दाता। मैं सबसों कहता निज बाता॥
कहत अगोचर सब के पारा। आदि अनाम पुरुष है न्यारा॥
आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला। ताके संग नहीं कोई चेला॥
ताहि न जाने यह संसारा। बिना नाम है जमके चारा॥
नाम बिना यह जग अरुझाना। नाम गहे सो संत सुजाना॥
सच्चा साहब भजु रे भाई। यहि जगते तुम कहो चिताई॥
धोखा में जिव जन्म गँवाई। झूठी ध्यान लगाये भाई॥
ऐसा जग ते कछु समझाई। धर्मदास जिव बोधो जाई॥
सज्जन जिव आवे तुम पासा। जिन्हें देव सत लोकहि बासा॥
ज्ञानहीनके सुन षटकरमा। धर्मदास उनके ये धर्मा॥
भरम गये वे भव जल माहीं। आदि नाम को जानत नाहीं॥
पीतर पाथर पूजन लागे। आदि नाम घटही से त्यागे॥
तीरथ बर्त करे संसारे। नेम धरम असनान सकारे॥
भेष बनाय विभूति रमाये। घर २ भिक्षा मांगन आये॥
जग जीवन को दीक्षा देही। सतनाम बिन पुरुषहि द्रोही॥
ज्ञान हीन जो गुरू कहावे। आपन भूला जगत भुलावे॥
काम क्रोध मद लोभ विकारा। इन्हें न त्यागे साध विचारा॥
ऐसा ज्ञान चलाया भाई। सत साहबकी सुध बिसराई॥
यह दुनियाँ दो रंगी भाई। जिव गह शरण असुर की जाई॥
तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई। यह जम जाउ तहाँ ठहराई॥
यहै जगत ऐसे अरुझाई। नाम बिना बूडी दुनियाई॥
जो कोइ भक्त हमारा होई। जात बरण को त्यागे सोई॥

तीरथ व्रत सब देय बहाई। सतगुरु चरण से ध्यान लगाई॥
काम क्रोध मद लोभन तेही। सोई पावे परम सनेही॥
मनहीं बांध स्थिर जो करही। सो हंसा भव सागर तरही॥
भक्त होय सतगुरु का पूरा। रहे पुरुष के नित्त हजूरा॥
यही जो रीति साधकी भाई। सार युक्ति में कह गुहराई॥

साखी—सत्तनाम निज मूल है, कह कबीर समझाय।
दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहिं पाय॥

सोरठा।

सत्तनाम गुण गाव, गहे नाम सेवा करे।
सहज परम पद पाव, सतगुरु पद विश्वास दृढ॥

चौपाई।

पाथर पूजत हिंदु भुलाना। मुरदा पूज भूले तुरकाना॥
कहें कबीर ये दोइ भुलाना। आदि पुरुष कोई नहिं जाना॥
हिन्दू तुर्क दोई उपदेशा। नाम गहे मिट काल कलेशा॥
भव सागर कोइ पार न पावे। या जग में सब गोता खावें॥
भव दरयाव है अगम अपारा। पुरुष भक्त उतरेंगे पारा॥
धर्मदास जग कहो समझाई। आदि नाम बिन मुक्ति न पाई॥
जो बन भजि हैं निरभय नामा। सो हँसा पहुँचे निज धामा॥
अजर नाम है लोकहि जाई। दुष्ट काल तब रहे मुरझाई॥
सब कर्म त्याग भजो यक नामा। कभी न हो भवसागर धामा॥
ब्रह्मा ने जो राह चलाई। सो सब कहीं मैं तुमसे गाई॥
चार वरण अरु वेद बखाना। जगके जीव सबही उरझाना॥
जात पांत ब्रह्मा कर दीन्हा। सबमें ऊँच ब्राह्मणको कीन्हा॥
ब्रह्मा अपने मते चलाये। तीनों गुण जग नाम लखाये॥
आदि नामकी सुध नहिं पाये। चारों जुग धोखाहि गुमाये॥

यह ब्रह्म की है करतूती। जगहि ठगाये झूठी रीती॥
ब्रह्माने यह जग भरमाया। सत्त पुरुषका भेद न पाया॥
तिहुँपुर कालके जाल पसारा। तामें अटके सब संसारा॥
जात पाँत कोइ भेद न चीन्हा। मिथ्या राह जगहि गह लीन्हा॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जानें। ब्रह्म रूप नाहीं पहचानें॥
सार शब्द ब्राह्मण नहिं जानें। आदि नाम शूद्रही बखानें॥
ब्राह्मण धरे शूद्र श्रोतारा। करे भक्ति तिहुँ पुरसे न्यारा॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई। आदि नामको हियमें धरई॥
जाति बरनमें भेद बताऊँ। जो कोइ समझे ताह लखाऊँ॥
जाति बरण सब एकहि होई। दूसर जाति नहीं है कोई॥
दूसर कर्म जाति है भाई। कर्म करे सो नाम धराई॥
जैसो कर्म करे जो भाई। तैसी ताकी जात बनाई॥
चार बरण सब एकहि जानो। दूसरे कर्म जो जात बखानो॥
जाति बरणका चिह्न न कोई। कैसे जाति दूसरी होई॥
दूसरि जाति केहि विधि माने। जग अज्ञान भेद ना जाने॥
जाति पाँति होके नहिं आये। यह जगमें झगडा फैलाये॥
जाति पाँति नाहीं कोई न्यारी। एक जाति है सब संसारी॥
भगके द्वार जीव सब आये। जन्म मरनमें बहुरि समाये॥
राह एक आये संसारा। कौन ज्ञानसे भये नियारा॥
एकइ घरसे सब जिव आये। एक बाप इक माता जाये॥
ऊँच नीच सब सम कर जाना। ऊँच नीच सब झूँठ बखाना॥
डार जनेऊ ब्राह्मण कहलाये। ब्राह्मणीको कहो का पहिराये॥
सुनंत करा मुसलमानहि कीन्हा। तुर्कानीको का कर दीन्हा॥
ना हिन्दू ना तुर्क कहाये। ज्ञान हीन जिव धोखा खाये॥
जात बरन मिथ्या कर जानो। सत्त कहे निश्चय कर मानो॥

यह जग आंधर जानो भाई। नाम न जाने ऊँच कहाई॥
ऊँच वही जो नामहि जानें। विना नाम सब नीच कहानें॥
ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेषा। शब्द सरूपी जेहे देशा॥
सब मिल भक्ति करो रे भाई। सतगुरु मुखसे यह फरमाई॥
यह सतगुरुका ज्ञान है भाई। जो कोइ लखे सो लोक सिधाई॥
जात वर्ण हम भाख सुनाई। धर्मदास जगसे कहो जाई॥
ऐसा तुम जग जान लखावो। सतलोकमें जिव पहुँचावो॥

साखी–यह जग त्रयगुण भर्कमें, भूल परे धर्मदास।
नाम गहे विश्वास करि, जाय पुरुषके पास॥
मानो कही कबीरकी, सबको कहे पुकार।
भरम जाल सब त्यागके, गहले नाम अपार॥

सोरठा।

जिन सब नाम अधार, विना नाम भव ना तरे।
जाय काल दर्बार, सत्तपुरुष जोना गहे॥

चौपाई।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा। अब निज भेद कहों तुम पासा॥
अकह हते पुनि कहो बखानी। सुर्त लगाय सुनहु मम बानी॥
आदि न अंत हती नहिं माया। उत्पत्ति प्रलय हती ना काया॥
सोहं ब्रह्म न नहिं ओङ्कारा। काल निरञ्जन नहिं औतारा॥
दश औतारन चौबिस रूपा। तब नहिं होता ज्योति स्वरूपा॥
अब नहिं लोक दीपविस्तारा। तब नहिं मुक्ति करचो संसारा॥
जब नहिं चंद्र सूर्य अरु तारा। तब नहिं तीनों गुण औतारा॥
वहां नहीं है दिन अरु राती। ऊँच न नीच जात ना पांती॥
नाहीं सुन्न पवन नहिं पानी। समरथ गति काहू नहिं जानी॥
आदि ब्रह्म नहिं करे पसारा। आप अकह तब हता नियारा॥

है अनाम अक्षर के माहीं। निहअक्षर कोइ जानत नाहीं॥
अमर लोक जहँ अम्मर काया। अमरपुरुष जहँ आप रहाया॥
धर्मदास जहँ वास हमारा। काल अकाल न पावे पारा॥
निरभय घर वोही है भाई। रोमन व्यापे काल न खाई॥
समरथ घर हैं पेले पारा। सबके ऊपर है निरधारा॥
जिनकी गम्य काल नहिं पाई। तीन देवकी कौन चलाई॥
मन माया काल गति नाहीं। जीव सहाय बसे तेहि ठाहीं॥
ऐसा है वह देश हमारा। जहांसे हम आये संसारा॥
ताकी भक्ति करे जो कोई। भवते छूटे जन्म न होई॥
वहां जाय जिव करे विलासा। अमरलोक जिवका नहिं नासा॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। आदि नाम में कहा तुम पासा॥
जो कोइ माने कहा हमारा। निरभय जाय पुरुष के द्वारा॥
मूरख सतगुरु मरम न पावे। भवसागरमें भटका खावे॥
सार युक्ति मैं तुम्हें लखाया। गन मुनि काहु भेद न पाया॥
भाषा ग्रंथ ज्ञान उपदेशा। तुम अपने घट करो प्रवेशा॥

साखी-अब सुख है हमरे घरे, कहैं कबीर समुझाय।
सत्त शब्द जो कोइ गहे, अस्थिर बैठे जाय॥

सोरठा।

चौथे पद निरवार, पूरे गुरुसे पाइये।
कहे कबीर बखान, सत्त मान सतगुरु सही॥

चौपाई।

और सुनो गुरुमुखका लेखा। भक्त होय सो करे विवेखा॥
जो कोइ पान परवाना पावे। ताके निकट काल नहिं जावे॥
पान परवाना पावे भाई। नाम गहे अरु भरम नशाई॥
तन मन से गुरु सेवा लाई। गुरुसे देव और नहिं भाई॥
गुरुसे कपट शिष्य जो राखे। जमराजाके मुगदर चाखे॥

सोई हंस काल घर जावै। सत्त लोकमें वास न पावै॥
निरभय घर कबहूँ ना पावै। कोट जन्म तिहि काल सतावै॥
भक्ति करै पूजत है देवा। निश्चय जाय कालकी सेवा॥
मनुष्य तन वे कभी न पावैं। लख चौरासी भटका खावैं॥
जैसे कर्म करे संसारा। तस भुगते चौरासी धारा॥
ना गुरु ना निगुरा पंथी। कहा भयो बांचेसे ग्रंथी॥

साखी–भक्ति करें भरमत फिरें, बग छोडे नहिं सोय।
कहैं कबीर धर्मदाससे, जिनका तरन न होय॥

सोरठा।

करनी देय बहाय, आदि नाम कह जानके।
ता महँ रहे समाय, भरम जाल सब छांड दे॥

धर्मदास वचन।

चौपाई।

तब धर्मदास कहैं कर जोरी। स्वामी सुनिये विनती मोरी॥
हो स्वामी मैं पूछों तोहीं। करके कृपा बताइय मोहीं॥
हो अविनाशी क्या कहाये। यह जगमें तुम कैसे आये॥
यह सब भेद बताइय स्वामी। तुम सब घटके अंतर्यामी॥
सकल चरित तुम मोहि बतावो। मैं जाते जगजीव चितावो॥
यह जग तब पतियावे सांई। चारों जुग तुम कहां रहाई॥

साखी–सो अब मोहिं बतावहु, तुम गुरु अगम अपार॥
धर्मदास विनती करे, सुनियो हो करतार॥

कबीर वचन।

चौपाई।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। अब यह भेद कहों तुम पासा॥
वेद पुराण शास्त्र जग ठाना। भूले जीव न पाय ठिकाना॥

तीन लोक जिव काल सतावै। ब्रह्मा विष्णू पार न पावै॥
सत्त पुरुष तब मोहिं पठावा। जीव उबारन मैं जग आवा॥
यहि कारण आयो संसारा। जगके जीव मैं करों उबारा॥
जग जीवनको नाम लखावैं। पकड हंस सतलोक पठावैं॥
हम हैं सत्तलोकके बासी। दास कहाय प्रगट भये काशी॥
ना कोइ वर्ण नहीं कोइ भेशा। सत्तपुरुषके थे हम देशा॥
तहँकी रचना अद्भुत भाई। सो मैंने तोहि पहिल सुनाई॥
और तोहि मैं कहुँ समझाई। धर्मदास सुन चित्त लगाई॥
धरी देह भव सागर आये। धर्मदास तोहि नाम सुनाये॥
कलियुगमें काशी चल आये। जब हमरे तुम दरशन पाये॥
तब हम नाम कबीर धराये। काल देख तब रह मुरझाये॥
जो कोइ हम ो चीन्हा भाई। जिनका काल धोख मिटजाई॥
देह नहीं अरु दरसे देही। जग ना चीन्हे पुरुष विदेही॥
नहीं बाप ना माता जाये। अब गतिहीसे हम चल आये॥
इते बिदेह दे घर आये। जग जीवोंके बंद छुडाये॥
नाम गहे तेहि लोक पठाये। बिना नाम जिव कालहि खाये॥
सुत रहे नाहीं लख पावा। सो मैं जगमें आन चितावा॥
चारों जुग भवसागर आये। आदि नाम जग टेर सुनाये॥
नाम सुने शरणागत आवें। तिनहीं की हम बंद छुडावें॥
जीव प्रबोध लोक पहुँचावें। काल निरंजन देख डरावें॥
चारों जुगके चारों नामा। माया रहित रहै तिहि ठामा॥
सतजुग सत्त सुकृत कहलाये। त्रेता नाम मुनींद्र धराये॥
द्वापरमें करुनामय कहाये। कलिजुग नाम कबीर रखाये॥
आदि नाम चारों जुग टेरा। सज्जन जीव सुनतही दौरा॥
जो २ जीव शरणमें आये। तिनको हमने नाम सुनाये॥

आदि नाम जो नित गुन गावें। कर विश्वास अमर पद पावें॥
जो कोइ सतगुरु नामको धावे। तिनको साहब पार लगावें॥
पार होय जो माया त्यागे। जन्म मरनको संशय भागे॥
माया त्याग वैरागी होई। अजर अमरको पावे सोई॥

धर्मदास वचन।

कहु धर्मदास सुनो प्रभु राई। भक्त भाव मोहि देव बताई॥

कबीर वचन।

भक्तोंकी यह कथा पसारा। धर्मदास सुनियो चित धारा॥
जगमें भक्त भये अधिकारी। जोगी संन्यासी लट धारी॥
शिव गोरख अरु बहु ब्रह्मचारी। मायाने सबको ठगडारी॥
इनको ठग जब हम पर धाई। गुप्त नाम हम टेर सुनाई॥
छोट गई माया बहुवारी। रहे बीत माया गई हारी॥
माया जाल है कठिन अपारा। तासे रन मुनि बैठे हारा॥
माया जाल परो मत भाई। धर्मदास जग कहो गुहराई॥
भवसागर है भक्त बहुतेरा। जिनको तुमसे कहों निबेरा॥
मौनी भये मुखहु नहिं बोलें। भेष बनाये घर २ डोलें॥
अंगहि भस्म गले बिच माला। मढिया बैठ बने मतवाला॥
धूनि रमाय रिया सरकावें। गैंगन चढाय के जग भरमावें॥
कान फाड शिर जटा बढावें। माथे चन्दन तिलक लगावें॥
वस्त्र रँगा जोगी बन आये। सतगुरु मिले न भेष बनाये॥
बहुत करैं जप तप रे भाई। आदि नाम कोई नहिं पाई॥
पाहन सेवें भक्त कहावें। चन्दन तेल सिंदूर चढावें॥
मानुष जन्म बडे तप होई। नाम बिना झूठे तन खोई॥
साधु युक्ति अस चाल बताऊँ। धर्मदास मैं तुम्हें लखाऊँ॥
काम क्रोध लोभ अहंकारा। सोई साधु जिन इतने मारा॥
सूखा फीका करे अहारा। निशिदिन सुमरे नाम हमारा॥

तत्त्व प्रकृति और बल माया। इनहिं जीत तब साधु कहाया ॥
अन्त कपट सब देय बहाई। क्षमा गंगमें बैठ नहाई ॥
हार जीत और अभिमाना। इनसों रहित साधुको ज्ञाना ॥
बिहँसत वदन भजनको आगर। शीतल दया प्रेम सुखसागर ॥
सब खट कर्म छोड अज्ञाना। धरले केवल निर्गुन ध्याना ॥
धन्य २ जग साधु है सोई। जिन अपनी दुरमति सब खोई ॥
ऐसी रहन साधुकी भाई। जब हंसा निरभय पद पाई ॥
यह भक्तोंकी कथा सुनाई। निरभय पद कोइ विरले पाई ॥
साधू लक्षण तुम्हें सुनाया। गन मुनि काहु भेद न पाया ॥
आदि नामको नित गुन गावो। सोवत जागत ना बिसरावो ॥
सत साहिब है सबसे न्यारा। ताहि जपे होवे भव पारा ॥
भक्त अनेक भये जग माहीं। जोग करैं पै युक्ति न पाहीं ॥
जोगहि युक्ति नाम बिन नाहीं। झूठी माया आन लगाहीं ॥
नाम बिना सबही विधि हीना। नाम बिना है ज्ञान विहीना ॥
नामहि गहै तेहि निहसंशा। नाम बिना बूडे सब हंसा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा। काल अपर्बल निकट न आवा ॥
मायात्याग भजो निज नामा। तब जिव जाय पुरुषके धामा ॥
सबसे कहो पुकार पुकारी। कोइ न माने नर अरु नारी ॥
सत्य पुरुषकी युक्ति न पाई। हृदय धरैं नहिं सत्यको भाई ॥
शिव गोरख सोइ पार न पावे। और जीवकी कौन चलावे ॥
कहैं कबीर सुनो मम बानी। जोग युक्ति मैं कहों बखानी ॥
अब गेहीका सुनो विचारा। धर्मदास मैं कहों पुकारा ॥
गेही भक्ति करे जो को। अब मैं तुमसे भाखों सोई ॥
गेही भक्ति सत्तगुरुकी करई। आदि नाम निज हृदये धरई ॥
गुरु चरननसे ध्यान लगावै। अन्त कपट गुरुसे ना लागै ॥

गुरु सेवामें सब फल आवै। गुरू विमुख नर पार न पावै॥
गुरू बचन निश्चय कर मानै। पूरे गुरुकी सेवा ठानै॥
बिन विश्वास भक्ति परकाशा। प्रीति बिना नहिं दुबिधा नाशा॥
मीन मांस मद निकट न जाई। अंकुर भक्ष सो सदा कराई॥
गुरुसे शिष्य कर चतुराई। सेवा हीन नर्कमें जाई॥
परधन पाहन समझे भाई। झूठ बचन हृदये नहिं लाई॥
पर तिरिया माता सम माने। झूठ छोड सत्यहिको जाने॥
जीवपै दया करै रे भाई। बुरे कर्म सब देय बिहाई॥
हृदये क्षमा प्रीति ना होई। सतगुरु सपने मिले न सोई॥
नाम नेह गुरु सुतै लगावे। आदि नामको पल २ घ्यावे॥
लेवे पान मुक्ति सहदानी। जाते काल न रोकै आनी॥

साखी—पुरुष नाम निश ि गहो, शब्द करो परतीत।
अंक नाम निज पाइया, जैहो भव जल जीत॥

सोरठा।

भर्म तजे यम जाल, सत्तनाम लौ लावई।
चले संतकी चाल, परमारथ चित दे गहे॥

चौपाई।

गेही भक्त आरती आने। प्रति पूनोकी आरति ठाने॥
अमावस आरती नहिं होई। ताहि भवन रह काल समोई॥
पाख दिवस नहिं होवे साजू। प्रति पूनो कर आरति काजू॥
पूनो पान लीन्ह धर्मदासा। पावे शिष्य होय सुख वासा॥
छठे मास नहिं आरति भेवा। साल माह गुरु चौका सेवा॥
नाम कबीर जपै लौलाई। तुम्हरा नाम कहे गुहराई॥
ऐसी रहनि गेहि जो धरिहै। गुरु प्रताप दोई निस्तारि है॥

१८८

साखी-सो भव पार उतारि है, केवटसे कर प्रीत।
जब सतगुरु केवट मिले, जैहे भव जल जीत॥
सोरठा-काल जीव धर खाय, सत्तनाम जाने विना।
बचि है एक उपाय, सत्त कवीर कह भव तरे॥

चौपाई।

सत्त कवीर गुरू धर्मदासा। जीव पठे है पुरुष के पासा॥
सत गुरु सत्त कवीरहि आही। गुप्त रहे जग चीन्हत नाहीं॥
सतगुरु आप जगत पग धारे। दासा तन धर शब्द पुकारे॥
काल निरंजन सब पर छाया। आदि नामका चिह्न मिटाया॥
धर औतार असुर संसारा। जिव जाने यह धनी हमारा॥
एही धोख नर्क सब जाहीं। जिव अचेत छल चीन्हे नाहीं॥
नर्क बास नहिं छूटे भाई। जो सतगुरु को चीन्हे नाईं॥
ब्रह्मा विष्णु शिवसे नहिं देवा। जिन्ह बैकुण्ठवास नहिं देवा॥
ऐसा काल अपरबल भाई। जिहिके छल जग चीन्हे नाईं॥
जग में जीव घात बहुतेरे। करे घात अरु पाप घनेरे॥
दुष्ट अन्याई कर जीवकी घाता। खेल शिकार माने मन माता॥
जीव मार तन करे अहारा। जीव दया नहिं करत गँवारा॥
जीवघाती सो बहुत दुख पावे। जन्म २ तिथि काल सतावे॥
काग देह धर विष्टा खाही। जन्म अनेक भ्रमे जग माही॥
जीव दया विन मुक्ति न [पा]वें। मीन मांस मद राक्षस खावें॥
धर्मदास यह जग बौराई। दुष्ट जीवकी कथा सुनाई॥
जीव कष्ट मोहिं सहा न जा[ई]। ज्ञान हीन नर जीव सताई॥
यहि कारन हम जगमें आये। तीन लोग जम लूटत पाये॥
पहले लूटे विष्णु मुरारी। फिर लूटे शंकर जटधारी॥
गन मुनि लूटे तपसी झारी। अरु लूटे सगले संसारी॥

चन्द्र सूर्य तारागण सोई। कहे कबीर बचा नहिं कोई॥
देखो यही काल की रीती। धर्म न परखो रीति अनीती॥
ऐसा काल कठिन बरियारा। बचे सोइ जो नाम पुकारा॥
काल रीति में तोहिं सुनाई। धर्मदास जिव बोधो जाई॥

साखी–कहें कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय।
काल भेद ना जानहीं, मूरख रहे भुलाय॥

सोरठा–तजो काल वरयार, जीव दया चितमें करो।
उतरो भव जल पार, आदि नाम हृदये गहो॥
सुनो सन्त मति धीर, कहो ज्ञान परखो हिये।
काल अपरबल बीर, हृदये करो विवेक दृढ॥

चौपाई।

आदि नाम है अजर शरीरा। तनमनसे गहु सत्त कबीरा॥
जोई गह धर्मदास कबीरा। सो पावे सुख सागर तीरा॥
काया बीर नाम है बीरू। सब घट रहे समायक बीरू॥
निजही शब्द कबीर है सारा। जाका है निज सकल पसारा॥
एके रूप शब्द पुर एका। एक भाव दुतिया नहिं देखा॥
कैसे दुतिया कहिये सोई। दुतिया भर्म मिटे सब कोई॥
एकहि हम तुम एक शरीरा। एक शब्द है मतिके धीरा॥
दूसर भाव नहीं है आज्ञा। सोई कबीर सोई धर्मदासा॥
एक रूप एके अनुहारी। एकहि पुरुष सकल विस्तारी॥
आदि नाम मैं भाख सुनायो। नाम गहे जब मुक्ती पायो॥
जो कोई आदि नामको चीन्हा। तासो काल भयो बलहीना॥

साखी–आदि नाम है मुक्तिका, जप जाने जो कोय।
कोट जाप संसारमें, तासे मुक्ति न होय॥

सोरठा-बूझ लेहु हो हंस, आदि नाम निज सार है।
अमर होयते वंश, जिन जानो जिन नामको॥
और मंत्र सब छार, आदि नाम निज मंत्र है।
बूड मरा संसार, कह कबीर निज नाम विन॥

चौपाई।

कहे कबीर सुनो धर्मदासू। चार गुरूकी कथा प्रकासू॥
चार गुरू संसारहि कीन्हा। जिनके हाथ जिवमुक्ती दीन्हा॥
वे हंसन को लोक पठाये। भवसागर जिव बहुरि न आये॥
सार शब्द साइब का न्यारा। सोई शब्द कहैं गुरु उचारा॥
सार शब्द काल नहिं पाई। तीन देव की कौन चलाई॥
शब्द संग हंसा घर जाई। काल अपबल देख डराई॥
सार शब्द मैं तुमको दीन्हा। काल तुम्हारे रहे अधीना॥
धर्मदास तुम मतिके धीरा। तुमको दीन्ह मुक्तिका बीरा॥
तुमते जीव उतरि हैं पारा। सौंप दीन्ह तोहि जगको भारा॥
सतजुग शिष सहतेजी कहाये। द्वापर चतुर्भुज नाम सुनाये॥
त्रेता शिष्य बंकेजी भाई। कलियुगमें धर्मदास सुसाई॥
चार गुरु भवसागर माहीं। धर्मदास वे जिव मुक्ताहीं॥
यह मैं तुम से कहौं समझाई। सब संशय तुम्हरे मिट जाई॥
वंश ब्यालीस तुम्हारे सारा। और सकल सब झूठ पसारा॥
इनहीं सौंप देव जिव भारा। सब जीवनको करें उबारा॥
धर्मदास तुम पुरुषके अंशा। अब हमको कुछ नाहीं संशा॥
होय पंथ भव सागर सारा। तुम्हरे वंश सब जीव उबारा॥
ब्यालिस वंशराज लिख दीन्हाँ। अटल राज भवसागर कीन्हाँ॥
धर्मदास में कहौं विचारी। यदि विधि निबहै सब संसारी॥

साखी-नाम भेद जो जानहीं, सोइ वंश हमार।
नातर दुनिया बहुत है, बूड मरा संसार॥

सोरठा-जैहै भव जल जीत, सार शब्द जो जानहीं।
कठिन काल विपरीत, नातो जम ले जायगा ॥

धर्मदास वचन।

चौपाई।

धर्मदास तब विन्ती ठाई। अब मैं पंथ करों तुम गाई ॥
अमर लोकके हो गुरु बासी। कारन कौन आये अविनाशी ॥
मृत्युलोक आये केहि काजा। धर्मराय बड पापी राजा ॥

साहब कबीरो वचन।

धर्मदास तुम सुनियो भाई। जीवन काज पुरुष पठवाई ॥
सत्तपुरुष सतलोकके बासी। सकल हंसके लिये अविनाशी ॥
पुरुषदरश कोइ बहुरि न पावे। तीन लोकमें आन रहावे ॥
तीन लोक सब परले होई। अमर लोक सुखदायक सोई ॥
जीव काज जगमें हम आये। धर्मरायसे जीव छुडाये ॥
आदि अनाम अमोल अपारा। अकह अगोचर सबसे न्यारा ॥
तहसे हम आये संसारा। पहुँचे काशीनगर मँझारा ॥
सत्त सत्त हम करें पुकारा। भवसागरके जीव उबारा ॥
नाम सुने जो मो लग धाये। तिनको हमने पार लगाये ॥
समझे सुने जो वाचा मेरी। काटूं ताकी कर्मकी बेरी ॥
भगकी राह नहीं हम आये। जन्म मरन ना बहुरि समाये ॥
त्रिगुण पांच तत्त्व हम नाहीं। इच्छारूप देह हम आहीं ॥

साखी-पांच तत्त्व गुन तीन नहिं, तामें सकल शरीर।
सब कोइ हृदये चीन्हियो, सतगुरु पुरुष कबीर ॥

चौपाई।

इम जम के शिर मर्दन हारा। जो कोइ गहे सो उतरे पारा ॥
जहँ हम रहैं काल तहँ नाहीं। हंसन हम सुखदायक आहीं ॥

जो साहब सतलोक रहाई। तिनको सब कोइ चीन्हो भाई ॥
नाम बिना दुखी तीनों देवा। जिनकी गन गंधर्व करें सेवा ॥
जग के देव सब काल अधीना। बचे सोइ जो नामको चीन्हा ॥
हम बल एक शब्दका भाई। ताही बल हंसा मुकाई ॥
जहां नाम काल गति नाहीं। बिना नाम है काल की छांहीं ॥
ज्ञान हीन जाने नहिं भाई। जीव के संग मन काल रहाई ॥
जीव के संग कालको बासा। अज्ञानी जन गहे विश्वासा ॥
मन को गहो न कीजे कोई। मन जिवको भरमावे सोई ॥
कहे कबीर मन जात गँवारी। मनको कहो न करो नर नारी ॥
मन को कहो जो कर है भाई। भवसागरमें देय बहाई ॥
मन चंचल सो काल है भाई। मनको त्याग निर्मल हो जाई ॥
मन के रूप समानी माया। सब संसार व्याप्त यह छाया ॥
मन थिरकर परमातम जाना। यह विधी तत्त्व लेय पहिचाना ॥
काल जाल ते तेही छूटे। काल बिचारा ताहि न लूटे ॥
यही भेद धर्मन सुन लीजे। शब्द माहिं तुम बासा कीजे ॥
काल ज्ञान संसार बखाना। काल स्वरूप नहीं पहिचाना ॥
काल चरित्र तुमसे कहो भाई। यही भेद कोई नहिं पाई ॥
काया माया झूठी जानो। झूठा सकल पसारा मानो ॥
झूठो नाम साहबको नाहीं। बूझ लेव अपने हिय माहीं ॥

साखी–काल पाय जग ऊपजो, काल पाय सब घाय।
काल पाय सब विनसही, काल काल कह खाय ॥

सोरठा–धर्मदास लेव जान, सुन्यसरूपी मनहि है।
बचन कबीर प्रमान, रूप रेख मनको नहीं ॥

चौपाई।

परम पुरुष नाम गहो भाई। तासे हँसा लोक सिधाई ॥
आदि नाम है जित रखवारा। उनको सब कोइ करो पुकारा ॥

अमरलोक साहब का न्यारा। जहाँ पुरुष का है दरबारा॥
आदि पुरुष जहँ आप अकेला। धर्मराय नहिं मन के मेला॥
अंधकार जहँ कबहूँ न होई। सदा जोति अमरापुर सोई॥
आदि पुरुष जहँ काल न जाई। तीन देव की कौन चलाई॥
आदि नाम जो ध्यान लगाई। तब हंसा सत लोकहि पाई॥
ऐसा लोक साहबका भाई। जहँ हंसा सुख सदा रहाई॥
ताहि लोकमें जो कोइ जावे। भवसागरमें बहुरि न आवे॥
धर्म राय से तिन का टूटे। जन्म मरण को संशय छूटे॥
निरले जीव निःसंशय होई। दृढ परतीत नाम गहें सोई॥
अगम भेद मैं तुम्हें बताया। काल निरंजन गम्य न पाया॥
जगके जीव प्रबोधो भाई। पुरुष शरण जब हंसा जाई॥
जीवहि बोधो सब संतारा। पकड हंस फेंको पैले पारा॥
भवसागरते जीव उबारो। जन्म मरण जीव संशय टारो॥
जीव मुक्त मैं तुमको दीन्हा। पुरुष भक्ति है नामको चीन्हा॥
सार युक्ति मैं तुमसे कहिया। कहनसुननको अब नहिं रहिया॥

धर्मदास वचन चौपाई।

धर्मदास विनवे कर जोरी। सतगुरु सुनिये बिन्ती मोरी॥
निरगुन नाम लखे नहिं कोई। सरगुनमें जग भरमें सोई॥
अज्ञानी जिव कहा न माने। आदि नामको भेद न जाने॥
यह सब भेद कहो प्रभुराई। कैसे जीव प्रबोधों जाई॥

साहिब कबीर वचन-चौपाई।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। अब मैं भेद कहों तुम पासा॥
सज्जन जन जो होवें भाई। तुम्हरे शरन दौरके आई॥
तन मन तुमसे ध्यान लगाई। ताको नाम सुनइयो भाई॥
जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना। तबही देव पान परवाना॥

निरभय ज्ञान कहो जिन पासा। जो कोइ होय तुम्हारा दासा ॥
मूरखके तुम पास न जइयो। वचन हमारो हियमें गहियो ॥
मूरख ज्ञान कहो मत भाई। नाहक ज्ञान गांठको जाई ॥
दुरमति मन चाही कर भाई। तासे राखो भेद छिपाई ॥
ज्ञानी जनको नाम सुनाओ। परम पुरुषको हृदय चिन्हाओ ॥
साखी–मूरखसे ना खोलिये, कहै कबीर विचार ।
ज्ञानीसे न दुरायहो, सुनो सन्त मतसार ॥
चौपाई ।
अलख नाम घट भीतर देखो। हृदये माहीं करो विवेको ॥
घट घट राम बसे हैं भाई। बिना ज्ञान नहिं देत दिखाई ॥
अनुभव ज्ञान प्रगट जब होई। आतमराम चीन्ह है सोई ॥
आतमराम चीन्ह जब पावा। सकल पसारा मेट बहावा ॥
दिये नयनसे देखो भाई। जब तुमको वह राम दिखाई ॥
सब घट व्यापक सबसे न्यारा। सोई राम है जीव मँझारा ॥
अकह नाम कहा नहिं जाई। घट घट व्यापे निरंतर आई ॥
आतमराम देख जिव पाई। आप आप सब ठांव समाई ॥
जहँ देखा तहँ आप समाना। ब्रह्म छोड दूसर नहिं आना ॥
यही मता हम तुम कह दीन्हा। दूसर कोई न पावे चीन्हा ॥
ऐसा ज्ञान लखाओ भाई। जो नहिं मान काल तिहिं खाई ॥
साखी–अजर पुरुष एकै रहे, अजर लोक अस्थान ।
कहे कबीर सर्वास जो, ताहि पुरुषको जान ॥
सोरठा–सुनहु ज्ञानि धर्मदास, इसो ज्ञान जब ऊपजे ।
एक नाम विश्वास, प्रगट ब्रह्म स्वरूप है ॥
चौपाई ।
आदि नाम जो राखे आसा। तापै परे न काल की फांसा ॥
आदि नाम निःअक्षर भाई। ताहि नाम ले लोक हि जाई ॥

सोहं शब्द निःअक्षर वासा। ताहि शब्द जपहे निज दासा ॥
आदि नाम निज सार है भाई। जमराजा तेहि निकट न आई ॥
तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा। सो हंसन सों कहौ पुकारा ॥
सार शब्दका सुमरण करि है। सहजै अमर लोक निस्तारि है ॥
सुमरनका बल ऐसा होई। कर्म काट सब पलमें खोई ॥
जाके कर्म काट सब डारा। दिव्य ज्ञान सहजे उजियारा ॥
जाकहँ दिव्य ज्ञान परकाशा। आपहिमें सब लोक निवासा ॥
लोक अलोक शब्द है भाई। जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्त्व सार सुमरन है भाई। जाते कालकी तपन बुझाई ॥
सुमरनते सब कर्म विनाशा। सुमरनसों दिव्यज्ञान प्रकाशा ॥
धर्मन सुमरन दयो लखाई। जातों हंस सबै मुक्ताई ॥

साखी—कहे कबीर विचारके, सुमरन सार बखान।
यहे भेद जो पावहीं, पहुँचे लोक ठिकान ॥

धर्मदास बचन—चोपाई।

कहैं धर्मदास सुनो प्रभुराई। अब जिवको संदेह मिटाई ॥
अलख अगोचर हो प्रभु मेरा। अब जीवन को करो उबेरा ॥
आदि ब्रह्म तुम अगम अपारा। जीव काज आये करतारा ॥
आदि नाम गुरु मोहिं लखाये। जीवनके तुम बंद छुड़ाये ॥
अजर लोकमें जिव पहुँचाये। धन्य भाग हम दर्शन पाये ॥
अमर वस्तु सतगुरु मोहिं दीन्हा। जीवनके सब दुख हर लीन्हा ॥
सतगुरु चरण गहे हिय माहीं। भानु उदय पंकज विगसाहीं ॥
सतगुरुने मोहिं लीन्ह जगाई। आवागवन रहित घर पाई ॥
अब सन्देह रहा कुछ नाहीं। शब्द तुम्हार बसो हिय माहीं ॥

सोरठा—दीन्हो मोहिं लखाय, परमातम आतम सकल।
अकह नाम समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हऊ ॥

साहब कबीरजू बचन--चौपाई ।

ज्ञानउपदेश कहा मैं भाई । ताते जीव हिय ज्ञान समाई ॥
यही ग्रंथ मैं नाम नियार । सूक्ष्म रीति से कहो पुकारा ॥
आदि नाम जाने संसारा । करे भक्ति पहुँचे दरबारा ॥
पढे संत होवै मति धीरा । आदि नाम गहै अत्र शरीरा ॥
आदि नाम है सत्त कबीरा । जो जन गहे छूटे भव पीरा ॥
आदि नाम पहिचाने भाई । तब हंसा निज घरही जाई ॥
ज्ञान उपदेश कहा गुरु पूरा । नाम गहे चेला कोइ सूरा ॥
साधु संतसो बिनती मोरी । भूले अक्षर लीजो जोरी ॥

इति श्रीग्रंथज्ञानबोध समाप्त ।

सत्यपुरुषाय नमः ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

चतुर्दशस्तरंगः ।

ग्रन्थ भवतारणबोध ।

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास विनवे कर जोरी । सद्गुरु सुनिये विनती मोरी ॥
भवसागर कवनिहिं विधि छूटे । यमबन्धन कवनिहिं विधि टूटे ॥
भव दरियाका वार न पारा । ता महँ अँटके सब संसारा ॥
सो दरियाव कौनविधि थाहूँ । परम पुरुषको कैसे पाहूँ ॥
करों भक्तिके योग कमावों । देओं दानके तीर्थ नहावों ॥
करो यज्ञ के इन्द्री साधों । बाहर फिरोंक मनको बांधो ॥
जो तुम कहो सोई मैं करिहौं । बचन तुम्हारे हृदये धरिहौं ॥
भवसागरदुख मेटो मोरा । टूटे जन्म मरनको ठौरा ॥
संशयरहित करहु मोहिं स्वामी । तुम सब घटके अंतर्यामी ॥

सद्गुरु वचन ।

सुन धर्मदास मैं सत्य बताऊँ । भवसागरका भरम मिटाऊं ॥
संशय रहित सदा तुम होऊ । तुम्हरी राह न रोकै कोऊ ॥
करो भक्ति औ बंधन काटो । जन्म मरणका संशय पाटो ॥
भाव भक्ति करिये चित लाई । सेवहु साधु तजि मान बडाई ॥
सुन धर्मदास भक्तिपद ऊँचा । इन सीढी कोई नहिं पहुँचा ॥
योगी योगसाधना करई । भवसागरते नाहीं तरई ॥
दान देय सोइ फल पावे । भवसागर मुक्तनको आवे ॥
तीर्थ नहाये जो कछु होहीं । सो सब भाष सुनाऊं तोहीं ॥

जन्म लेय उज्ज्वल तन पावे। सम्पति है जगमें पुनि आवे॥
ऊंचे घरसे ले अवतारा। ब्राह्मण क्षत्रीको व्यवहारा॥
इन्द्री साधन है यह नीका। बिना भक्ति जानों सब फीका॥
इन्द्री साधन है तप भारी। तामस तेज क्रोध हंकारी॥
क्रोध किये गति मुक्ति न पावे। भक्ति महातम हाथ नहिं आवे॥
बरत एक भक्तिका पूरा। और बरत कीजे सब दूरा॥
और बरत सब यमकी फांसी। भक्ति बरत मिलही अविनाशी॥
हर अवराधनकी सुनु बाता। कहा भेद सुनिये तुम ज्ञाता॥
हरि हर नाम सदा शिव केरा। तातों दूर होत भव फेरा॥
बहुत प्रीतिसों शिवको ध्यावे। रिधि सिधि द्रव्य बहुत सुख पावे॥
मन चितके निश्चयकर घरहीं। गिरि कैलासमें बासा करहीं॥
फिरके काल झपटे वांहीं। डार देय भवसागर माहीं॥
ताते संशय छूटे नाहीं। भवसागरमें जीव जो जाहीं॥
शिवकी साधन है यह गती। निर्भयपद पावे नहिं रती॥
जाके सुमिरे योगी यती। चौरासी भरमें उत्पती॥
हरि हरकी यह कथा सुनाई। आगे और सुनाऊ भाई॥

साखी-शिवसाधनकी यह गती, शिव है भवके रूप।
बिन समझे ये जगत सब, परे महा भ्रम कूप॥
नरक बासमें मनु परे, ऐसी शिवकी मौज।
कहे कबीर बिचारिके, मिटे न यमकी फौज॥

चौपाई।

हरि हरि नाम विष्णुका होई। विष्णु विष्णु भाषे सब कोई॥
विष्णुहिं को कर्ता बतलावे। कहो जीव कैसे फल पावे॥
सब घट माहीं विष्णु विराजे। ध्यान पानमें विष्णुहिं गाजे॥
सकल भोग विष्णु जा लेही। भोग करे जग भरमे देही॥

हरि हरि नाम विष्णुका भाषा। शुभ औ अशुभ कर्म दोइ राखा॥
इनमें करें कलोल सदाई। करे भोग जीवन भरमाई॥
बहुत प्रीतिसों विष्णु हि ध्यावे। सो जिव विष्णुपुरीको जावे॥
विष्णु पुरीमें निर्भय नाहीं। फिर के डार देय भू माहीं॥
हरि हरि नाम विष्णुका भाषा। हरिकी और सुनो अब साखा॥

साखी--हरि नाम है विष्णुका, जिन कीन्हा सब जेर।
चौरासी भरमे सदा, मिटे न भवका फेर॥

चौपाई।

सुनहु धर्मदास तुम साधू। इनको कबहूँ मत अवराधू॥
हरि हर ब्रह्मा को है नाऊं। रज गुण व्यापक है सब ठाऊं॥
जगत् कहे ब्रह्मा है करता। मर्म माहिं सब बह २ मरता॥
ब्राह्मण को पूजे संसारा। जीव होय नहिं भवते न्यारा॥
पढ २ विद्या जग भरमावे। भक्ति पदारथ कैसे पावे॥
पोथी पाठ पढ़े दिनराती। ये केवल भ्रम के उत्पाती॥
आप भरम ते निर्भय नाहीं। बहे जात हैं भ्रमके माहीं॥
औरनको शिक्षा सब देही। ताते मिले न परम सनेही॥
पाप पुण्य का लेखा करही। बिना भक्ति चौरासी परही॥
यह ब्राह्मण की है करतूती। ब्राह्मण पूजे होय न मुक्ती॥

साखी-निर्गुण भक्ति है जगत की, निर्गुण लखै न कोय।
सर्गुण निर्गुण दोइ मिटे, भक्तिरहित घर होय॥
इह निर्गुणहि कि भक्तिमें, जिन भूलो धर्मदास।
ऊपर निर्गुण जानिये, जहँ योगी का बास॥

चौपाई।

धर्मदास सुन सन्त सुजाना। निर्गुण सो अब करों बखाना॥
निर्गुण नाम निरञ्जन भाई। जिन सारी उत्पति बनाई॥

निर्गुण सों जु भया ओंकारा। तासों तीनों गुण विस्तारा ॥
निर्गुण सो मन भये प्रचण्डा। ताको वास सकल ब्रह्मण्डा ॥
ओङ्कार मन आप निरञ्जन। नाना विधिके कीये व्यञ्जन ॥
भाँति २ के घाट सवारा। कहँ लग गिनो वार नहिं पारा ॥
ताके अंश सकल अवतारा। राम कृष्ण तामें सरदारा ॥
पूरण आप निरञ्जन होई। इनमें फेर फार नहिं कोई ॥
सर्गुण निर्गुणकूकि करे सेवा। भक्ति करे अरु पूजे देवा ॥
कर आचार विचार न जाने। सो मेरे मन कभी न माने ॥
मन बोधे मन माहिं समावे। निज पदको कोई नहिं पावे ॥
मन को बोध करे जो कोई। मन पहुँचावे पहुँचे सोई ॥
जाप निरञ्जन माहिं समाई। आगे गम्य न काहु पाई ॥
ऐसे तीन लोक सब अटके। खरे सयाने ते सब भटके ॥
ऋषि मुनि गण गन्धर्व रु देवा। सब मिल करें निरञ्जन सेवा ॥
साधक सिद्ध साध जो भयेऊ। इनके आगे कोई न गयेऊ ॥
बहुत भाँति सों भक्ति बिचारी। मिलन २ लीला अधिकारी ॥
जाय निरञ्जन सों हो भेटा। काल रूप धर करे समेटा ॥
यही निरञ्जनका विस्तारा। ता में उरझे सब संसारा ॥
जिधर तिधर राखे विलमाई। रचना अनन्त अपार बनाई ॥
धर्मदास तुम भक्ति सनेही। इन में मत अटकावे देही ॥
जन्म धरे छूटे नहिं भाई। ताते आप कहाँ गुहराई ॥
भक्ति गुप्त जाने नहिं कोई। तुतं सनेही पावे सोई ॥

साखी-इन तें भक्ती गुप्त है, सुन धर्मदास सुजान।
भक्ति करो भरमो नहीं, सोई भक्ति प्रमाण।

धर्मदास वचन चौपाई।

हे स्वामी मैं हूं अज्ञानी। गुप्तभक्ति मोहिं कहो बखानी ॥
तुम यह भक्ति कहाँ सो आनी। सोइ बात मोहिं कहो बखानी ॥

तुम्हरी भक्ति कौन विधि पावे। कौन भांति की भक्ति कहावे॥
भक्ति कहीजे कौन प्रकारा। ताको स्वामी कहो विचारा॥
भक्ति २ सब जगत बखाने। भक्ति भेद कैसी विधि जाने॥
सो निश्चय मोहिं कहे बखानी। केहि विधि छूटे भवकी बानी॥
जातें सब संशय मिट जाई। तातें आप देहु समझाई॥

साखी–भव वाणिश्रम दुख बढे, सुख कर सत गुरु देव।
भक्ति करो निष्कपट होय, सदा तुम्हारी सेव॥

कबीर वचन चौपाई।

कहें कबीर सुनो मम बानी। भक्ति सार में कहों बखानी॥
आगे भक्त भये बहु भाई। करी भक्ति पै युक्ति न पाई॥
आदि भक्ति शिव योगी केरी। राखी गुप्त न जग में फेरी॥
योग करे औ भक्ति कमावे। अधर एक नामे ध्वनि लावे॥
सो अक्षर है संसारा। ताकी उपजे सकल पसारा॥
रहे अधर ब्रह्माण्ड के माहीं। शिव जानत को जानत नाहीं॥
तासन मेरी भक्ति नियारी। जाको क्या जाने संसारी॥
ताको योगेश्वर नहिं पावे। और जीव की कौन चलावे॥
शिवसों अधिक न कोऊ जाने। ऐसी भांति छान बिल्छाने॥
सोच जीव आगे नहिं आवे। तीन लोक प्रभुता उठजावे॥
और हमारो कैसे पावे। वहां भये बहुरिहु नहिं आवे॥
धर्मदास कहु बरणन अपना। ब्रह्म पुत्र सेवे तिहिं चरणा॥
सनक सनन्दन सनत्कुमारा। सनकादिक चारों अवतारा॥
पांच वर्ष काया नित रहई। ब्रह्म तीन कोइ पार न लहई॥
केते ब्रह्म होय २ गयऊ। सनकादिकसे निश्चल भयऊ॥
ध्यान जु करे निरञ्जन माहीं। निरञ्जनसों न्यारा कोउ नाहीं॥
निरञ्जन अंश हंस अवतारा। सकल सृष्टि है ताहि मँझारा॥

यहां ताहि कोइ बिरला जाने। आगे कहां कौन विधि माने॥
इनकी भक्ति करे नर सोई। हमरी भक्ति न जानत कोई॥
भक्त अनेक भये जग माहीं। निर्भय घर को पावत नाहीं॥
भक्ति करें तव भक्त कहावे। भगते रहित न कोई पावे॥
भग भुगते फिर २ भग आवे। भगते बचन न कोई पावे॥
चौदह लोक बसें भगमाहीं। भगते न्यारा कोई नाहीं॥
न्यारी युक्ति मैं तुमहि दिखाई। तहां सुर्त रहे साथ कहाई॥
भुगते भग औ भक्त कहावे। फिर २ योनी संकट आवे॥
मेरी भक्ति युक्तिको बाना। ताका आवागमन नशाना॥
भक्ति करे तब मुक्ती होई। नहिं तो बाना जाय बिगोई॥
भक्ति भेद बहुतक हैं भाई। निर्मल भक्ति न काहूँ पाई॥
तुम जो बूझो भक्ति प्रकारा। ता का भेद सुनों अब न्यारा॥
भक्ति होय नहिं नाचे गाये। भक्ति होय नहिं घंट बजाये॥
भक्ति होय नहीं मूरत पूजा। पाहन सेवे क्या तोहिं सूझा॥
विमल २ गावें अरु रोवे। क्षण इक परम जन्मको खोवे॥
ऐसा साहिब मानत नाहीं। ये सब काल रूप के छाहीं॥
मन ही गावे मन ही रोवे। मन ही जागे मन ही सोवे॥
जब लग भीतर लग्न न लागे। तब लग सुर्त न कबहूँ जागे॥
सत्य नाम की खबर न पाई। का कर भक्ति करो रे भाई॥
ठौर ठिकाना जानत नाहीं। झूठे मग्न रहें मन माहीं॥
कहन सुनन को भक्त कहावें। भक्ति भेद कितहूँ नहिं पावें॥
लग्न प्रेम बिन भक्ति न होई। सद्गति को पावे नहिं कोई॥
अपने साहिबको नहिं जाना। बिन देखे किहि कियो बखाना॥
ऐसे भूल परे संसारा। कैसे उतरे भव जल पारा॥
सत्य भक्तिको नाहीं लागा। ऐसे हैं सब जीव अभागा॥

धर्मदास तुम हो बुधिवन्ता। भक्ति करो पावो सतसंता ॥
एक पुरुष हैं अगम अपारा। सब घट व्यापक सबसों न्यारा ॥
ताको नहिं जाने संसारा। ताकी भक्ति महानिजसारा ॥
भक्ति करे जब उतरे पारा। सुर्ते नृत्य कर सेवे सारा ॥
यह विधि भक्तिपदारथ पावे। मुक्ति होय भवबहुरि न आवे ॥
भवसागर ते उतरे पारा। फिरके जग नहीं ले अवतारा ॥
ऐसी भक्ति मुक्ति की दाता। जाकी गति नहीं लखै विधाता ॥
भक्तिही भक्ति भेद बहु भारी। येही भक्ति जगत ते न्यारी ॥

साखी–भक्ति पदारथ अगम फल, मुक्ति चार इहि बार।
पावे पूरण पुरुष को, जग नहिं ले अवतार ॥

धर्मदास वचन–चौपाइ।

धर्मदास कहे सुनो गुसाईं। पूरण पुरुष बसे किहि ठाईं ॥
केही विधि सों सेवा कीजे। कैसे चरणकमल चित दीजे ॥
कौन भांति साधों सो भक्ती। सद्गुरु मोहिं बतावो युक्ती ॥

सद्गुरु वचन

पहिले प्रेम अंग में आवे। साधु देख सन्मुख होय धावे ॥
चरण धोय चरणामृत लेवे। प्रीति सहित साधूको सेवे ॥
अन्तर छाँडि करो सेवकाई। यहि विधि भवके दुःख मिटाई ॥
जोई साधु प्रेम गति जाने। ता साधूकी सेवा ठाने ॥
परम पुरुषकी भक्ति दृढावे। सुर्तें नृत कर तहँ पहुचावे ॥
तासों प्रीति करो चितलाई। छांडो दुर्मति औ चतुराई ॥
तबही परम पुरुषको पावे। भव तरके जग बहुर न आवे ॥
भवतारन संशय नहिं तोहीं। दो क्षण होय तो लागे मोही ॥
कितहु बातकी फिकर न करना। यही भक्त निश्चयकर [illegible]तरना ॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास बूझे चित लाई। सकल भेद मोहीं देहु बताई॥
निर्गुण रहित तुम्हारा नाऊँ। कैसे भक्ति करो तेहि ठाऊँ॥
हो स्वामी यह अचरज बाता। भक्ति करनको दाव न घाता॥
सर्गुण भक्ति करै संसारा। निर्गुण योगेश्वर आधारा॥
इन दोनोंके पार बताया। तुम कैसी विधि तहँ मन लाया॥
सत्य बात मोहि कहो बुझाई। केहि विधि सुर्त लगाऊँ धाई॥
सर्गुणहि पार न पावत कोई। मेरे मन बड संशय होई॥
सतगुरु संशय देहु निवारी। मैं जाऊँ तुम्हरी बलिहारी॥
सर्गुण निर्गुण भेद बताऊँ। तीसर न्यारा मोहिं लखाऊँ॥
मोरे मन पतयावत नाहीं। बहुत फिकर कीन्हा मनमाहीं॥
हो समर्थ तुम सतगुरु साई। हठताते पकडो मम बाहीं॥
सबे युक्ति बतलावो मोई। अंतर कछु न राखो गोई॥
तुम सत सत्य तुम्हारी बाता। मैं याचक तुम समरथ दाता॥
देहु मोहिं मैं मांगो सोई। सोई लखाव मिटे दिल दोई॥

साखी-सत्य २ समरथ धनी, सत्य करहु परकाश।
सत्य लोक पहुँचायहो, छूटे यम भव त्रास॥

सद्गुरु वचन।

सुन धर्मन सब कहो संदेशा। तुमको होय न भवका लेशा॥
भव तारण समर्थ है न्यारा। ताको नहिं जाने संसारा॥
योगेश्वर वह गति नहिं पाई। सिद्ध साधकी कौन चलाई॥
भक्ती होय जगतमें भारी। ध्रुव प्रह्लाद सदा अधिकारी॥
भक्तिमाहिं इन सम नहिं कोई। राम कृष्ण प्रगटे नहिं गोई॥
दोनों जने दो व्रत साधू। येही एक इष्ट अवराधू॥
सत युगभक्ति करि ध्रुवराजा। पांच वर्ष आयू तन आजा॥

निकसे गृह ते बाहर भयेऊ । नारदके उपदेशी भयेऊ ॥
छठें मास प्रगटे हरि आई । राज दिये वैकुण्ठ पठाई ॥
साठ हजार वर्ष दियो राजू । कुटुम्ब सहित वैकुण्ठ विराजू ॥
एक दिवस जब प्रलय ह्वयआई । तहां तो पुनि ये देह गिराइ ॥
पुनि सामीप्य मोक्ष कर दीन्हा । परम पुरुषपति तबहु न चीन्हा ॥
काल पुरुष राखे सब घेरी । सत्य पुरुष जग जाय न हेरी ॥
ऐसे भक्त भये जग माहीं । परम पुरुष गत पावत नाहीं ॥
भक्ति सगुण करे यहि पावै । निर्गुन माहीं नाहिं समावै ॥
जो सायुज्य होय गति पूरी । देव निरंजन जाय हजूरी ॥
ज्योति स्वरूपीताका नाऊं । चारों मुक्त बसें तेहि ठाऊं ॥
सालोक्यहि सामीप्य कहाई । सारूपी सायोज्य लहाई ॥
चार मुक्ति जाके घर हाई । ताको पार न पावे कोई ॥
ताके परे मोर अस्थाना । कैसी भक्ति कहा कहों ज्ञाना ॥

साखी-ध्रुवकी गति तुमसों कही, सुन धर्मदास सुजान ।
अपरम्पार न पावही, पूरण पद निर्वान ॥

चौपाई ।

सुन धर्म न एक कथा नियारी । बड़ी भक्ति प्रह्लाद् विचारी ॥
हिरनाकुश दोनों बल्कारा । ताके घर लीन्हा अवतारा ॥
तपके हेतु गये बन माहीं । कोइ बातको संशय नाहीं ॥
गर्भवन्त होती तिहि नारी । इन्द्र अवाज सुनी अधिकारी ॥
नभवानीते भई अवाजा । इन्द्रासनको लेही राजा ॥
हिरनाकुश घर जन्म धराई । सो द्रासन लेही भाई ॥
इन्द्रहि संशय उपजो भारी । गर्भ बातसों देहों टारी ॥
ये छल इन्द्र कियो अधिकारी । अपने देशहिं लेगयो नारी ॥
ताह क्षण नारद आये तहँवा । इन्द्रहिको समुझायो जहँवा ॥

इनको गर्भ न चीरे भाई। भक्त होय सबको सुखदाई॥
गर्भहि मांझ ज्ञान तेहि दीन्हा। नारद एक काम बड कीन्हा॥
दृढ कीन्हों तेहि गर्भके माहीं। वर्ष हजार रही तिहि ठाहीं॥
फिर नारी अपने पुर आई। इंद्रजीत हिरनाकुश पाई॥
तहां जन्म लीन्हों प्रह्लादा। राम रटन रसना ले स्वादा॥
ऐसो रटन लगाये भारी। तासम भक्त न कोइ अधिकारी॥
केतो कष्ट सहे सिर अपना। तबही दुःख न व्यापे सपना॥
हिरनाकुश के मन में आई। राम तेरो मोहिं देहु बताई॥
खम्भ फार लीन्हों अवतारा। हरि नरसिंह रूप तब धारा॥
हिरनाकुश नख उदर विदारा। अपनो जन प्रह्लाद उबारा॥
फिरके इन्द्रासन पहुँचाया। सगुण भक्तिजान सब माया॥
ऐसे इहवत रामहि महिया। तेऊ इन्द्रासन सुख लहिया॥
ऐसे भक्त न होवे भाई। ताकी गति तुमको समझाई॥
इन्द्रासनको राज सुनाऊं। महा भोग बडे सुख पाऊं॥
सत्तर दोय चौकड़ी भुगता। बन्धन भवके होय न मुक्ता॥
बडे भक्त की कथा सुनाई। पूछो और कहो तोहिं भाई॥

साखी—इन्द्र राजसुखभोग कर, फिर भव सागरमाहिं॥
यह सगुणकी भक्ति है, कबहुँ निर्भय नाहिं॥

धर्मदास वचन—चौपाई।

धर्मदास बूझे चित लाई। सतगुरु संशय देहु मिटाई॥
सगुण भक्त मुक्त नहिं होई। है वह एकहि या है दोई॥
यह सन्देह मिटावो मेरा। तुम सतगुरु मम बंदीछोरा॥
कौ सगुण को निर्गुण कहिये। भिन्न २ भेद मोहिं कहिये॥
सकल सृष्टि कहँवाते भयऊ। यही युक्ति काहू नहिं कहऊ॥
जो मोहिं ऊपर दया तुम्हारी। सब विधि कहिये युक्ति विचारी॥

यह संसार कहां से आया। कोहै ब्रह्म अरु को है माया॥
अन्तर छांडि निरन्तर भाखो। मोसन अन्तर कछू न राखो॥
भक्ति भेद कहो मोहे स्वामी। तुम सब घटके अन्तर्यामी॥
जीव काज आये जग माहीं। अब मोको कछु संशय नाहीं॥
सत गुरु मैं आधीन तुम्हारा। तुम भव सागर तारनहारा॥

साखी–निस्संशय पद कहा है, सो मोहिं कहु समुझाय।
फिर भूमें भरमो नहीं, तहां रहो लवलाय॥
कहे सुने सुख ऊपजै, जगमें आवे नाहिं।
काल रहे सिरनायके, सो दीजे समझाहिं॥

सद्गुरुबचन–चौपाई।

कहै कबीर सुनो धर्मदास। अब निज भेद कहो परकासा॥
सुरत लगाय सुनहु मम बानी। ध्यान लेव जो जिह्वा छानी॥
सूक्ष्म गति अतिभारी झीनी। ताहि जगतमें बिरला चीन्ही॥
आदि न अन्त हती नहिं माया। उत्पति प्रलय हती ना काया॥
शून्य शिखर नहिं तत्त्वन मूला। कारण सूक्ष्म नहीं अस्थूला॥
आदि ब्रह्म नहीं ओंकारा। नहीं निरञ्जन नहिं अवतारा॥
दशअवतार न चौबिस रूपा। तब नहिं होता ज्योतिस्वरूपा॥
पुण्य पाप काहू नहिं थापा। सोय ब्रह्म नहिं सोहं जापा॥
नहिं तब शून्य सुमेर न भारा। कूर्म न शेष धरे अवतारा॥
अक्षर एक न ररंकारा। त्रिगुण रूप है नहिं विस्तारा॥
शक्तियुक्ति नहिं आदिभवानी। एक दोय नहिं ज्ञान अज्ञानी॥
शब्द न स्वांति कछू नहिं होई। कहो विचार सुनो तुम सोई॥
नहिं है बीज नहीं अंकूरा। आदि अमी नहिं चन्द न सूरा॥
धर्मदास समझ के रहना। कहौं कहा कछू नहिं कहना॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास कह सुनहु गुसाईं। इन बातन बनवे की नाईं॥
कियेउ संशय वे इक ठौरी। तुम हू हते के है कोइ ओरी॥
सत्य सत्य अब मो पहँ कहिये। संशय रहित सोई पद लहिये॥
त्रयी वाचा ले पूछी साईं। साधु सन्त तुम आप गुसाईं॥

सद्गुरु वचन।

कहे कबीर सुनहु धर्मदासा। सकल भेद मैं किया प्रकाशा॥
जो प्रतीति हो मन महँ तोरा। भव को भेटि शरण रहो मोरा॥
धर्मदास छोडो सब माया। अस्थिर अमर अखंडित काया॥
भक्ति मुक्ति उपजी है जासों। प्रेमहि लाय लावो तासों॥
अब मैं तोहि लखाऊं जागा। छूटे जन्म मरण को धागा॥
जन्ममरण है अति दुखभारी। तासो तुम को लेहुँ उबारी॥
मैं आपा को थापों नाहीं। देख लेहु तुम बाहर माहीं॥

साखी—अब तोहि भेद बताउँ मैं, निर्मल ठौर नियार।
सब परे सब ऊपराहिं, देखो वही अकार॥

चौपाई।

पुरुष कहो तो पुरुषहि नाहीं। पुरुष हुआ आपा भू माहीं॥
शब्द कहो तो शब्दहि नाहीं। शब्द होय माया के छाहीं॥
योवेन हो नहिं अधर अकाजा। कहो कहा यह काज अकाजा॥
अमृत सागर वार न पारा। नहिं जानों केतिक विस्तारा॥
तामें अधर भवन इक जागा। अक्षय नाम अक्षर इक लागा॥
नाम कहो तो नाम न जाका। नामपरा जो काल तिहिताका॥
है अनाम अक्षर के माहीं। निह अक्षर कोई जानत नाहीं॥
धर्मदास तहँ वास हमारा। काल अकाल न पावे पारा॥
ताकी भक्ति करै जो कोई। भव ते छूटे जन्म न होई॥

साखी–भवसागर भरमो नहीं, यही प्रताप हमार।
निश्चय करिके मानियो, तुरत उतरिहो पार॥

धर्मदास वचन चौपाई।

हे स्वामी यह अकथ कहानी। आगे सुनी न काहू जानी॥
योगेश्वर नाहिं पावें पारा। मैं क्या जानों जीव विचारा॥
अचरज शुब्द तुम आयसु नाई। ताकी मम्य न काहू पाई॥
साकी भक्ति करौं किहि भाँती। रूप अरूप न पूजा पाती॥
कौन युक्ति सो भक्ति करीजे। अगम ठौर कैसे कर लीजे॥
जस आनहु तस मोहिं ले चालहु। तन मन छोड देह सुख पालहु॥
अब कछु मोसे होवत नाहीं। सुरत समाय गई तुम माहीं॥
बड़ा बड़ा तुम समरथ दाता। मोकहँ जान परी यह बाता॥

साखी–नाम कबीरा धरा क्यों, कारण कौन प्रमान।
देह धरी तुम आयके, कहिये मोहि बखान॥

चौपाई।

सत्य कबीर नाम मैं जाना। सो भवको क्यों कियो पयाना॥
ऐसे सन्त जन्म क्यों धारा। किहि कारण लीन्हा अवतारा॥
सत्य कहो बन्धनमें नाहीं। निरबन्धन कैसे जग माहीं॥
देही धरी सबहि दुख पाया। तुमहीं काहि न व्यापी माया॥
हठ हो पूछत हों गुरु दाता। रिस न करहु तुम समरथ दाता॥

साखी–मैं पूछत हित आपने, जीव मुक्तिके काज।
साधु सन्त तुम सुजन हो, अब नहिं मोकों लाज॥

सद्गुरु वचन–चौपाई।

धर्मदास कहो तुम साँची। मिथ्या नहीं सत्य सुख बाँची॥
तुम हो अंश हंस पति राजा। तुम्हरे मोह करन को काजा॥
आदि अनादि समीपी मोरा। अब मैं काज करूंगा तोरा॥

वहां से तुमहीं दीन पठाई। यहां आय कर जागी काई॥
काल पुरुष दीन्हा भरमाई। जिन सब सृष्टि बनाके खाई॥
जग जीवन सों तुम हो नियारा। तुम्हरे काज लीन्ह अवतारा॥
अवर काज मोर कछु नाहीं। हों निस्तर जगके माहीं॥
मोहि न व्यापे जगकी माया। कहन सुनन कीहे यह काया॥
देह नहीं अरु दरशे देही। रहो सदा जहँ पुरुष विदेही॥
यह गत मोर न जाने कोई। धर्मदास तुम राखो गोई॥
आदिपुरुष निह अक्षर बाना। देही धर प्रगटे आना॥
गुत रहे नाहीं लख पावा। सो मैं जम में आन चितावा॥
जुगन २ लीन्हा अवतारा। रहों निरन्तर प्रगट पसारा॥
सतयुग सतसुकृत कह टेरा। त्रेता नाम मुनीन्द्रहि मेरा॥
द्वापर में करुनामय कहाये। कलियुग नाम कबीर रखाये॥
चारों युगके चारों नाऊं। माया रहित रहे तिहि ठाऊं॥
सो जागह पहुँचे नहिं कोई। सुर नर नाग रहे सुख गोई॥
सबसे कहों पुकार पुकारी। कोइ न माने नर अरु नारी॥
उनका दोष कछु नहिं भाई। धर्मराय राखे अटकाई॥
भुम पसारा है अति भारी। ताहि न जाने नर औ नारी॥
शिव गोरख सोइ पार न पावें। और जीवकी कौन चलावें॥
नवहि नाम चौरासी सिद्धा। समझ बिना जगमें रहे अन्धा॥
ऋषि मुनि और असंख्न भेषा। सत्य ठौर सपने नहिं देखा॥
जोर कहीं पतयावत नाहीं। बहुत कहीं समझा मनमाहीं॥
कोइ योग कोइ मदके माता। कोइ कहे हम छले विधाता॥
कोइ मौन दिशा मन लावे। मौन होयकर मूड़ मुड़ावे॥
सत्य पुरुष की युक्तिन पाई। हृदय धरे नहिं सत्यको भाई॥
कोइ कहे हम है भज नीका। काज अकाज छले नहिं चीका॥

कोई कहे हम पढे पुराना। तत्त्व अतत्त्व सबै कछु जाना॥
कोई कहे विद्या आधीना। सब बिचार कायामें चीन्हा॥
कोई कहे तप वश करि राखा। तप है मूल और सब शाखा॥
कोई कहे कर्म अधिकारा। कर्महिं सों उतरे भव पारा॥
कोई कहे भाग्य लिखा सो होई। भाग्य लिखा मेटै नहिं कोई॥
कहँ लग कहों यही सब कहई। भेद हमार न कोई लहई॥
सब सो हार मानि मैं बैठा। ये सब जीव काल घर पैठा॥

साखी–सोइ काल करतार सोइ, भक्ति मुक्ति तेहि हाथ।
मेरो कह्यो नहिं आदरे, परपंची बड साथ॥
मनहिं प्रपंची मनहि निरञ्जन, मन ही है ओंकार।
फंदा है त्रयि लोक का, कोइ न भवते न्यार॥
निरंजनहि निर्वान पद, कही तुम्हीं हितवन्त।
योग यती संन्यास गत, कोइ न पावत अन्त॥
सत्त सुर्त्त में रमि रहा, सुर्त शब्द तेहि हाथ।
ऐसी अगम अपार गति, तीन लोकके नाथ॥

चौपाई।

सात शून्यका सकल पसारा। सात शून्यते कोइ न न्यारा॥
सात सुर्त का भेद बताऊं। ता में ज्ञानसकल समुझाऊं॥
उत्पति प्रलय है वाके माहीं। इन गति सों कोइ न्यारा नाहीं॥
प्रथमहिं अमी सुर्त निज ठौरा। तहां निरंजन कीन्हा दौरा॥
वहां जाय अमी ले आवे। ताहों अजर बीज उपजावे॥
सोइ बीज रक्त में धरहीं। यह बिधिसों वह उत्पति करहीं॥
बीजहि जलका रक्त कहाया। तासों रची सकलकी काया॥
दूजी मूल सुर्त तेहि संगा। घट २ मांहिं बनावे रंगा॥
तीजी चमक सुर्त अंधारा। नौ नारीमें किया पसारा॥

कोठा तहां बहत्तर करई। रोम २ युक्ति सब धरई॥
चौथी शुन्य सुर्त है भाई। धर्मदास मैं तुम्हें लखाई॥
पंचम सुर्त श्रवण संग होई। शुभ औ अशुभ सुनावे दोई॥
छठवें सुर्त ठिकाना भाखों। ठांव २ स्वाद तिहि चाखों॥
सो तो रहे कण्ठ के द्वारा। बाणी भाषा कहै बिचारा॥
सप्तमसुर्त रहै तन माहीं। हृदय से कहुं न्यारे नाहीं॥
ब्रह्म रूप धर तहां वह बैठी। गुप्त पसार सकल घट पैठी॥
कोइ न जाने ताको मरमा। ज्ञानी ध्यानी सबही भरमा॥
सात सुर्त का कहो बिचारा। धर्मदास कछु वार न पारा॥
सात कमल का भेद बताऊँ। कमल २ की युक्ति लखाऊँ॥
मूल कमल है मूलहि द्वारा। चार पखुरियां है विस्तारा॥
तहाँ विनायक देव बिराजा। मूलद्वार कमल अति छाजा॥
ता ऊपर फूल है दूजा। षट दल में ब्रह्मा की पूजा॥
तीजे कमल पांखुरी आठा। नाभी माहिं नाल सों गांठा॥
तहां वासुदेव द्वय ठाना। लक्ष्मी सहित बसें भगवाना॥
चौथा पद्म हृदय में होई। देव महेश बसें तहँ सोई॥
षोडश कमल आत्म पहिचाना। शक्ति अविद्या कहों बखाना॥
षष्ठ कमल पखुरी है तीनी। सरस्वति वास तहां पुनि कीन्ही॥
सप्तम कमलत्रिकुटिके तीरा। द्वय दल माहिं बसै द्वयबीरा॥
शशि औ सूर्य प्रकाशक घटका। यह सब खेल निरंजन नटका॥
अष्टम कमल ब्रह्मांडके मांहीं। तहाँ निरंजन दूसर नाहीं॥
आठ कमलका कह्यो ठिकाना। धर्मदास बड भागी जाना॥

साखी–सप्त कमल अरु शून्य रुत, सात सुर्त अस्थान।
इक्कीसों ब्रह्माण्डमें, आप निरञ्जन ज्ञान॥
राज निरञ्जन देवता, ठांव २ भरपूर।
रसातल रु ब्रह्मांड लगि, कहूं निकट कहुँ दूर॥

चौपाई।

सुन धर्मनि सब जुगत बखानी। तुम अपने मनमहँ कछु आनी॥
आदि अन्त सब तुम्हें लखाई। उत्पति परलयकी गति पाई॥
उत्पति परलय सिरजनहारा। मेरा भेद निरंजन पारा॥
तासे जगत न काहू माना। तातें तोहि कहो मैं ज्ञाना॥
जो कोइ मानै कह्या हमारा। सो हंसा निज होय हमारा॥
अमर करों फिर मरन न होई। ताका छूंट न पकड़ै कोई॥
फिरके नहिं जन्मे जग माहीं। काल अकाल ताहि दुख नाहीं॥
सुख सागर सुख मूल बतावा। बड भागी हंसा काहू पावा॥
अंकुरी जीव जू होय हमारा। भव सागर तें होय नियारा॥
प्रणहि प्रतीत करो मन लाई। ताको यह पद देय लखाई॥
सुरतेवन्त सांचा जी होई। इरन तुम्हारी महि है सोई॥

साखी–प्रथमहि दृढ प्रतीत है, होय भक्ति अंकूर।
भाव प्रीति सेवा करे, देउं ज्ञान भरपूर॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

हे स्वामी मैं तुम को चीन्हा। आदि अन्त भेद सब लीन्हा॥
तुमहीं बार तुमहि हो पारा। तुम हीं सों उपजो संसारा॥
तुम हीं हो निज पहिले पारा। तुमहीं सकल जगतसों न्यारा॥
तुम प्रगट मैं सब विधि जाना। तुम हीं हो तहँपद निरवाना॥
ऐसी अगम गम्य तहँ नाहीं। मैं बूझों अपने मन माहीं॥
पूरण कृपा करी तुम साई। मेरे मन कछु संशय नाहीं॥
भव तारण तुम संशय वारण। पर औ अपर दोनोंके धारण॥
समर्थ सब गति पायउ तोरी। अब सब संशय भागी मोरी॥
भयो सनाथ तव दर्शन पाये। माया छूट परम पद पाये॥
छूटा काल निरंजन मोरा। जन्म मरणके टूटे डोरा॥

अब भवमें मैं बहुरि न आऊँ। तुमरे चरणकमल चित लाऊँ॥
येती युक्ति न काहु पाई। सो साहिब तुम मोहि लखाई॥
जान परी मोहि तुम्हरी बाता। तुम सम और न कोई ताता॥
चौरासी सों कीन्ह उबारा। बहुरि जन्म नहिं होय हमारा॥
समझ बूझ करिहों सिवकाई। छोडों कुल की लाज बडाई॥
परदा तो रहिया क्षण माहीं। जग में कोइ काहु को नाहीं॥
अपने अपने स्वारथ आई। परमारथ काहु नहिं पाई॥
ये सब जगत निरंजन माहीं। पांच तीन सो सब उपजाहीं॥
पांच तत्व तीन गुण भारी। इन ते युक्ति दिखाई नारी॥
पानी पवन पृथ्वी आकाशा। सब पर तेज किया परकाशा॥
रज तम सत तीनों गुण जाना। ब्रह्मा विष्णु महेश बखाना॥

साखी—पांच तीन पर आहि निरंजन, यह मायाको ठाट।
तासों सब रचना करी, भांति भांतिकी बाट॥

सद्गुरु वचन।

चौपाई।

कहें कबीर सुनो धर्मदासा। सकल भेद मैं किया प्रकाशा॥
तुम सन अन्तर कछू न राखा। जो कछु हता सो सब कछु भाखा॥
अब तुम भक्ति करो दृढताई। छांडि देव कुललाज बडाई॥
पाहिले कुल मर्यादा खोवै। भव सो रहित भक्ति तब होवै॥
कुल की भय सबही को भारी। कहां को पुरुष कहां की नारी॥
ताते यम को बन्धन कीन्हा। काज अकाज न काहू चीन्हा॥
ताते परदा दूर निवारो। सेवा करो सत्य मन धारो॥
परदा साथ काल की गांसी। यह बन्धन दुनियां सब फांसी॥
राजा परजा बडे कुलीना। परदे काल मर्म नहिं चीन्हा॥
सेवा करो छांडि मन दूजा। गिरही सेवा गिरही पूजा॥
गुरु सों कपट करे चतुराई। सो हंसा जग भरमें आई॥

ताते गुरु सों परदा नाहीं। परदा करै रहै भव माहीं॥
गुरु है मात पिता गुरु सेवा। गुरु सम और नहीं कोइ देवा॥
गुरु है खसम और नहिं दूजा। जाने अंश हंस गुरु पूजा॥
गुरुसों परदा कबहुँ न करिये। सर्वस ले गुरु आगे धरिये॥

साखी—गुरु की महिमा को कहे, शिव विरंचि नहिं जान।
गुरु सतगुरु को चीन्हियाँ, ते पहुँचे निज धाम॥

चौपाई।

धर्मदास सुन जुगत बताऊं। चौक आरती तोहि लखाऊं॥
ऊगर चंदनका चौक दीजे। ज्योति बराय आरती कीजे॥
पांच तत्व पांचो है बाती। बाहर भीतर ज्योति समाती॥
मानिक दीपकका उजियारा। यही बात जाती विस्तारा॥
श्वेतपात ले हो सुख भारी। श्वेत सटाई श्वेत सुपारी॥
येही विधि चौका विस्तारी। मेवा अष्ट आन तहँ धारी॥
मेवा कदलि कपूर मंगावो। कदली फल साईं ले आवो॥
पुहुप फूल सुगंध सवांरो। भांति २ व्यंजन अनुसारो॥
तनमन धन सब अर्पण कीजे। प्रेम सहित ऐसो सुख लीजे॥
पांच तत्व को भोजन कीजे। ब्रह्म आत्महि तृप्त करीजे॥
काया माया को सुख येही। यह सुखकरके मिलो विदेही॥
मिलो विदेह देह घर नाहीं। बूझ लेहु तुम यह मन माहीं॥
अब कछु कहनेको नहिं रहिया। युक्ति इती सो सब हम कहिया॥
भव छूटन को यही उजागर। याही विधि उतरें भवसागर॥
सत्य २ यह बात हमारी। जो कोइ समझ करै नर नारी॥
भक्ति करै मुक्ती फल पावे। हमरे सत्य लोक में आवे॥
कहैं कबीर सुनहु धर्मदासा। छूटे कर्म भर्म सब फांसा॥

धर्मदास बचन।

साखी–कर्म भर्म भव भार सब, दिये भारमें झोंक।
सत गुरुके परताप सों, मिट गये सनही धोंक ॥

सद्गुरु बचन।

साखी–यह भव तारन ग्रन्थ है, सतगुरु का उपदेश।
जो मन माने प्रीति कर, पहुँचे हमरे देश ॥

चौपाई।

गुप्त भेद सुनहु धर्मदासा। आपहि आप भये परकाशा ॥
मूल वस्तु बीज है भाई। उपजै विनशै आवै जाई ॥
निह अक्षर तें अक्षर भाया। अक्षर आदि अमी उपजाया ॥
आदि अमी किये कल पसारा। फैल रहा कछु नाहिं न न्यारा ॥
सोह कला अमीके माहीं। श्वेत बीज झलके तेहि ठाहीं ॥
श्वेत बीज मूल है माया। तासों बची सकलकी काया ॥
श्वेत बीजका सकल पसारा। तामें जीव लिया अवतारा ॥
तब अंकूर अमी तें भयऊ। पारस अंश फैल सब गयऊ ॥

साखी।

उत्पति परलय बीज भति, बीजहि आवे जाय।
गुप्त प्रगट जो कुछ हती, सो सब दिया लखाय।
निह अक्षर अक्षर भया, अक्षर किया प्रकाश।
अक्षर ते मन ऊपजा, सुनो सन्त धर्मदास ॥
मनते माया ऊपजे, माया त्रिगुणहिं रूप।
पांच तत्वके मेल में, बांधे सकल स्वरूप ॥
माया ब्रह्मजी तत्व अरु रज सत तम त्रिय देव।
इन सब ही को छोड़कर, कर निह अक्षर सेव ॥

जो चाहो सोई मिले, मानो मोर विचार ।
यही भेद जाने विना, कोइ न उतरे पार ॥
भव भारी भर्मइ मिटै, संशय शूल न होय ।
हंसनमें जो रम रहा, शरण गहै नहिं कोय ॥
कहै कबीर धर्मदास सों, छोडो तुम संसार ।
यह मेरी परतीत कर, तारो कुल परिवार ॥
अंश वंश परिवार निज, नाद विन्दु गुरु शिष्य ।
जो चाहै निह अक्षरहिं, मुक्ति अंक सोइ लिक्ख ॥

इति श्रीभववारणबोध समाप्त ।

सत्यपुरुषाय नमः ।

अथ श्रीबोधसागरे ।

पञ्चदशस्तरंगः ।

श्रीग्रन्थ मुक्तिबोध ।

सद्गुरु वचन चोपाई ।

ये गुरु गम संशय कर लेखो । प्रगटे ज्ञान तब वस्तु परेखो ॥
अनुभव आदि कुछ कहों बखानी । सुनियो संतो गुरु गम बानी ॥
अनंत कोट जुग आगे चल गयेऊ । अचल अमान ताहि पुनि रहेऊ ॥
साठकोठ जुग औरो बीता । सृष्टि रचनाकी इच्छा कीता ॥
यह तो अचल पुरुष है अन्ता । बिन गुरुदया न भेट भगवन्ता ॥
कोट कथे कथनी नहिं पावा । जबलग गुरुगम नहीं बतावा ॥
साखी पद हैं कोटन वाणी । पुरुष एककहैं सुमरो प्रानी ॥
ज्ञान सुरत ओ शब्द उचारा । यह सब दीन्ह कीन्ह संसारा ॥
अचल पुरुष को सुमरे कोई । जीवत मुक्ति संतकी होई ॥
साखी पद बोले बहु बानी । आदि नामको बिरला जानी ॥
आदि नामका भेद निनारा । बिन सतगुरु बूडे संसारा ॥
सोइ जाने जाको बड ज्ञाना । गुप्त मता तिनहीं पहिंचाना ॥

साखी--आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस ।
जिन जानो निज नामको, अमर भये ते वंश ॥
आदिनाम निज मंत्र है, और मंत्र सब छार ।
कहे कबीर निज नाम बिन, बूड मरा संसार ॥

चौपाई ।

आदिनाम कहँ खोजहु प्राणी । जाते होय मुक्ति सहिदानी ॥
मूलमन्त्र मन्त्रन महिं सांचा । जोगहि चले सो नगरहि पहुँचा ॥
आदि नाम जेहि खोजत भेटा । जरा मरनको संशय मेटा ॥
आदि नाम निः अक्षर सांचा । जाते जीव कालसों बांचा ॥
निःअक्षर धुन जहवां होई । ताहि जपे नर बिरला कोई ॥
जाके बल आवे संसारा । ताहि जपे ना हो भव पारा ॥
गुप्त नामगुरु बिन नहिं पावे । दूरा गुरु हो सोइ लखावे ॥
सार मन्त्र लखे जो कोई । विषधर मंडवा निर्मल होई ॥
आदि नाम मुक्तामणि सांचा । जो सुमरे जिव सबसों बांचा ॥
आदि नाम निज सार है भाई । जमराजा तेहि निकट न आई ॥
जब लग गुप्त जाप नहिं जाने । तबलग काल हृदय नहिं माने ॥
गुप्त जाप ध्वनि जहँवां होई । जो जन जाने बिरला कोई ॥
गुप्त मता लै पुरुषहिं चीन्हा । अबते गुरु मोहिं दीक्षा दीन्हा ॥
तात चरण प्रभु चरण विहीना । सकल मनुष्य नमर नहिं चीना ॥
मूल मन्त्र जेहि पुरुषके पासा । सोई जनको खोजले दासा ॥
मूल मन्त्र है आ सब साखा । कहें कबीर मैं निजके भाखा ॥
लिखो न जाय कहे को पारा । है अक्षरमें जो पावे निरवारा ॥
लिखो न जाय लिखामें नाहीं । गुरु बिन भेंट न होवे ताहीं ॥

साखी-प्रीति बिना नहिं पाइये, जो नहिं सुर्त समान ।
पुरुष दीप तब पाइए, जबहीं तजे अभिमान ॥

चौपाई ।

परम पुरुषसों भेट न भयऊ । बिन गुरु दया प्रगट ना कहेऊ ॥
धर्मदास मैं कहों समुझाई । निर्गुण भेद कोइ बिरले पाई ॥
तुम तो जीव पर बोधो जाई । जमराजा परपंच लखाई ॥

जीवहिं राखे फंद फंदाई। शब्दवान महँ मारो जाई ॥
शब्द वान में तुम कहँ दीन्हा। जीव को देहु मुक्तिको चीन्हा ॥
नाम पान सों ईस बचाही। शब्द सुर्ते लै जुग बंधाही ॥
जुग बंधे मारे नहिं कोई। लाख जतन चतुरा जो होई ॥
सबको मूल ताहि गहि लीजे। सुरत सम्हार ताहि चित दीजे ॥
डार पत्रको जो कोई धरई। बिना मूल सो जीवन तरई ॥
गुत मता जो पकरे भारा। आप तरे औरनको तारा ॥
करे बिवेक ताहि ठहराई। सोइ पुरुष को पावे भाई ॥
साहि संत थापों परनाली। सदा भरों राखो नहिं खाली ॥
जो प्राणी लीजे ठहराई। इंसराज ते करि है भाई ॥
ताहि संत थापों परनाली। सदा भरों राखो नहिं खाली ॥
जो प्राणी लीजे ठहराई। इंसराज ते करिहै भाई ॥
साखी पद बोले सब कोई। बिन परिचये मुक्ति नहिं होई ॥
अगम अगोचर मत व्यौहारा। गहो ताहि उतरो भव पारा ॥
यहि धन रास जीवनको जाई। कर बनीजी कछु टूट न आई ॥
यह पूजा है अगम अपारा। खरचहु खाहु बढे बिस्तारा ॥
यह धन मिले भाग बड केरा। जब धन लोच गाहक बहुतेरा ॥

साखी-पूजी मेरे नाम है, जात सदा निहाल।
कहै कवीर मैं पुरुष बल, चोरी करे न काल ॥

चौपाई।

जो जिव है निज नाम समाना। भये मुक्त जो लोक सिधाना ॥
सोई हंस का तुम सत लेखो। अक्षर माहिं निरक्षर विवेको ॥

धर्मदास बचन।

कहैं धर्मदास संतन के दासा। गुरु मेटो मेरो जमको त्रासा ॥
नाम निःअक्षर कहो उतपानी। आपे तैं कैसे कें जानी ॥

सद्गुरुवचन।

कहें कबीर धर्मदास सुजानी। अकह हतो ताहि कहौं बखानी॥
जब नहिं लोक दीप विस्तारा। तब नहिं सुकृति करी संसारा॥
तब नहिं धरती अमर सुमेरू। तब न हैं हतो अमल औ कुवेरू॥
तब नहिं सृष्टि सकल पसारा। आप अकह तब हता निनारा॥
सकल सृष्टि उत्पन कछु नाहीं। तब सब उत्पन कहां सब माहीं॥
हते आप तब शब्दहिं स्वासा। इच्छा भये कीन्हें उजियासा॥
इच्छा ते अनहद ध्वनि बानी। सुरत संभार सृष्टि उत्पानी॥
सुरत भीर तेहिमाहिं समानी। इच्छा तें अनुभव उत्पानी॥
तब ते अक्षर भेद निनारा। साखी पद कीन्हा निरधारा॥
अकह अचल पुरुषहिं तहां आपु। नहिं दुख सुख नहीं संतापु॥
सबका मूल ताहि सों लागी। उलट समाय सोई बड़ भागी॥

साखी—कहैं कबीर जो शब्द लखि, रहें सुर्त लौलीन।
कबीरा सुर्त के समय, निश्चय लोक को चीन॥
जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय।
बिन अनुराग न पावई, कोट करे जो कोय॥

चौपाई।

सत्य शब्द जो आवे हाथा। सकलो काल नवावे माथा॥

साखी—काल सदा सिर ऊपरे, काल नजर नहिं आय।
कहें कबीर वड आपने, जमसे जीव छुडाय॥

चौपाई।

नाम अमर मल्यागिर भाई। पीवत विष अमृत हो जाई॥
निशिदिन रहे मल्यागिर संगा। विष न लगे सो तिनके अंगा॥

साखी—काल फिरे शिर ऊपरे, हाथों धरे कमान।
कहे कबीर गहु नामको, छोड सकल अभिमान॥

चौपाई।

नर नारी जो गर्भहि धरहीं। नाम विना पुन नर्कहि परहीं॥
सुनो संत हो शब्द रसाला। गहो ताहि जो हो उजयाला॥
वाके जिवनिज नाम समाना। ता कहँ काल अमरकर जाना॥
विनती कर पूछे धर्मदासू। दोइ कर जोर रहे गुरु पासू॥
सतगुरु कहें सुनो धर्मदासा। शब्द बान लेव हमरे पासा॥
मैं गुरु भयो शब्द मोरे हाथा। सब घटवाह नवावें माथा॥

साखी–भाग बडे तेहि जीवके, आय मिले मो संग।
पुरुष मिले वहि बाँह धर, सुख विलसे एक संग॥

चौपाई।

जब हम रहे पुरुष के माहीं। काहि कहौं कोउ दूसर नाहीं॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। होय निःशंक मेटा जम त्रासा॥
मेटौं भर्म होय निःशंका। कायगढ जीत बजावे डंका॥
भयो प्रकाश गुरु भेद बतावा। जीव बोध सतलोक पठावा॥

साखी–जमराज बड दारुण, महा विकट ब्रह्मंड।
ताके डंका सुनत ही, भय माने नव खंड॥
नाम खड्ग दृढ राखहु, गहो सुर्त सम्हार।
काल सो जीव उबारिके, पठवहु भव जल्पार॥

चौपाई।

जबते अजर पुरुषको चीन्हा। तबसों काल भये बल हीना॥

साखी–यहां वहां कहि जीव छुडाइये, काऊ रहे सिर सांध।
सुर्त समावे चेतन चौकी, रहे न जमके बाँध॥
आदि नाम तेहि पुरुषके, सुनत तजहि अभिमान।
कहैं कबीर सुनो हो संतो, तजो नरककी खान॥

चौपाई ।

कासों कहौं कहा नहिं जाई । मेरी मत मत बूझ न पाई ॥
हमहिं दास दासनके दासा । अगम अगोचर हमरे पासा ॥
यहां वहां यदि दोनों ठाऊं । सत्य कबीर कलिमें मोर नाऊं ॥
जो न इते हमहीं पुन सोई । नाम विना भूलें नर लोई ॥

साखी-कोटि जाय संसारमें, ताको मुक्त न होय ।
आदि नाम है मुक्तका, जाने विरला कोय ॥

चौपाई ।

गुप्त जाप है अगम अपारा । ताहि जपै नर उतरै पारा ॥
मुक्ति न होवे नाचे गाये । मुक्ति न होई मृदंग बजाये ॥
मुक्ति न हो साखी पद बोले । मुक्ति न हो तीरथ के डोले ॥
गुप्त जाप जाने जब कोई । कहे कबीर मुक्ति भल होई ॥
संत सुभाग गुरु दाया कीन्हा । आदि नाम हंसनको दीन्हा ॥

साखी-सोई नाम संसार में, उदित अमोल अपार ।
ताहि नाम बिन मुक्ति नहिं, बूडि मुआ संसार ॥

चौपाई ।

कथा कीर्ति कहुं मदमद बानी । मुक्ति न होय विना सहदानी ॥
केता कहो कहा नहिं जाई । नाम गहेसों पुरुष मिल जाई ॥
सार शब्द परवाना देहै । जीव छुडाय कालसों लेहै ॥

साखी-फनपति बीरन देखके, राखे बनहि सकोर
बीरा देखे नामके, काल रहे मुख मोर ॥

चौपाई ।

सोहं शब्द निरक्षर वासा । ताहि भिन्न कर जपिये दासा ॥

साखी-जो जन हेहै जौहरी, सो धन लेहैं गाय ।
सोहं जाप सब जगतए, मिथ्या जन्म गमाय ॥

साखी पद संसारमें, कहन सुननको कौन।
चीठी आई पुरुषकी, सो घन लेहो चीन ॥
जो जन हैहै जौहरी, सो कहनेका जोग।
बिन सतगुरु ना पावई, भटक मुए सब लोग ॥

चौपाई।

जब वानी मुख बाहर आवा। भाग बडे तिनही पुनि पावा ॥
कोट जतनके जीव समुझावा। बिना भागते नाम न पावा ॥
गुरु गम लेहें संतके पासा। सो नहिं परें कालके फाँसा ॥
जो कहँ पुरुष अपन कर जाना। सोइ भक्त अंतरगत ठाना ॥

धर्मदास बचन।

धरमदास कहें कर जोरी। बन्दीछोड बिनती सुन मोरी ॥
तब साहब अस बोले बाती। लेऊँ छुडाय राखों निज साती ॥
तुमको दीन्हीं भक्ति अपारा। नाम जपो तुम अजर हमारा ॥
जो ना बूझे कहा न करई। मुक्ति न होय नरकमें परई ॥
श्रवण माह कह दीन्हें भाई। तौन विवेके आ वैठाई ॥
नाम सुने मोर मो कहँ पावे। जब जालिम तोहि देख डरावे ॥

साखी–सब कहँ नाम सुनावहु, जो आवे तुव पास।
शब्द हमारा सत कहत हौं, दृढ मानो विश्वास ॥

चौपाई।

जो जन गृह तजि ले बैरागी। जहां जाय तहाँ संगे लागी ॥

साखी–मूल के कान जो लागे, रहे रहन ठहराय।
वह साधू भर्मे नहीं, सो नहिं नरके जाय ॥
कहे कबीर तज भर्म पिटारी, नान्ह होयके पीव।
तज अभिमान गहो गुरुचरन, जमसों बाचे जीव ॥

चौपाई।

आदि नाम निःअक्षर नीरा। तीन नाम ले जीवहि तीरा॥
आदि नाम ले पंथ चलाई। सोई संत प्रमान कहाई॥
थापो ताहि देउँ ठकुराई। जबलग रहही मोर दोहाई॥
गहि मोर नाम मोहि माहिं समावे। और नामते मोहि न पावे॥
सोई नाम संतन सहिदानी। आप मिले लेवे पहिचानी॥
चहिउ... निरभय उजियारा। ताहि नाम सों जीव उबारा॥
कहे धर्मदास सतगुरु सुन लीजे। अगम पंथ को कैसे दीजे॥

सद्गुरु वचन।

कहे कबीर पूछेउ भल आई। अगम पंथगम कहौं बुझाई॥
अगम पन्थ है विकट विकारा। तासों कबहुँ न होवे पारा॥
शीतल शब्द लेहिं सहिदानी। उतर जाहि कछु शंक न मानी॥
जाय मिले पुरुषहि के पाहीं। जेतिक जीव तुम्हारे वाहीं॥

धर्मदास वचन।

अनहद शब्द बहुत विस्तारा। कैसे पैहैं भेद तुम्हारा॥

सद्गुरु वचन।

आदि नाम पुन तहवां होई। सो धन बूझे बिरला कोइ॥
सुरत परस होवे मलताना। ताको मिले निज पद निर्वाना॥
सुरत बांध जब गुरुहिं समावे। वस्तु अगोचर तबहीं पावे॥
तब अभिमान मिले जब आई। ताको दीजे ऐन दिढाई॥
सब तज रहे रहन ठहराई। औ छाडे सब लोग बडाई॥
ताको दीजे वस्तु अपारा। कहें कबीर सुन शब्द हमारा॥
मलत गरीब रहनसे भारे। तन मन धन संतनपर वारे॥
लोक लाज कुल तजे बडाई। तब गम परस भर्म मिटजाई॥
बिन विश्वासभक्ति परकाशा। प्रीति बिना नहिं दुविधा नाशा॥

गुरु से शिष्य करे चतुराई। सेवा हीन नरकमें जाई ॥
संतन वारें तन मन धामा। सोई संत मेरे मम नामा ॥
साखी-होय विवेकी शब्दके, जाल मिले परवार।
नाम गहे सो पहुँच है, मानो कहा हमार ॥

चौपाई।

नाम उदित सो संत पियारा। मारों काल होय जर छारा ॥
जिन २ नाम सुने हैं काना। नर्क न परे होय मुक्ति निदाना ॥
आदिनाम जेहि श्रवणन नाहीं। निश्चयसो जिव जम घरजाहीं ॥
सुमरो पुरुष काल डर कंपा। भौमाने नाहीं सिर चंपा ॥
नाम निरक्षर सुधि जब पावा। काल अपनले निकट न आवा ॥
साखी-आदि नाम है पारस, मन है मैला लोह।
पारस परस उजियार भये, छूटे बंधन मोह ॥

चौपाई।

कहँ लग कहों कहन नहिं पारा। नाम गहे सो संत हमारा ॥
आदि नाम जस सार के गैसी। लागे बान ठाव रहे वैसी ॥
साखी-सतगुरु मारे बानभर, डोले नहीं शरीर।
का चाबुक वह कर सके, सुस लागे वह तीर ॥
गांसी लागे सुख भये, मरे न जीवे कोय।
कहें कबीर अमर सो प्राणी, जो नहिं मृतक होय ॥

चौपाई।

लागे जहां वस्तु सो पावा। बिन लागे को भेद बतावा ॥
नाम अमर रस चाखें कोई। ताको जरा मरन नहिं होई ॥
अक्षर गुप्त सोई मैं भाषा। औरो शब्द स्वाद अभिलाषा ॥
साठ गुप्तके सुने जो भेऊ। यह गति जाने बिरला केऊ ॥
पाताल गुप्त है बारह खंडा। बारह गुप्त कहों ब्रह्मंडा ॥

बारह सुन्न आकाश बताई। बारह सुन्न पुरुष के ठाई॥
बारह सुन्न कहो अनुमाना। कहैं कबीर गुरुसे हम जाना॥

साखी—चकह मूल सब सुन्नके, सुन्न सकल ब्रह्मंड।
तहवां से बस्ती भई, सात द्वीप नव खंड॥

चौपाई।

चार पदारथ एक पथ माहीं। बिन गुरु नर कहँ बूझे नाहीं॥
अदेख देखे कथा जो कथई। आप परस दोऊ ता मथई॥
कथनी कथे प्रतीत दृढ़ाई। मथनी शब्द अभय पद पाई॥
जब देखे औरे नहीं माने। तज पाखंड सत्यको जाने॥
तहां संत को है जमरावे। जाके जीव सहिदानी पावे॥
सो जाने पुन इमर ठिकाना। ता कहँ दीजे निज सहिदाना॥
नाम अमर रस मनुवां पागे। होय लौलीन तहां सो लागे॥
गहि पकरे नर सुर्तकी डोरी। तासों काल करे नहिं चोरी॥
दृढ के मनुवां आदि जो थीरा। कहैं कबीर सो सांच फकीरा॥
सत्य समोय झूठ परहरई। दाग न लगे सत्य सों तरई॥
ताकहँ गुरु आपन कर लीन्हा। नाम नौति हंसन को दीन्हा॥
बे जन गुरु के नाम समाना। भक्ति हेत सोई सब जाना॥
जबलग भक्ति अंग नहीं आवा। सार शब्द कैसे के पावा॥
सत्य नाम श्रवणन में बोषे। ज्यों माता बालक कहँ पोषे॥
जहां गुरु भक्त तहां लौ लावे। सुने जु बाह मुक्तिगत पावे॥

साखी—सुर्त समानी नाम है, जगमें रहे उदास।
कहैं कबीर निज नामही, दृढ राखे विश्वास॥

चौपाई।

जाके उर विश्वास न आवे। भक्ति अंग सो कैसे पावे॥
सुरत हृदय निशदिन तहां जागे। मुक्त होय कछु बार न लागे॥

चढी निशंक मन मगन रहाया। सो नहिं परे कालके हाथा॥
जो बिन माया सों लौ लावा। गहे काल मुख नात न आवा॥
सोई संत समाधी मारा। जाके जीव सहिदानी डोरी॥

स्त्री-गुरुके शब्द साधुकी पूँजी, बणिज जाने जो कोय।
कहैं कबीर तो वडे सवाई, हानि न कबहूँ होय॥

चौपाई।

जबलग सारनाम नहिं पावे। तबलग प्राणि मुक्ति ना आवे॥
सार नाम बिन सीपके मोती। उपजे बहुत बिना हर खेती॥

साखी-येहि विधि करे किमानी, पोता तल बल होय।
भक्त मिले कोइ बीरला, दाम देय सब कोय॥
मूल कहा मोर नाम हैं, दरमाहे गुरु मान।
सब संतोसों लिये फकीरी, डार सकल अभिमान॥

चौपाई।

आदि नाम जे संतनमाहीं। जम का करे निशंक डर नाहीं॥
आदि नाम है अक्षर माहीं। गुरु बिन नर्क पुन छूटे नाहीं॥
सोई मे निः अक्षर रहाई। बिन गुरुके कौन देहि लखाई॥
चीन्हे परे आवे विश्वासा। लोक वेदकी छूटे आसा॥
चीन्हें आदि निः अक्षर वानी। छूटे भर्म होय ब्रह्म ज्ञानी॥
कहैं कबीर संत सोइ भागी। जाके सुर्त निरंतर लागी॥
नाम चीन्ह पै कहों पुकारी। नातर बूडे भैंउ मझधारी॥
कहाँ शब्द मानो नर लोई। आदि नाम बिन मुक्ति न होई॥
गुरुके कहे में कहों संदेशा। नाम लेवे सो पहुँचे देशा॥
गुरुके शब्द जो माने नाहीं। मुक्ति न हो बूडे भव माहीं॥

साखी-जम त्रासे बल बांधे, कहीं पुकार पुकार।
गुरुकी त्रास न होती, तो खाते उनको फार॥

चौपाई।

जाको होय गुरुकौ विश्वासा। निश्चय जाय पुरुषके पासा॥
नर प्राणी कीजे इतबारा॥ गुरुके कहे मैं करों पुकारा॥
कहे कबीर मिलन बिन आज्ञा। मिलन भये मैंटे विश्वासा॥
निशदिन रहे निज नाम समाना। तब जाने भजनी परवाना॥
यह सब कहो परमारथ काजा। यही पारखंड नर अरुझे बाजा॥
अक्षर आदि निज नाम सुनाऊं। जरा मरन के भर्म मिटाऊं॥
सोई के संग आये संसारा। सो गुरु दीजे मोहिं उपकारा॥
ताको भर्म जान जो पावा। सो साधू जगमें नहिं आवा॥

साखी–यह अक्षर नहिं पावहीं, पलमें लेहु उबार।
भवसागर तर जायेंगे, क्षणमें लेहु उबार॥

चौपाई।

गुप्त मता पावे जो कोई। गेही त्यज बैरागी होई॥
अकह वस्तु तब निज के पाई। तब पारखण्ड कछू नहिं आई॥
अजर पुरुषको खोजहु प्रानी। कहें कबीर कोइ संतसमानी॥
आदि नाम सो सुरत समावे। निश्चय मुक्ति अमरपद पावे॥
गुरुके शब्द जीव दृढ करई। सोई सन्त भवसागर तरई॥
मनके सुख बूझे भर्म फांसा। बूझ जाय न हो सुख बासा॥
सुरतसम्हार कहत हम तोहीं। पिछे दोष न आवे मोहीं॥
आदिनाम जो अमीरस चाखे। पांच पचीस बांधके राखे॥

साखी–प्रेम पंथ पगु धरे, देत न सीस डराय।
सपने मोह न व्यापे, ताको जन्म नसाय॥

चौपाई।

तन मन धन संतन पर वारा। सोई संत निज हितू हमारा॥
का कहूँ अमर भरी मैं देऊं। तेहि संतको निकट बुलाऊं॥

सोइ संत सतगुरु हुँसुखदासा । अजर पुरुष जहां अजर प्रकाशा ॥
अनन्त कोट जाको पार न पावे । को अस दूसर गुरू कहावे ॥
हम तुम नारि पुर्ष सब माहीं । जहां है सोहं तहां हम नाहीं ॥
ताहि खसम चीन्हे नर लोई । तन धर प्रगटे पुरुष न होई ॥
अकह अमान पुरुष जब रहेऊ । नाम निःअक्षर तासों भयेऊ ॥
ताहि नाम को सुमेरे कोई । सुरनर मुनि इन्द्री वस होई ॥
अधर पियाला पिय रस सांचा । सोइ अमर औ मतका ऊंचा ॥
पियत अमीरस अधिक सुहाये । अधिक पिये पुनि त्रास नसाये ॥

साखी-पांच पचीसों तीन गुण, एक मिहलके राख ।
आदिनाम अनभय उचारो, तन मन धन सो चाख ॥
धन परखे धनवंत जो, ज्ञान दृष्टि जो होय ।
आंधे गुरु विन ना सुझे, कोट करे जो कोय ॥

चौपाई ।

कहे कबीर भर्म जब छूटे । मुक्ति भली सांचे कर लूटे ॥
कहेउँ उचार कछु परदा नाहीं । विन गुरु नरको सूझे नाहीं ॥
कथनी कथे कथे का होई । गुरु विन मुक्ति न कबहूँ सोई ॥
शब्द रूप हमहीं होय आये । हमहीं होय कड़िहार कहाये ॥
हमहीं नाम प्राण यह माहीं । हमहीं सन्त मर्द तेहि पाहीं ॥

साखी-ज्ञानदीपक सुरत की बाती, दीनो संतन हाथ ।
दीपक लेके खोलिये, निस दिन सतगुरु साथ ॥
ज्ञान दीपक प्रकाशके, भीतर भवन उजाळ ।
तहां बैठ पुरुष को सुमरो, सहजे होय निहाल ॥

चौपाई ।

ऐसी रहन रहे जो सांचा । सो भजनी सबही से ऊँचा ॥
यहि बिधि भजनकरे जो कोई । तीन लोकमें वास न होई ॥

शोक वेद कर्म भरम नसावे। हाय सुदृष्टि प्यास को पावे॥
यह संसार अस कर जाने। सत्य पुरुष को जो पहिचाने॥
कहें कबीर या तनको सोधो। पांच पचीस तीन को बोधो॥
एक नाम बिन जम जस खाना। कोट करे नहिं मुक्ति निदाना॥
साखी–कहें कबीर ये सब मुए, छहि विषयरकी धार।
जे जीव सतगुरु पावें, त जीव जग से उवार॥

चौपाई।

बिरला जन कोई भक्ति ही लहई। जो थिर होय तो भक्तिही कहई॥
आपही पुरुष और सब नारी। सेवक भये सकल देह धारी॥
अचल अमान जो अकह कहावा। ताकी गति बिरला जन पावा॥
आदि पुरुषको किस्ल पावा। ब्रह्माविष्णु शिव पार न पावा॥
साखी–अमृत वरण ये सूरत, ताहि कहां गुण पेख।
गुरु की दाया सो लखे, सुरत निरतकर देख॥

चौपाई।

निःअक्षर निर्गुण सो जाने। और सकल जग गुण नहिं आने॥
तीनों गुण है सगुण बोले। निर्गुण तनके माहीं डोले॥
आदि नामसा सब जग बांधा। आदि नाम जाने सो साधा॥
आदि नाम तहां अक्षर धारा। ताहि नाम ले सब विस्तारा॥
आदि नाम देव शंकर भयऊ। और नाम है नरके सुभाऊ॥
यह साखी निरचे कर जाने। आदि नाम कहँ मूल बखाने॥
मूल मंत्र जाने जो कोई। ताको आवागमन न होई॥
भूले लोग कहँ हम पावा। मूल वस्तु बिन जन्म गमावा॥
प्रेम अभागी मूल नहिं जाने। डार पत्र में पुरुष बखाने॥
साखी–अजर पुरुष एके रहे, अजर दीप है स्थान।
कहे कबीर सर्वांग बिराजे, ताहि पुरुषको जान॥

चौपाई।

निःअक्षर पावे नहिं सोई। कैसे के स्थिर प्राणी होई॥
जब लग गुरुसों करे न नेहा। तबलग प्राणी प्रेतकी देहा॥
आदि नाम अमृत तन पावा। जाति पांति कुलधर्म नसावा॥
आदि नाम है गुप्त संसारा। जो पावे सो होय हमारा॥
संत कुल तोर भर्म कुल तोरे। सत साधु सों नाता जोरे॥
तज पाखण्ड बैरागी होई। अपने पिया को पावे सोई॥

साखी—कहा काल का कर सके, पुरुषनाम जेहि पास।
निर्गुण निंदक पच मुए, गुरु का नहीं विश्वास॥

चौपाई।

पुरुष नाम जेहि परिचय होइ। सब भेषन में गुरु है सोई॥
ताकी महिमा अगम अपारा। लोक वेद तज भये नियारा॥
अचल पुरुष जा अचल है देशा। आदि नाम ले कर परवेशा॥
जाहि वस्तु में मिटे दुख द्वंदा। सुख सागर तहां प्रेम अनंदा॥
अगुण सगुण होई झगरा बाजे। दोउ दल तजिके पुरुष विराजे॥
कहें कबीर या भक्ति के मूला। अकह अमान अचल अस्थूला॥
अन्नन वरण सो भेद निनारा। घट २ बसे लिप्त तन धारा॥
ताहि पुरुष को चीन्हें प्राणी। घट में रहे निकस ना जानी॥
तबही कहिये खसम खुदाई। कौन कपटमें आवे जाई॥
कौन पुरुष में रहे समाई। सो प्रभु है संतन सुखदाई॥
यह सब धन अनुभवकी बानी। खोजी होय सो पावे प्रानी॥
देख परख आवे विश्वासा। अगुन सगुन के सबें तमाशा॥
सत्य शब्द कहि दीन्ह संदेशा। जरा मरन का मिटे अंदेशा॥
संत संदेश गुरू मोहि दीन्हा। जे जन होय ताहिको चीन्हा॥
कहें कबीर है वस्तु अपारा। ताहि वस्तु गहि उतरे पारा॥

मूल मंत्र सब मथिके बूझे। अगम अगोचर तब कछु सूझे॥
जो २ वस्तु दृष्टि में आवे। सोइ वस्तु काल धरि खावे॥
यह धन मिले देखे प्रणधारी। ताको दीजे भेद विचारी॥
साखी–बिन देखे बोले जस, अंधरा हाथि परेख।
बलिहारी वहि संत की, निरख परख के देख॥

चौपाई।

तन अभिमान सब गर्वहिं धरहीं। मूल मंत्र कैसे लख परहीं॥
होय नहिं दास धरे अभिमाना। ताहि न दीजे अनुभव ज्ञाना॥
मुक्ति भये संतन हित कीन्हा। मुक्ति भली प्रगट कहि दीन्हा॥
कहें कबीर तेहि की बलिहारी। पुन अनुभव में कहों पुकारी॥
साखी–समझाये समझे नहीं, धरे बहुत अभिमान।
गुरु के शब्द उच्छेद के, कहत सकल हम जान॥

चौपाई।

बोले वचन बहुत विस्तारा। आदिनामबिन घटे अंधियारा॥
पुरुष न चीन्हे फिरे भुलाना। निश्चय परे सोई नर्क निदाना॥
एक नाम बिन पार न पावे। मिथ्या प्राणी जन्म गमावे॥
देख परे सोई सब भाषा। और कहन की है अभिलाषा॥
जाकर सब घट करे समाई। ताते साधू देहि लखाई॥
अधिक भरे ऊंचे से सींजे। सो माया जो रुच २ पीजे॥
और सींचे अनुभव धन देखे। और सकल मिथ्या धन लेखे॥
हरष शोक दोउ परहारे। होय मगन गुरु चरणे धारे॥
अजर अमर सो अकह कहावे। जो धन मिले सो संत कहावे॥
साखी–यह धन पूंजी गुरू की, भाग बडे जिन पाय।
कहें कबीर आय नहिं टोटा, नित खरचे अरु खाय॥

चौपाई।

यह ना आवे अमर प्रकाशा। जो धन खोजहु गुरुके पासा॥
यह धन मिले होय बड भागी। सोई संत परा बैरागी॥
करे विवेक वस्तु है न्यारी। यह सब है सपने की व्यारी॥
ताहि गहे नर सुरत सम्हारी। सोई संत पूरा हितकारी॥
बारा राशि मंत्र चौबीसा। यह सब है सपने को ईसा॥
बिन परचै नर आह जो करई। निश्चय जाय नरक सो परई॥
जो नहिं मोक्षके शब्द विचारा। तिनहिं काल ले करे अहारा॥
सार नाम बिन मुक्ति न पावे। बूड मरे पुन थाह न आवे॥
निंदक नरक परे नहिं तरई। चार खूंट में भर्मत फिरई॥
देह धरे नहिं सुर्त हराई। उपज बिनास चौरासी जाई॥

साखी–भर्म जाल संसार है, सब अरुझे भव भीत॥
कोई कहैं जन एक है, मनमें राखो मीत॥
चरणामृतको पायके, दृढ राखे विश्वास।
निरभय मुक्ती पाइये, पहुंच दीपकी वास॥

चौपाई।

सुर्त दीप की अकथ कहानी। अगम अगोचर अनुभववानी॥
अकह सुर्त जहँ अगम अपारा। ताहि गहे उतरे भव पारा॥
लखे अंक जो अकह कहानी। अगम अगोचर अनुभववानी॥
तजै पाखंड सोई निर्वानी। सोई संत कहावे ज्ञानी॥

साखी–पुरुष सार सों न्यार है, दीखे सबहिन मीत।
ज्ञान दृष्टि में जगसों छूटे, जो जन प्रेमपुनीत॥
कहैं कबीर दरसाये, जाके उर निश दिन रहै॥
सोई करे गुरुवाय, छाप मारे संसार है॥

चीठी उतरे दरसौं, ताके सिर वैराग।
नाम गहे पुरुष पावहीं, तब गुरु प्रगटे भाग॥

चौपाई।

पावे वस्तु मगन होय रहई। चढे ना उतरे लाख जो कहई॥
होय निशंक नहिं चित्त डुलावे। जो जेहि सुर्त धरे सो पावे॥
अकह अमान पुरुष सोई। तन धरि प्रगटे पुरुष न होई॥
मूल वस्तु पावे बड भागी। देखिय साखी पदमें नागी॥
कही न जाय अकह को देखा। गुरु की दया सुर्त सो पेखा॥
साखीपद के तहाँ न काजा। आप मिले सोइ सेज बिराजा॥
अनुभव शब्द जहां ठहराना। को कहसके न जाय बखाना॥
देख परख आवे परतीती। तब जैहै चौरासी जीती॥
तहां नहीं तुम दुतिया भाऊ। आप मेटु तबही सब गाऊ॥
वहां बैठ अमृत फल पाऊ। जब निःशंक बहुर नाहिं आऊ॥
गुरु के शब्द हृदे मो आना। ता नरकी भई मुक्ति निज जाना॥
कोटि असुर की राई आवे। दृढ विश्वास सत्त जेहि पावे॥
कहें कबीर है शब्द सुहेला। गुरु पूरा सूरा होय चेला॥

साखी--गुरु पूरा शिष्य सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सत सुकृत कहँ चीन्हके, तब तखत पर बैठ॥

इति मुक्तिबोध समाप्त।

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक नाम, पाक नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दया नामकी, वंश व्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे।

षोडशस्तरंगः।

श्रीग्रन्थ चौका स्वरोदय।

प्रथम प्राण योग जो भाखा। कारज सिद्ध जो बाहेर राखा॥
प्राणायाम भेद सबहीको सारा। कारज सिद्ध वेद व्यवहारा॥
बोई सरूप हम आदि निर्माये। आधेको नर आधकी नारि बनाये॥

सो स्वरूप हैं आदि निसानी । सत्यस्वरूपसो जीव समानी ॥
प्रथम शब्द सुरति स्मृति निर्माया । जिनते वेद और लोक बनाया ॥
द्वुतिय इच्छा अंकुरकू कीन्हाँ । उत्पति प्रलय सौंपि सब दीन्हाँ ॥
तृतिये माया मन विस्तारा । तिनके बीज जीव संचारा ॥
चौथे सुर चंद्रहि परकाशा । शुक्र भेद तिहि माँहिं निवासा ॥
पाँचयें दिवसरातओर तिथी पसारा । तापर सूर्य चंद्रकी धारा ॥
एक नारि एक पुरुष कहावा । चंद्र सूर्य नाम तिन पावा ॥

साखी-तिनको भेद शरीरमें बरते, पांचतत्त्व निजसार ।
कहें कबीर सोई लखै, पूर मिले कँडिहार ।

चौपाई ।

काया भर्मभेद अधिकारा । नरि पवन दोइ अस बैठारा ॥
नीर नामते उत्पति होई । नीरहि साधे मरै न कोई ॥
दुसरा पवन अंशकी धारा । तापर सोई सुरति बैठारा ॥
पवनभेद है अगम अपारा । आदि अंत सब कीन्ह पसारा ॥
पवनडोरि स्वासा अवगाहा । बिन सद्गुरु पावै नहिं लाहा ॥
तापुर सूर्य चंद्रकी धारा । सुखम चंद्र ओ सूर्य विचारा ॥
तिनकर भेद जो न्यारे करऊ । सूर्य चंद्र भेद दोई धरऊ ॥
दिन तिथिपक्ष संक्रांति विचारा । तापर पाँचतत्त्व विस्तारा ॥
सूर्य उदय संपूरण कहेऊ । भेद अभेद मर्म सब लयेऊ ॥
मंत्र उदो छै हि मासको भाजै । सूर्य सनेह सो तहां विराजै ॥
पृथिवी तत्त्वपर सूर्य जो आवे । छै मासको शुभ दिखलावे ॥
घरको छाँडि तत्त्व जो बोलै । प्रलय कालके छत्र जो डोलै ॥
जलहि तत्त्वपर अस्थिर होई । ताको कष्ट होय नहिं कोई ॥
वायु तत्त्व कीयो विस्तारा । किंचित कारज होय संसारा ॥

तेज तत्त्वपर सूर्य सवारा। भीतर बाहर सोग अपारा॥
जब आकाशतत्त्व जो आवै। होइ भंग सब काज नशावै॥
शुभहिं अशुभ दोही निरतावै। मकर भेद छह मास बतावै॥
पक्ष भेद कहऊँ अब सोई। अँधियारा पक्ष सूर्यको होई॥

मकर संक्रांतिः।

तेहि में सूर्य चन्द्रकी धारा। तीन तीन तिथि कीन्ह विचारा॥
कहिं अँधियाराकहिं उजियारा। रवि शशि मंगल सूर्य सम्हारा॥
चारि अंक गहि भेद विचारो। घरिके कृष्णपक्ष निर्धारो॥
फिर कायामें बैठो जाई। काया सूर्य लहो निरताई॥

साखी-काया सूरज जब उगै, होय पृथ्वितत्त्व असवार।
तवहिं शुक्र शुभ जानिये, कारज शुभ सौंवार॥

अब मैं कहौं चन्द्रकी धारा। कर्क संक्रांति छै मास विचारा॥
तहां जब उदय चन्द्रको होई। अथवत सूर्य उगै पुनि सोई॥
जलहि तत्त्वपै सूर्य सवारा। छेह मास आनन्द विचारा॥
घरहि छांडि जो बोलै आई। तो कारज सिद्ध होय नहिं भाई॥
घरमें रहै तत्त्व नहिं होई। देश उपद्रव देखो सोई॥
पृथ्वी तत्त्वपर चन्द्र सवारा। प्रमानंद और ज्ञान विचारा॥
वायुतत्त्वपर चन्द्रकी धारा। किंचित कारज होय संचारा॥
तेज तत्त्वपर चन्द जो आवै। पश्चिम दिशा कलह उपजावै॥
अकाशतत्त्वपर चन्द सवारा। भीतर बाहर कष्ट अपारा॥
पृथ्वीमें उदयचंद्रको कहेऊ। शुक्लहि पक्ष भेद अब रहेऊ॥
दोई तिथी पक्ष उजियारा। तहाँते केवल चंद्रकि धारा॥
तामें भेदाभेद विचारा। तीन तिथी चन्द्र सूर्यनिर्धारा॥
सोम शुक्र गुरु बुध जो होई। चन्द्र सनेह चारि दिन सोई॥
रवि शनि मंगलवार विचारा। तीनिहि दिनको सूर्य सिरदारा॥

साखी--दिन तिथी पक्ष संक्रांति है, बाहेर चार विचार।
सबको मूल है याहिमें, सो पूर्ण चन्द्र उजियार॥

परच चन्द्र कायामें सोई। जो उगे तो सब सुख होई॥
जलके तत्त्व चन्द्र असवारा। भीतर बाहर अनंद बिचारा॥
पांचतत्त्व अब भिन्न जो कहेऊ। तत्त्व भेद सब न्यारे रहेऊ॥
जलके तत्त्व सुफल घर चन्दा। प्रेम विलास अती आनंदा॥
पृथ्वीतत्त्व चन्द्र जब आवे। सूरज मिले आन उपजावे॥
वायु तत्त्वपर चन्द्र समाई। चित्त उदास लै गवन कराई॥
तेज तत्त्वपर चन्द्र जो होई। उत्तम मध्यम कारज होई॥
अकास तत्त्वपर चन्द सर्वगा। शुक्लकारज जो होय अभंगा॥
अकास तेज जल तत्त्व न आवे। करि अकाज तहां कलह समावे॥

साखी--एते भेद सर्व हैं, चन्द सनेह विचार।
काया चंद सुभ देखि हो, सो शुभ शुक्ल विचार॥

बानी भेद।

अब मैं कहों बानीका लेखा। ज्ञानी होय सो करे विवेका॥
प्रथम बानिकी गिनी जो होई। अंडज बानि समानी सोई॥
दुसरी बानी विंगन कही। पिंडज बानि मैं बोलै सही॥
तिसरी बानी इंगन जानी। सो उष्मजमें जाय समानी॥
चौथी बानी रिंगन आवे। अचल खानिमें जाय समावे॥
पांचई बानी सिंगन होई। नरदेही में [illegible] सोई॥
बानी पांच भेद औ माहा। बिन सतगुरु नाहिं पावे थाहा॥
परचे बानी तत्त्वहिं होई। पांचों ध्यान आवे जब सोई॥

ध्यानभेद।

प्रथम प्रानध्यान है भाई। सो कीगनमें लै निरताई॥
दूसर अपनो ध्यानको लेखा। विंगन बानी करे विवेखा॥

तिसरे समान ध्यान व्यवहारा। रिंगन बानीको करो विचारा॥
चौथे उद्याना ध्यानको लेखा। रिंगन बानिको करै विवेखा॥
पाँचई बानी सिंगन लेखा। विवान ध्यानसो कीन्ह विशेखा॥

साखी-पाँच ध्यान पाँच बानी, पाँचे तत्त्व विचार।
पाँच मुद्रा पाँच तत्त्व, पाँच लग्न परसार॥

लग्नभेद।

अब मैं कहों लग्न व्यवहारा। बार लगन कीन्हे निरधारा॥
तनके लक्षण नाम सुनाऊं। चन्द्र सूर्यको प्रेम बताऊं॥
कर्म करोर सूर्यके सोई। शुभके कर्म चन्द्रते होई॥
पाँचो उदय सूर्य जब आवै। पृथ्वी तत्त्वपर जो घर पावै॥
क्रूरकर्म सब सिद्ध निवासा। तहाँ चली चौका भेद्प्रकाशा॥
मकहि उदय पक्ष अँधियारा। तिथि सनेह बीती नहिं बारा॥
काया उदय सूर्य है सारा। पृथ्वीतत्त्व होय असवारा॥
सोई लग्न जमुनी है नामा। बिगडे हंस पहुँचे निज धामा॥
चन्द्रको वार सूर्य तिथि होई। तासों जग पति कहिये सोई॥
तन छूटे तहाँ जन्मुनि चहिये। और स्नेह जगपतिके कहिये॥
ऐसे कर्म क्रूरके कहिये। जोतिक हंसके कारज कहिये॥
बावडी विहार कूप तलाई। भोजन मिथुनहि दूध कराई॥
इतने कर्म मैं तुम्हें सुनाई। और कर्म बहुतेरे भाई॥
संत साधुकों एते चहिये। और कर्म अकर्म सब लहिये॥
क्रूर कर्म हैं चौका सारा। मृतक कर्मको कीन्ह विचारा॥
चारहु बेद भेद हम कहेउ। सूर्य सनेह भेद निर्बहेउ॥
जो कोई पिंड मायामें करहीं। सूर्य सनेह जीउ उर धरहीं॥
छूटे कर्म जन्म तहाँ धरहीं। दीन मान भोग तहाँ करहीं॥
चन्द्रसनेह पिंड नहिं पावै। अमत फिरे अरु काल सतावे॥

कहीं गया कहीं नहिं गंगा। बिना सूर्य सब कारज भंगा॥
जो कोइ होय बहुत कडियारा। तुम सुनियो यह भेद विचारा॥
इतने सूर्य लग्नके लच्छन। तत्त्वविचार सूर्य यह दीच्छन॥

साखी—तत्त्वभेद सब सूर्यको, सो मैं कह्यो बखान।
कहै कबीर धर्मदास सुन, यह टकसार अमान।

चन्द्रलग्नभेद।

सूर्यभेद हम कह्यो बिधाना। चन्द्रभेद अब कहों प्रमाना॥
चन्द्रसनेह शुभकर्म बिचारा। कर्कसंक्रांति ते चन्द्र निधारा॥
योगसिद्धि में भेद विचारा। उदयतत्त्व जल चलै मँझारा॥
छहे मासको शुभ है सोई। इतनो भेद कर्कते होई॥
पक्ष चंद्रको है उजियारा। तापर केवल चंद्रकी धारा॥
दोई तिथि चंद्र सूर्य समाई। तीनचंद्र तिथि सूर्य बताई॥
चन्द्र सनेह जो वार है चारी। सोम शुक्र गुरु बुद्धि विचारी॥
कायाचंद जब उगै आई। तब सब उदयचंद घर पाई॥
नाघट उदौ तो सर्व अभंगा। करत कार्य सब होइ है भंगा॥
जल तत्त्वपर चन्द्र असवारा। कार्य सिद्धि होई इसवारा॥
कर्क उदोपच्छतिथि जो वारा। घटमें चन्द्रतत्त्व जलधारा॥
पाँचो स्नेह चंद्र घर आवे। तब पूनो संपूरण पावे॥
ताहि लग्नको प्रतिमा नाऊ। असंडित चन्द्र बरते सब ठाऊ॥
ताहि लग्न सिख बाँधो बानी। चौकाविधि कीजै बिलखानी॥
सोई अंकुरि जो हंस हमारा। जिन यह स्नेह चौका विस्तारा॥
सोई लग्न गहि नरियर मोरौ। जिमि काळसो तिनका तोरौ॥
शुभकर्मके कहेउ परमाना। और कर्मके कहौं विधाना॥
प्रथमें चौका जग विस्तारा। दान पुण्य होम जग सारा॥
बाग वृक्ष फूलहि फुलवारी। यहि मठ जात्रा सैन्य अचारी॥
राजदर्शन बनिज व्यवहारा। स्नान ध्यान गुरुनेम अचारा॥

औषध मूरी विवाह सगाई। सर्व पहेर अरु छत्र बैठाई ॥
शुभही कर्म चन्द्रके ऐसे। लक्षण देखिचलौ तुम तैसे ॥
साखी-चन्द्रकर्म शुभ सब कहे, गुण निर्गुण निर्धार।
और भाव तो बहुत है, कहें कबीर विचार ॥

चौपाई।

अब सुनियो कछु आदि निशानी। चारौं लग्न कहौं दिलठानी ॥
प्रतिमा चंद्र लग्न है सोई। जिमुनिउदय सूर्य निज होई ॥
जो तिथि चंद्र सूर्य दिन आवे। निश्चयलग्न जे पति तहँ पावे ॥
जो तिथि चंद्र सूर्य है वारा। जगपतिलग्न सूर्य संचारा ॥
वार लग्नमें कालको फंदा। धरे नाम जिव करे निकन्दा ॥
सोरहै पारस लग्न बिचारा। चौदहकी गति लखि बटपारा ॥
जगपति भेद लग्नमों नेहा। लग्न सूर्यके ग्रहन सनेहा ॥
जगपति लग्न सूर्यके होई। नेहर चंद्रको ग्रासै सोई ॥
दोई लग्नको भेद न पावै। जमुनी प्रतिमा हंस मुक्तावै ॥

चारि चौकाको प्रमान।

चौका चारको सुनहु बिचारा। भिन्न भिन्नके कहौं निरधारा ॥
प्रथम चौका जन्मको कीन्हा। अंस सोरह नारियर लीन्हा ॥
सोरह धोती और असी सोपारी। लौंग इलाची ले सनधारी ॥
दो हजार पान बीस सेर मिष्टाना। सोरह हाथ चंद्वा ताना ॥
दसे रती सोन्नके खरीना। सोरह मासा धरे जो रूपा ॥
दल्लकी अध्राति टका सोर भारसेही। भरि भांडे एक थारी लेही ॥
इक लोटा इक बेला लेई। इकझारी आब राखि देई ॥
बच्छा सहितहि गाय सुपेता। इहविधि चौका कर बहुहेता ॥
पहिले कर्म सब जाई जराई। इहविधि चौका करे बनाई ॥
तन मन धनसों पीत लगावे। सोता सत्यलोकमें जावे ॥

प्रथम चौकाण विधि।

अबमें कहों एकोतरी बिधाना। एकोतिर नारियल चौका प्रमाना॥
लौंग इलायचि धोति सुपारी। इकोतर सन वस्तु बिस्तारी॥
पान मिठाई अवर पकवाना। इकोतर सह सबको बंधाना॥
दस अरु कमल आरती साजा। सुखसों जैं इकोत्र समाजा॥
इकोतर जन्मके पाप नसाई। कर्म अकर्म सबै मिटिजाई॥
निर्मल हंस हिरम्मर देही। पहुँचै जहँही पुरुष विदेही॥

द्वितीय चौका विधि।

अब सहेज चौका कहों प्रमाना। जीव संग एक नारियल बंधाना॥
अंस और नारियल सम परही। बिना मंत्र नहिं चौका करही॥
छठे मास चौकाकी पूजा। छाँडि चौका पूजे नहिं दूजा॥
छठे मास नहिं पहुँचे भाई। बरस दिनमें बिसरिन जाई॥
जो जीव शिष्य हमारा होई। हमहीं पूजी पूजे नहिं दोई॥
दोई पूजी बहुत दुख पावै। तन छूटे जमकाल सतावै॥
ममता फिरै कहूँ ठैरे ना पावै। फिरि फिर जक्तहिं देह धरावै॥
दुख अरु सुख दोनु भुगतावै। एकहि नाम पुरुषको गावै॥
लोकमात बार नहीं लावै। चौका सहजहि भाँति करावै॥

चालवा चौका विधि।

चाल्वा चौका कहौं विचारा। बाहर नारियर लै बिस्तारा॥
आठ सुपारी पन्द्रहसो पाना। लौंग इलायची ले बंधाना॥
पन्द्रह सेर मिठाई ले आवै। बाहर धोती आनि चढावै॥
पाँच भाँडे धातुके होई। सोरह हाथ चंदोवा सोई॥
पाँच खंभको मण्डप मढावै। नये पुराने वस्त्र मँगवावै॥
सो परदा गहिरेके देई। शीत मंगल कारि माटी लेई॥
तिहि माटीकी वेदि बनावै। बाँध्य सहित जुगाय नढावै॥

साधु संतको भोजन करावे। पंद्रह सेर पकवान चढावै ॥
चार पहर सब साज जो करही। सोरह सुतकी पोती धरही ॥
चारपहर निस बैठक करही। सूर्यस्नेह चौका विसतरही ॥
सुरती सुरत सूर्यपर जोरै। पृथ्वीतत्त्वमें नारियर मोरै ॥
औरहु भाव बहुत है भाई। जो समुझे सो बिचलिन जाई ॥
अमी अंकको बीरा पावे। बिगडे हंस लोकको आवै ॥
पान प्रसाद वंश हेतु लेई। पयेपर नाम हमारा लेई ॥
छूटैं हंस कर्मके पारा। चोर उदय घट सूर्य विचारा ॥
चंद्र हेत तिन चौका करहीं। चन्द्रलग्नको कालजि सुडरहीं ॥
चौथा चौका चलवेका एहे। सूर्य लग्न निजही मनमें है ॥
देह धरे नहिं कर्म सतावे। सहजे जाय परम पद पावै ॥
चारों चौका एहि विधि करै। सो हंसा तरहै औ तारै ॥
सहजको चौका श्वासमे निरतावे। इतने भेद टकसार लखावे ॥
भेद चुरामणिखंड अपारा। चुरामनिवंस एहि भेद विचारा ॥
उन्हको नाम प्रताप है सोई। इहतो भेद कडिहारको होई ॥
जोन अँकुरी बोहित कडिहारा। सो यह पावे वंस टकसारा ॥
जैंस बंसकी परख न पावे। पढि टकसार काल घर जावै ॥
बिनि गुरु भेद गहै टकसारा। बिना पुरुपकी नारि विचारा ॥
बिन दुलहकी कौन बराता। बिन गुरु झूठ ज्ञान जिहिं राता ॥
बिना छत्र ज्यों लश्कर फिरहीं। बिन गुरु ज्ञान धीरको धरहीं ॥
हमरे पँथके गुरु धर्मदासा। तिनके बंसगुरु जक्त प्रकासा ॥
हमरा ज्ञान वंस अस करई। खोवे आपु नरकमें परई ॥
तजे मने क्रोधे अहँकारा। सो ये गहैं वंश टकसारा ॥
इतने भेद इहै टकसारा। औरे ज्ञान बहुत असरारा ॥
वंशटकसार कडिहार जो पावे। सो सो भवै सागर जीव मुक्तावै ॥

वंश अंस टकसार न होई । सीससहित गुरु जाय विगोई ॥
इतनो भेद है अगम अपारा । नीर पवन चन्द्र सूर्यकी धारा ॥
कर्यासिद्धनीर मुक्ति प्रवाना । सद्गुरु वचन शीसपर माना ॥
उत्तर पूरब चन्द्र सनेहा । दक्षिण पश्चिम सूर्यहि देहा ॥

साखी–इतना भेद चन्द्र सूर्यका, पाँच तत्त्व निजसार ।
दिन तिथि पच्छ उदयलों, सो साँचो कडिहार ॥
कहै कबीर सांई लखे, ए सब मिले टकसार ।
चँद्र सूर्यको भेद न जाने, सो झूठो कडिहार ॥

इति ग्रन्थ चौकास्वरोदय संपूर्ण सत्य सही ।

अथ अलिफनामा।

अलिफ अव्वल एक नाम सही है, आप अकेला सॉई ॥ आदि अनादि अनाहद आदहद नहीं वा साँई॥१॥ (बे) बंदेको पैदा किया दमका दिया दूदा ॥ अव्वल कल्मा पाक सही है हुकम रब्बमह बूना ॥ २ ॥ (ते) तनमें दीदार मिलैगा पाक होय वजूदा ॥ नूर झल्के सत्य साहबका, सब घट है मौजूदा ॥ ३ ॥ (से) साबित सत्यनाम गोसाई, सदा जो कायम वाजिद ॥ पूरा होय सत्त नाम कहावै, मिले जो पूरा मुर्शिद ॥ ४ ॥ (जीम्) जाहिल वु गुजार जहाँ सग यह तो नेक नजर है॥ फेकुन सैयन मुहीतन जलील अल्ला हक ॥ खबर है ॥ ५ ॥ (हे) हकका हुकम हाकिमका सदा जो कहिए बर- अजकुन फैकुन पेदा गहती सोई ओई मुनहक ॥ ६ ॥ (खे) खालि- कको सुमिरत रहिये, खिलकत खूब यही है ॥ खुदाबन्दीसी छोड सबी शद साधु खैर तभी है ॥७॥ (दाल) दया दुवेश दोस्तकर दूर करे सब दर्दा ॥ जिसके दिलमें दर्द नहीं है सो मुर्दा नामर्दा ॥ ८ ॥ (जाल) जेहनको पाक साफकर, जिकर कि लज्जत पावो । जोक शोकते जिकर लगावो दूर बड़ावो ॥ ९ ॥ (रे) रहीम रहमत कर तुझपर रहम करै करै जो कोई॥ राम रहीम से एककर जाने तब जहमत नहिं होई॥१०॥ (जे) जोरावर कोई ना बाँचे, रावण था दशकंधा ॥ जोर जुलम है जहरका प्याला मत कोई पीवै बन्दा ॥ ११ ॥ (सीन) सरासरा सिर साईंका सब सीनोंके अंदर ॥ साँचा वचन सुनो साधो जन, स्वाती बरस समुन्दर ॥ १२ ॥ (शीन) शहरमें शोर बड़ा है शुक्र खुदाका कहिये। सत्य सुकृत ये कर बासन बिसरे हरदम सुमिरत रहिये॥१३॥ (स्वाद) सदा सिफत साहबकी कहिये, सदा समीपै भाखो ॥ दिल दरदिल सीना दरसीना देखो दिलकी आँखो ॥ १४ ॥ (ज्वाद)

जमीर मुनीर मुवाजे व्यापक सबघट साँई ॥ है हजूर हाजिर रहिमाना जिद् नाकीजे भाई ॥ १५ ॥ (तोय) तालिब मतलूबको पहुँचे तोफ करे दिल अंदर ॥ बहुते तोफ जाय तब वायफ ना देव जाय पहाड समुन्दर ॥ १६ ॥ (जोय) जालिम मिलै इजरयाल कबज करै जो जाना ॥ गये जुलमात कोई ना बांचे सिकंदर सुल्ताना ॥ १७ ॥ (ऐन) इल्म चौदाको पडते अमल नहीं जो लावै ॥ अमल नहीं वो इल्म ऐब है दानीश मन्द कहावै ॥ १८ ॥ (गैन) गलत ते वहि नहीं कहिए गुस्से गजबको त्यागे ॥ नाहक सुनके न्यारा रहिये कहु सुनके मत भागे ॥ १९ ॥ (फे) फरमान आखिर है फानी फाजिल फहेम कहाया ॥ मिन कुल अलेहाफाना कुरानों में खरब कहाया ॥ २० ॥ (काफ) कल बहे अरस जमीका मुनकर और नकीरा ॥ नेकी करो बदी बिसरावो कुलसे कहत कबीरा ॥ २१ ॥ (लाम) लाहोल उसीपर जो न सुने जुग ज्ञाना ॥ साहेबसे जो कोल किया था सो काहे बिसराना ॥२२॥ (मीम) मुसल्लम मर्द मुसल्मान कहत, मुरीद् ना करना ॥ रहिये सदाई मनसलामत जोहि विधिसे निस्तरना ॥ २३ ॥ (नून) नोज बिलाह अलेकुम नेक सखुनका करना ॥ नैनों अकरब हवलूल बरिद् हैं हकका फरमाना ॥ २४ ॥ (वाव) वजूवजेमे गोयमनेकी खरत सुनुफ ॥ ख्याल वदी नुस्वास दिल अंदर सो है मर्दमुखौवफ ॥ २५ ॥ (हे) है दोनो यक सूरत दोनी ये साँई ॥ एक म्यानमें हो दो यमघर कबहु नहीं समाई ॥ २६ ॥ (ये) येक साहब है सांचा सुनों तुम मन चित देको ॥ कापाबीर कबीर कहतहै अव्वल आखिर येको ॥ ॥ २७ ॥

इति अलिफनामा । सप्तदशस्तरंगः ।

सत्य।

कबीरबानी।

भारतपथिक कबीरपंथी–

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित।

जिसको
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने
अपने " लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापेखानेमें
छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण–मुंबई.

सब हक्क यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

सत्य नाम।

श्री कबीर साहिब।

सत्यसुकृत, आहिअदला, अजर, अचिन्त पुरुष मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शननाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर केवल नाम अमोल नाम सुरतिसनेही नाम हक्क नाम पाक नाम, प्रगट नाम, धीरज नाम उग्रनाम, दया नामकी, वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे।

अष्टादशस्तरंगः।

कबीरबानी।

प्रथम बानि सुनियो चितलाई। आदि अंतकी सुधि देहुँ बताई ॥
प्रथम आदि समरथ हते सोई। दुसरा अंस हता नहिं कोई ॥
आदि अंकुर सुरती जब कीन्हा। सात करीको गर्भ तेहि दीन्हा ॥
इच्छा सूर्ति दुसरे उपजाई। सातो करीमें चित्त बनियाई ॥
छीप रूपहि करी परकासा। स्वाति रूप इच्छा नीवासा ॥
सात इच्छा तेहिने उपजाई। भिन्न भिन्न पर करी बनाई ॥

विमल शब्द विहसित तब दयेऊ । तब हुलास बंद पाँच करिमेदयेऊ ॥
तब पांच इंड भरो उतपानी । तत एक भिन्नपर इयानी ॥
नहिं तब धरनी नहिं आकासा । नहिं तब दुसरो हतो अवासा ॥
घ्यावै इंड करै चौचन्दा । आपु देखि ओर सहज अनन्दा ॥
तबकी बात नहिं कोई जानै । कहौं समुझाय तो झगरा ठानै ॥
धर्मदास सुनियो चितलाई । फूटो इंड सुर्तिसे भाई ॥
सहज अंकुर बीज सब भाई । तिहिकी इच्छा इंड उपजाई ॥
तब सरबनसों साजी बानी । तेहिते मूल सुरति उतपानी ॥
अबोल्बुंद तेहि सुरतिको दीन्हा । पाँच अंस तब उतपन कीन्हा ॥
पांचों अंस तब कह्या बुझाई । पाँचों अंडमें तुम जाओ समाई ॥
एकहि एक इंड तब गयेऊ । आपहु आप कलामें ठयेऊ ॥
तब अवगति एक खेल बनावा । पांच स्वरूप पांचों इंडहि आवा ॥
फूटो इण्ड तेज भई धारा । सबमें देखे पांच ततसारा ॥
पांच इण्ड भिन्न भिन्न विस्तारा । सात अधर दीप तेहिमाहिं संचारा ॥
देखि सरूप अंडनकर भाई । सोहंग सुरति तबहिं उपजाई ॥
पुरुष शक्ति भई दोय प्रकारा । तिन्हको सौंप्यो उत्पन सारा ॥
तासों अंकुर भेद बतावा । बचन सुरत एक संग समावा ॥
जाते ओहं पुरुषको अंगा । ओहं सोहं भए वंस दो संगा ॥
तिन्हें उत्पनकी आज्ञा कीन्ही । शब्द सनद उनहूको दीन्ही ॥
मूलसुरति औ पुरुष पुराना । रचना बाहेर कीन्ह अस्थाना ॥
सोहं सोहं इण्डनमें रहेऊ । सकल सृष्टिके कर्ता कहेऊ ॥
प्रथम अंकुर दूसरइच्छाउतपानी । तिसरे मूल चौथे सोहं ठानी ॥
सोहं सोहं की बंधानी । आठ अंस तिनते उतपानी ॥
आठ अंस भए एकही धामा । करता शिष्ट धरे येहि नामा ॥
करता सरूपी आठ भरा अंसा । तिन्हके भए सृष्टि सब बंसा ॥

तेज अंड अंचितकूं दीन्हा। प्रथम सुरति जब उतपन कीन्हा ॥
सोहं अंस दुसरे भए भाई। धीरज अंड तिन्हें बैठक पाई ॥
तिसरे अंस अण्ड निमाई। क्षमा अंड तिन्हे बैठकपाई ॥
चौथे अंत है सुकृत सारा। सत्य अंड है ताहि पसारा ॥
पाँचों अंस हिरम्मर भाई। सुमत अंड तिन्हें बैठकपाई ॥
दोइ अंस दोइ करी समाने। तिनका भेद गुरु गमजाने ॥
एक अंस निर्गुण अवतारा। ते तब सृष्टिके भए कडिहारा ॥

साखी–एती उत्पन चार सुरत की, भिन्न भिन्न परकार।
कहें कबीर धर्मदाससों, आगे वंश पसार ॥

धर्मदास वचन।

साँचे सद्गुरु की बलिहारी। धर्मदास विनती अनुसारी ॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसाई। अपनोके मोहि लीन्ह मुक्ताई ॥
चारि वेद और शास्त्र पुराना। सबहीके मैं सुनो प्रमाना ॥
अविगति गती काहु नहिं जानी। जो तुम कही आदिकी बानी ॥
सुरत सोहंगके आठ भए अंशा। तिनके सृष्टि सबही भए वंशा ॥
अपरंपार है तिनका सेवा। अचिन्त्य सृष्टि को कहो विवेका ॥

साखी–तुम निज सतगुरु सत्य हो, हम निज चीन्हा सोय।
अचिंत सृष्टिको भेद कहो, अविगति पूछों तोय ॥

धर्मदास तुम बडे विवेकी। तुम्हरे घटमें बुधि बड देखी ॥
अचिंत्य सृष्टिको कहों पसारा। तेज अंड तिन्ह पायो सारा ॥
बारहि पालंग अंड विस्तारा। तिहिमें पाँचतत्त्व हैं सारा ॥
तिनको बैठक आसन दीन्हा। अंड साँसपर लोक तिन्हे कीन्हा ॥
प्रेमसुरति तिन कीन उपचारा। तिन्हते भयो अक्षर विस्तारा ॥
अक्षर सुरत तब मोहमें आई। ताते अंश चार निरमाई ॥

चारि अंशभये चारि प्रकारा। चौविध दीप चौविधहिं पसारा॥
प्रथम अंश पर माया भयऊ। सो पृथ्वि तत्वको बीज निर्मयऊ॥
दुसरे कर्म भये अवतारा। पालङ्क अठानवे कीन्ह बिस्तारा॥
तिसरे अदली अंश निरमावा। शेषनाग सो नाम धरावा॥
चौथे अंश भए धर्म राई। जिन्ह पाप पुण्यको लेखापाई॥
चारि अंश अक्षरते भयऊ। चार अंशचार मत ठयऊ॥
तब समर्थ अविगति एक कीन्हा। पूरी नींद अक्षरकुं दीन्हा॥
चौसठ युगलों सोए सिराई। तोलों कैल सुरति ठहराई॥
समर्थ सुरति जलतत्त्व समानी। कैल अंड की कीन्ह उतपानी॥
तेहि पीछे अक्षर पुनि जागा। मोह तत्व भये अनुरागा॥
चकित होय अक्षर बिलखाना। सोइ मोह सब सृष्टि समाना॥
अंड दृष्टिमें देखो भाई। व्याकुल भए यहाकिन निरमाई॥
समर्थ छाप अंडासिर दीन्हा। अक्षर छाप देखि सो लीन्हा॥
सोइ अंड जलमें बिराना। जिनको बेद नारायण माना॥
तहवां ज्योति निरंजन भएऊ। तिनको सब जग कर्ता कहेऊ॥
अक्षर सुरति समर्थकी बानी। तेहि गुण कैल भए उतपानी॥
निरंजन नाम अक्षर ठहराई। आचिंत भेद नहिं पावै भाई॥
कैलहिं देखा सकल पसारा। तब अक्षर सो बचन उचारा॥
देउ पिता मोहि आज्ञा सोई। जो कछु इच्छा उपज्यो मोई॥
सेवा करत सत्तर जुग बीता। तब मुख बोले पुरुष अतीता॥
जीव पुत्र जहां पृथ्वीको मूला। तहां कर्म बैठे अस्थूला॥
सृष्टि भंडार कूर्मको भाई। सोलह माथ हाथ चौसठ पाई॥
चले निरंजन कूर्मलगि आये। पुरुष ध्यानते कर्म जगाये॥
उत्पति हमकूं मांगे देहू। ना देहो तौ मारिकै लेहूँ॥
तबहि कूर्म अपने मन जानी। एतो कैल भए अभिमानी॥

हम माँगे कछु देव न भाई। जाउ पुरुष लगि वेगि सिधाई ॥
केल कूर्मते युद्ध निर्मयऊ। छीन माथा तीन पुनि लयऊ ॥
लेकर माथे सुन्यमें आवा। केल सुरतिं घट मोह समावा ॥
तीनों माथे भक्ति तब लीन्हा। तबते अक्षरपुरुष डर कीन्हा ॥
मनमें तब अभिमान समाई। तब कर जोरिके सेवा लाई ॥
सोला चौकडा तब चलि आई। तब लगि निरंजन सेवा लाई ॥
अक्षरपुरुष जो कीन्ह विचारा। तिन्हको समरथ वचन उचारा ॥
बिदेह बानि तब अक्षर पाई। सो बानीते कन्या भई भाई ॥
ताको बहुत सिखावन दीन्हा। अष्टांगी तिन कन्या कीन्हा ॥
पुनि निरंजन लागि सिधाई। तुमको समरथ सदा सहाई ॥
तब कन्या निरंजनलगि आई। एक पाँव पर सेश लाई ॥

साखी—कहै कबीर।

देखे पलक उघारिके, कन्या आगे ठाढि।
उपज्यो मोहउर प्रेम तब, विप्रीत मनमें बाढि ॥

चौपाई।

पलक उघारि केल तब देखा। अपने मनमें कीन्ह विवेका ॥
कहै केल सुनो तुम बानी। मोहिकारन पुरुष तोहि उतपानी ॥
हम तुम कजि सृष्टि पसारा। तिनहि लोक सकल महिभारा ॥
तब अष्टांगी केलसों कहाई। मोहि तोहि नाहीं होय सगाई ॥
मैं तोरी बहिनी तू मोरा भाई। सो अनरीती सब दीन चलाई ॥
कहै केल सुनो आदि भवानी। हमरे बचन तुम काहे न मानी ॥
जो तुम कहा हमारा मानो। तो तुम उत्पति निर्णय ठानो ॥
तब अष्टांगी कहै बुझाई। बिन आज्ञा तोहि पुरुष रिसाई ॥
बिन आज्ञा कूरम सिर छीना। ताते पुरुष अंत करि दीन्हा ॥

साखी-कहै कबीर।

देखि स्वरूप कन्यहि को, मनमें रोष समाय।
मनमें रोष भयो अति, कन्या लीन्हीं खाय॥

छलित कन्या कीन्ह पुकारा। पुरुषबचन ले हृदय सम्हारा॥
तब सुरति बानते कैलहि मारा। कन्या तब उगलै वहि पारा॥
एहि प्रपंच अक्षर तब कीन्हा। ताते कैल मती हरि लीन्हा॥
कन्या सुरति तब गई भुलाई। जबते पेट कैलके आई॥
पिता पिता कैल सो कहेऊ। मदन प्रचंड कैल छन भयेऊ॥
अष्टांगी कैल एकमत कीन्हा। ताते सृष्टि रचवे मन दीन्हा॥
कियो संयोग भयो त्रीवारा। जेठो ब्रह्मा लघु विष्णुकुमारा॥
तीजे शम्भु विष्णुते छोटा। येकही निरञ्जनहि के ठोटा॥

साखी-कहै कबीर।

जैसे रूप निरञ्जनहिं, तैसे तीनो भाय।
जे उत्पत्ति कैलकी, आगे सृष्टि उपाय॥

चौपाई।

करि प्रपंच शून्य इंडमें गयेऊ। मनमें बहुत आनंदित भयेऊ॥
एहि आनन्दमें गए भुलाई। ताते श्वासा सुरति उठाई॥
तेहि श्वासाते वेद काढि आई। रूपनिधान चारों बने भाई॥
हाथन पोथी सुसरस बानी। ताते कैल भयो अभिमानी॥
चारि वेद सब मरम बतावा। तब चलि अक्षरशून्यमें आवा॥
कैल प्रचण्ड भयो बरियारा। तब अक्षरते बुद्धि विचारा॥
येतो कैल ओ जीव बिचारा। समरथ छाप लियो टकसारा॥
अक्षर चलै अचिन्त लगि गयऊ। महाशून्य छोडि तब दयऊ॥
तब अचिंत्य अक्षर समुझावा। यह अविगति गति काहु न पावा॥

तुम तो सुरति हमारी हो भाई। केल सुरति समरथ निर्माई॥
लक्ष जीव नित करे अहारा१०००००। सवा लक्ष नितप्रति विस्तारा॥
१२५०००। अंशवंश मिलि एक मत किन्हा। चारो ज्ञान विचारि तब
दीन्हा॥ तुम गतिहंससरूप हो भाई। वहतो कैल जीव दुखदाई॥
तुम समरथको ध्यान लगावो। अंतगति समरथ सुख पावो॥
चारी ज्ञानमें निर्णय कीन्हा। सो निरणय चारि अंशको दीन्हा॥

साखी–कहे कबीर।

कहे कबीर धर्मदाससों, एता सकल पसार।
तीनशक्तिको खेल भयो, चौथे हंस उवार॥

चौपाई–धर्मदास उवाच।

धर्मदास बहुते सुख पावा। उठे सतगुरुसो विन्ती लावा॥
साँचे वचन तुम्हारी बानी। आदि अंतकी निरणय ठानी॥
कौन है अंड कौन है अंशा। काहे अंश कौन है वंशा॥
कौन केल कौन गुण धारी। कौन सृष्टि कौन संसारी॥
एती बात मोहि सों भाखो। ओर गुप्त गोये जिनि राखो॥

साखी–कहे धर्मदास।

विन देखी सबही कहे, सुनि पाइहे काम।
सोइ अदेख तुम दिखावहु, आदि अंत परमान॥

चौपाई सतगुरु कबीर उवाच।

तब सतगुरु मनमें बिहसाने। तुमसों धर्मनि निर्णय ठाने॥
तेज अंड अक्षर है वंशा। अचिंत्य अंड सोई यहै हंसा॥
निरंजन केलचारि गुणधारी। तीन सृष्टि अनिगति संचारी॥
तेज अंड अचिंत है अंशा। ज्वनंश अक्षर है वंशा॥
सत्य अंड जोहं गहे अंशा। सोरहे तिनके उपज्यो वंशा॥
पालंग पचीस तासु विस्तारा। पातालपाँजि ते तिनको बैठारा॥

तिसरों अंडहि क्षमा बखानी। अकह अंश तिन्हकी रजधानी ॥
अकहनामते सताविस बंशा। तिन्हके सकल औरहै अंशा ॥
चौथा धीरज अंश है भाई। ताते सुकृत अंश निरमाई ॥
बंश बयालिस है कडिहारा। तिनकी सनद चलै संसारा ॥
पाँचों अण्ड सुमत निर्माई। अंश हिरम्मर बैठक पाई ॥
तिन्हके बंश सात परवानी। इह सब भेद लेहो पहिचानी ॥
पाँचहि अंड आठ भए अंशा। सात सुरति इक्कोत्तर बंशा ॥
चारि अंडको एक विचारा। दोए करीको भेद अपारा ॥
एक बंश कोई पार न पावै। सतगुरु निजही भेद बतावै ॥

खुद होय कहे।

सुरति सरूप हमहीं सब कीन्हा। मान बडाइ अंशोंको दीना ॥
जबे अचिंत्य सुरत ठहरानी। सुरति समर्थ घटआनि समानी ॥
शोइ मध्य एक आए समाई। तिन्हको नाम अक्षर ठहराई ॥
अक्षर इच्छा उपजो भाई। दुसरा अंश कैल होय आई ॥
आठो अंस कालकी बानी। अक्षर घटजो आए समानी ॥
सो वासा होय बाहिर कढि आई। तिन्हकी गति कोई बिरलैपाई ॥
पांच प्रगट तीन गुप्त पसारा। इनके अंश अग्यारा सारा ॥
चारि अंशभवभार हम दीन्हा। चारि वेदमें निर्णय कीन्हा ॥
तीन देव सृष्टि अधिकारी। उपजनिविनसुन दुखसुख भारी ॥
तिन्हें चौरासी लक्ष बनावा। जीव अनेक बहुत उपजावा ॥
यह अविगति काहु नहिं पावा। समरथ ऐसा खेल बनावा ॥

साखी–वेद कितेब जाने नहीं, नहिं पावे ग्यानी थाह।
तीन अंशलौं सबही खेले, आगे अगम अथाह ॥

धर्मदास उवाच।

धर्मदास विनती चितलाई। तुम्हरे शरण मुक्ति गति पाई ॥
उतपति कारण हम सब पावा। बंश अंश दूनो निरतावा ॥

लोक दीपको ठौर बतायो। बैठक अस्नेह हंस चिन्हायो ॥

साखी–कैसे सरूप समर्थ है, कैसे है सब हंस।
केहि करनीते पाइये, कैसे कटे कालकी फंस ॥

चौपाई–सतगुरु कबीर उवाच।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा। अल्पबुद्धि घटमाँह निवासा ॥
सत्य लोक है अधर अनूपा। तामें है सत्ताविस दीपा ॥
सत्त शब्दका टेका दीना। अगर पोहुमि रची तिन लीन्हा ॥
सागर सात ताहि विस्तारा। हंस चले तहां करे विस्तारा ॥
अम्रवास वह सुवरन कांती। तहां बैठे हंसनकी पांती ॥
पुहुपद्वीप है मध्य सिंहासन। कल्पदीप हंसनको आसन ॥
अविगत भूषण अविगत सिंगारा। अविगत वस्त्र अविगत अहारा ॥
कमलस्वरूप भौम्य है भाई। कहाकी उपमा देवें बताई ॥
आभा चंद सूर्य नहिं पावहि। भूल चूकके शीस नवावहिं ॥
कला अनेक सुख सदा होई। वह सुख भेद इहाँ लहे न कोई ॥
निरतै हंस पुरुषके संगा। नखशिख रूप बन्यो बहु अंगा ॥
पुरुष रूपको बरनै भाई। कोटिभानु शशि पार न जाई ॥
छत्र सरूप को बरणे भाई। अविगति रूप सदा अधिकाई ॥
सत्ताइस द्वीपमें करे अनन्दा। जो पहुँचे सो काटे फन्दा ॥
हंस हिरम्भर और सोहंगा। श्वेत अरुण रूप दोउ अंगा ॥
निर्मल जोतको है उजियारा। झलके कलापुरुषमें भारा ॥
चारि शब्दका लोक बनावा। पांच सरूप ले हंस समावा ॥
सत्यशब्दकी भूमि बनाई। क्षमाशब्द आसन निरमाई ॥
धीर्ज शब्दसों छत्र उजियारा। सुमत शब्दसों वस्त्र पसारा ॥
प्रेमशब्दसों हंस निरमाई। आप शब्दते लोक समाई ॥
दीपन करे दीप हंस बिहारा। तहां पुरुष निर्मल उजियारा ॥

जब विहँसे मुखमोड सुहाई। निरत झेरि विहँसे चितलाई ॥
चिकुरझलक बरनी नहिं जाई। कोटिनवार शशि वारन जाई ॥
एती विद्ध सतगुरु फरमाई। मानुष रूपन्हि लोके जाई ॥
अविगति रूप है लोक हमारा। करनी भेद कहो निर्धारा ॥

करनी भेद।

काया करनी चार है भाई। मनकरनी दोई लेहो उठाई ॥
प्रथम करनी चोका है सारा। तिनकी सन्ध तिनहुका विचारा ॥
दुसरे पुनिचरणामृत कीन्हा। तिसरे शीत प्रसाद जो लीन्हा ॥
चौथे साधुकी सेवा करहू। यम औ कालसों कबहु न डरहू ॥
काया करनी कही विचारी। मन करनी सो हंस उबारी ॥
पारस परशे कञ्चन होई। लोहा वासों कहै न कोई ॥
स्वाति सनेहकी करनी है भाई। सो करनी काहु बिरले पाई ॥
स्वाति बून्द सीप जो लेही। बून्द स्वरूपहि पलटे देही ॥
इक करनी है हंस अनँदा। पहुँचे लोक कापि यमफंदा ॥
लोक वेद झूठ जगत बिसारे। बोलत वचन जीव निवारे ॥
माया चारि कालकी भाई। इनहि जीव राखे उरझाई ॥
एत छोडे सद्गुरुके ओटा। मेटे कर्म भ्रम सब खोटा ॥
दोइ माया सद्गुरुके ठहराई। दोय करनीसे सत्य मिलाई ॥
हंस करनि तीनलोक सोन्यारी। सद्गुरु मिले तो कहै विचारी ॥
धर्मदास कर चोका प्रमाना। मेटो कुल पाखंड अभिमाना ॥
सोरा असंख्य युगभयो सिराई। काहुन खबरि समरथकी पाई ॥
जीव निकाल यम घरघर खाई। चारि वेद सब जक्त भ्रमाई ॥
धर्मदास तुम अंस हमारा। तुमसों बचन कहौं टकसारा ॥

साखी कहे कबीर।

मैं कबीर निचलो नहीं, नाम मोरो समरत्थ।
ताही लोक पठइहों, जो चढ शब्दके रत्थ ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास तब सौंज मँगाई । सोरह अंश तब दीन्ह चिन्हाई ॥
चौका पुरुस तब युक्ति बनाई । तनुका तोड जल अचवाई ॥
लिख्यो पान समरथ सहिदानी । दीन्हो सन्देश सत्यकी बानी ॥
तीनि अंशकी लगन विचारी । नारीअर अंशसो हंस उबारी ॥
नारी पुरुष होय एकसंगा । सद्गुरु बचन दीन्ह सोहंगा ॥
सोहँग शब्द है अगम अपारा । तुमसा धर्मनि कहौं विचारा ॥
पेड सोहंग और सब डारा । साखा सोहं कीन्ह प्रकारा ॥
प्रथम सहज सोहंग की बानी । दूसरि इच्छा सोइ उतपानी ॥
तिसरे मूल सोहं है भाई । चौथे सोहं सोहं निर्माई ॥
सोहंगते भए सोहं अतीता । जाको नाम जो कह्यो अचिंता ॥
अचिंतहिते अक्षर सोहंगा । अक्षर सोहंगते कैल सोहंगा ॥
कैल सोहंगते त्रिगुण सोहंगा । सोहंते सकल सृष्टिको रंगा ॥
अमृत वस्तुते नौपरकारा । सोहंग शब्दके सुमिरन सारा ॥
सो सोहं अचीन्हि जो पावै । सोहं डोर गहिलोक सिधावै ॥
जाघट होई सोहं मतसारा । सोई आवहु लोक हमारा ॥
सुरति सोहं हृदये महँ राखो । परचे ज्ञान तुम जगमें भाखो ॥
एती सिद्धि सोहंकी भाई । धर्मदास तुम गहो बनाई ॥
चौका करि दीहो परवाना । तब जीवहि छूटे अभिमाना ॥
अजावन बीरा आवै हाथा । तब हंसा चले हमरे साथा ॥
ताकैं पुनि चहि आवै डोरी । टूटे घाट अठासी करोरी ॥
कुल करनी जिन्ह खोऐ निसाई । काटि फंद निज घरकू जाई ॥
तन मन धनको मोह न आवै । सो जिव दर्स हमारा पावै ॥
गुरुसों अंतर कबहु न कीजै । साधु संत सेवा मन दीजै ॥
एती सनद जीव उजियारा । ताको सुकृत आवै सठिहारा ॥
सोहं करनी सोहं विचारा । सोहं शब्द है जिव उजियारा ॥

साखी—कहे कबीर।

धर्मदास उन मन बसो, करो शब्दकी आस।
सोहं सारसुमरन करो, मुनिवर मरे पियास॥

चौपाई—धर्मदास उवाच।

सत्य नाम संतन सुख दाई। कथा अनूप कहो चितलाई॥
बन्दो गुरु दोऊ कर जोरी। जिमि कालहिते तुम बँद छोरी॥
को प्रवीन है लोक तुम्हारा। सो मोसों सब कहौ विचारा॥
बरती सुन्य सिचकी सब भाखो। जो देवी सो गोय जिन राखो॥

धर्मदास वचन।

साखी—जैसे हैं तैसी कहौं, मैं बल्हिारी जाउँ।
अंस बंस निरवारके, जीव सकल मुक्ताउँ॥

चौपाई।

तुमरे कारन भेद हम दावा। सर्वमूल गुरु समरथ आवा॥
लोक परलोक दोउ हम पाए। जब सद्गुरु मोहि दर्श दिखाए॥
पांजी भेद कहौं समुझाई। कौन अस कौन लोक बैठाई॥
केते पवन इहाँते होई। जहां समर्थकी बैठक सोई॥
वेद कितेबकी संज्ञा दीजे। इतनी दया गुरु हमपर कीजे॥

साखी—लोक भेद केते कहै, पांजी भेद कहौं समुझाय।
अस वंस अस्थान बताओ, सब संशय मिटि जाय॥

सद्गुरु पैडी भेद पठचते।

धर्मदास मैं कहों समुझाई। पांजी अंस को भेद बताई॥
तेज अंडवारा पलंग बिस्तारा। मध्यमें शून्य दोय पाठंग अँधियारा॥
मृतुलोकमें सालोक मुक्तिप्रमाना। तहांतो नाम मानसरोवर स्थाना॥

चारिमुक्तिकी कमाई अस्थान।

धीरज अंश तहां बैठारा। चौसठ कामिनी संग बिहारा ॥ मध्यसरोवरपिंड सिला लै धरी। चौसठ कामिनि निरते परिथारी ॥ जो कोई वाम मार्ग को ध्यावै। सो सालोक्य मुक्तिको पावै ॥ पेडी ॥ १ ॥ तहांते वैकुंठ चौबीस कोटी रहाई। तहां सुमेर रह्यो ठहराई ॥ तहाँ धर्मराय अबिनासी रहही। जो पाप पुण्यका लेखा लहही ॥ तहां रंभा सामीप्य मुक्ति है सोई। नवसो सखी ताके संग होई ॥

(पेडी २ वैकुण्ठको विस्तारा)

पांच सीखर सुमेरके रहही। पांचों अंसकळा तहां धरही ॥ ईशानकोन ध्रुवआसन कीन्हा। वायु कोन कुबेरको दीना ॥नैर्ऋत कोन जमको अस्थाना। अग्नि कोन इन्द्रालन ठाना ॥ जिनकूं धर्मराय मैं कही। मध्यसिंघासनविष्णुकोसही ॥ सहस्र साठजोजन वैकुण्ठ प्रमाना ॥ ६०००० ॥ तेहिके आगे सुन्य डोर बन्धाना ॥ निर्बान मारगको जो कोई ध्यावै ॥ सो सामीप्य मुक्ति वैकुण्ठ को पावै। पेडी ॥ २ ॥ वैकुंठते शुन्य अठारह १८ करोरी ॥ तहां लामीसुन्यकी डोरी। सुन्यमध्य है दीप अनूपा। आदि निरंजन तहां जोतिसरूपा ॥ तहां अँधियारी है सुन्य मँझारा। दोय पलंग है सुन्य विस्तारा ॥तहां कोटि चारि है जोति उजियारी ॥ तहां अष्टंगी है शक्ति नारी ॥ सारूप्य मुक्तिसो तब पावै। अघोर मार्गको जो कोइ ध्यावै ॥

चौथी-मुक्ति आगे अस्थान।

ते अक्षर आगे अस्थाना। एक पलंग तहाँते परवाना ॥ तहाँ अक्षर जोग माया विस्तारा। चारि अंश तिनके अधिकारा ॥ तहाँते चारि वेद परवाना। चौथी मुक्तिको येहि ठिकाना ॥ तहाँते आगे कोइ ना गएऊ। एहि मता चारो वेद मिलिठियेऊ ॥ चारों मुक्ति सम्पूरन ॥

(पेडी) तहँते चारिमुक्तिको जाना । तहांते एक इण्ड परवाना ॥ तहांते है इण्डको छोरा ॥

इण्डके आगे अनहद अँजोरा ॥ आगे असंख्य शून्य विस्तारा ॥ तहां अंचितनाम अंस करै व्योहारा ॥ अघर दीप है ताकर नामा । प्रेम ध्यान ताकर विसरामा ॥ प्रेमसुरति नवे बारबारा ताके सँग सखि बारहजारा ॥ १२००० ॥ तहां आगे सोहं अस्थाना । तहां तीन असंख वीच सून्य प्रमाना ॥ तहांते आठ अंस उपजाई । उन्हे बंस अंश्के स्थान बनाई ॥ तहां ओहं सोहं होत उजियारा । तिन संग हंस छतीस हजारा ॥ ३६००० ॥ ११ ॥ पेडी ॥ तेहि आगे मूल गति अस्थाना । तहां बीच सून्यआग असंख्य प्रमाना । हंसा तिन संग बावना हजारा ॥ ५२००० ॥ तिहुते पांच ब्रह्म उपजारा ॥ पेडी ॥ आगे सुरति मूल इच्छाको मूला । स्वाति सनेह जाको है स्थूला ॥ बीस सून्य चार असंख निरधारा । तिनसँग हंस पचीस हजारा ॥ २५००० ॥ पेडी ॥ १३ ॥ तिनके आगे सुरति निशानी । सर्वोत्पतिकी रजधानी ॥ बीच शून्य दो असंख्य प्रमाना । तिनते भये अंकूर ठिकाना ॥ सोरा असंख्य तिन्हते विस्तारा । हंस तिनहि संग पांच हजारा ॥ ५००० ॥ धर्मदास वचन सुत सांचे । ताके संग हंस सब बांचे ॥ पेडी ॥ १४ ॥ तहां आगे अंकूरको प्रमाना । तिल प्रमान द्वार अनुमाना ॥ विहंग शब्दकी लागी डोरी । तेहि संग हंस गए पुरुष लगि सोरी ॥ पेडी ॥ १५ ॥ बीच अँधियारी घोर अपारा । एक असंख्य दस लाख विचारा ॥ १०००००००००१००००० ॥ आगे इमार निजलोक ॥ ठिकाना । ताको मर्म काहु नहिं जाना । पेडी ॥ १६ ॥

साखी—कहैं कबीर ।

इतना पांजी भेद है, धर्मनि सुनि चितलाइ ।

समरथके प्रतापते सब, हंस लोक जाहि ॥

चौपाई।

सोरा असंख्य उत्पति पसारा। चार असंख्य शून्य बिस्तारा॥
सातशून्य दोउ वेशून्य कहावै। एकै शून्य कोई बिरला पावै॥
तहांतें तीन शून्य भए प्रवाना। आदि अंशशून्यसुरत ठिकाना॥
तिहितें तीन भए परकारा। चार सुरतको सकल पसारा॥
प्रथम शून्य लोकते लागी। तीनिसुरत भए शून्य अनुरागी॥
आठ अंस अरु वंश पसारा। तँह लगि देखो शून्य विस्तारा॥
इतना जके होय निन्यारा। ताके आगे लोक हमारा॥
हम चीन्हे और गुरुको सेवै। कर्म तोडिके जुग २ जीवै॥
लोक वेद कुल माया धारी। काल फंद यम फंद बिचारी॥
निसदिन सुरत सतगुरुसो लावै। साध संतके चित्तहि समावै॥
जनपर दाया सतगुरु केरी। तिनकी कटै कर्मकी बेरी॥
करनीकर अभिमान भुलाई। तब छूटे यम घरिलै आई॥
करनो कारिये गुरुके साथा। ताकु काल उठि नावै माथा॥
करनीकरी जो होय अधीना। ताको बासा लोकमें दीन्हा॥
करनी करे निज सुर्त लगावै। ताको सुकृत लोक पहुँचावै॥
करनी करत कसरहोय आई। तवही काल धर बाजु बंधाई॥
सेवाकरि राखे मन आसा। तन छूटे जीव परिहै सासा॥
सद्गुरुसों अभिमान जो करिहै। तन छूटे जीव यम फंदपरिहै॥
बंस टेक ओ नाम हमारा। पंथपूजा सद्गुरु कनहारा॥
चारों अंस चिन्हें जो पावै। तन मन धनसो प्रीति लगावै॥
माता पिता बंधु सब भाई। पुत्री पुत्र हेतु छोलाई॥
घरकी घरनी पुरुष है सोई। इनकी प्रीति न कारज होई॥
तासों काल रहै सुख गोई। नारी पुरुष सुरति कारज होई॥
गुरुसों अंतर कबहु न राखै। प्रेमप्रीतिसों दीनता भाखै॥

गुरुको निंदे अक्षरकूं ध्यावे। विन गुरु अक्षर कैसे पावे॥
गुरुसंगाती शब्द लखावे। जाके बळहंसा घर आवे॥
गुरुस्वाती गुरुरूप स्वरूपा। गुरुपास है आदि अनूपा॥
गुरुभृंगी गुरु सो बहुरंगी। कीटते करही आप हित संगी॥
गुरुहैं सांचे सिद्ध समाना। गुरु मळयागिर वास प्रमाना॥
गुरु सद्गुरु दीपक अस होई। ताको सनेह कहो मैं सोई॥

गुरुशीषको सनेहवर्णन।

जैसे स्नेहकमल और भौंरा। जैसे स्नेह चन्द अरु कोरा॥
जैसे स्नेह मीन जल अंगा। जैसेहि स्नेह है दीप पतंग॥
जैसे स्नेह मृगा अरु जन्त्री। जैसे स्नेह चकमक और पथरी॥
जैसे स्नेह स्वाति और पपीहा। जैसे स्नेह चुम्बक अरु लोहा॥
जैसे स्नेह मीन अरु नीरा। जल बिछुरे वह तजै शरीरा॥
ऐसे गुरु शिष्यको सन्देशा। मुक्ति होय गुरु मिटो अँदेशा॥
एते स्नेह सीख सहिदानी। इतने गुरुके तत्त्व बखानी॥
गुरुसनेह सीख जो पावे। गुरु रूप होय शिष्य समुझावे॥
गुरुकी दया चलो रे भाई। विन गुरु पार न पावे काई॥
गुरु सोई सत्य शब्द बतावे। और गुरु कोई काम न आवे॥

साखी-गुरु उपमा कहा दीजिये, पटतर कोहू नाय।
पलपल करो जु वन्दगी, छिन छिन देखो ताहि॥

धर्मदास उवाच।

धर्मदास विनती चितलाई। करनी योग गुरु देहु बताई॥
योग ध्यान भाखो टकसारा। जीव उतारो भवजल पारा॥
कायास्थान आदि ते भाखो। कमलभेद गोये निजराखो॥

साखी—कहे धर्मदास।

तुमही करता आदि हो, जिन सब रचना कीन्ह।
सत्य शब्द सार निर्मौलिके, सत्गुरु साँचे दीन्ह॥

कहे कबीर योग विधि बानी। जाते पुरुष सो हो पहिचानी॥ प्रथम कमल कहूँ रे भाई। चारि पंखुरी तोहिं बनाई॥ सिद्ध पवन गनेस है सोई। छेसे जाप अखंडित होई॥ दुतिय कमल नाभी तर होई। षष्ठ पखुरी ताकर सोई॥ ब्रह्मबास सोहि कमलमें होई। छे हजार जाप तहां सोई॥ ६०००। २ तिसरे कमलकी आठ पंखुरी। लक्ष्मीनारायण मूर्ति तहाँ धरी॥ छे हजार जप तहाँ प्रमाना। जो कोई साधू साधे प्राना॥ ६०००॥ चौथे कमल शक्ति शिव रहिऊ॥ षट सहस्र जप तहाँ कहिऊ ६०००। बारा पँखुरी ताकर भाई। सोहं तत्त्वमें ध्यान लगाइ॥ पाँचै कमल अकाशको बासा। सोरा पँखुरी तहाँ निवासा॥ अमी चंद्र है ताकर नामा। सहस्र जाप ताको विश्रामा॥ १०००॥ तहाँते कला अवतारकी आवै चारि वेद ताके गुण गावै॥ अब मैं छठो कमल कहिभाखों तैन पखुरी ताकी पुनि राखों॥ परमात्मा ताहि कमलमें रहई। एकसहस्र जाप तहँ करई॥ १०००। ६ सहस्रजाप दोए पखुरी॥ १०००॥ षष्ठ ध्यानतिहिभीतर धरी॥ गम्य अगम्य अंश दो रहई। तीन देव वहाँ लगि कहई॥ आठे कमल दश पखुरी कहिये। आगिन बान ताके बल कहिये। कामदहन है ताको नामा। जो लखे सो पावै विश्रामा॥

प्रकाश।

नमो कमलकी अविगत बानी। अन्त पांखुरी ताकर प्रानी॥
ता मैं पूरण ब्रह्म अखंडा। निसवासर धरणी नाहिं चंदा॥
एक नाम सत्य है बानी। ताहि नाम सृष्टी उतपानी॥

उनकी छाया सबको भाई। तीन छाँह सब घटहि समाई ॥
दो सरूप आदि सहेदानी। दो सरूप काया बंधानी ॥
तिसरा रूप रहितहै आपै। भेद लखो तिहि गुरू प्रतापै ॥
तेहि प्रतिमा दोय हैं भाई। एक नारि एक पुरुष कहाई ॥
जिनका भेद कहों समुझाई। एक नाद एक बिंदु कहाई ॥
नाद सनेही सुरति हमारी। बिंदु सनेही शब्द विचारी ॥
माया नारि सुरतिहै नादा। चार नाम है एक समादा ॥
नरमन शब्द और कहिबिन्दा। चार नाम भये कहिये बिंदा ॥
नरही नाम मनुष्य बिचारा। मन नामकाल अवतारा ॥
शब्द नाम सूर्यको दीन्हा। बिन्दु नाम नीरको लीन्हा ॥
मेदी नाम इस्त्रीको चीन्हा। माया नाम मृतक जो कीन्हा ॥
सुरति नाम चंद गहि दीन्हा। याहि सूरती मम करि लीन्हा ॥
रज्जु नाम श्वासाघट राच्यो। पुरुषहिं एक सुरतिको साच्यो ॥
शब्दको धातु जाही थापा। बनावन हारो आपै आपा ॥

खुद होइ कहें कबीर।

जहाँ तहां हमही हैं भाई। दुबिधा छोडे काल भगाई ॥
दुविधा काल बडो अन्याई। तन छूटेते लेइ धरि खाई ॥
पिंडका लेखा दीन्ह चिन्हाई। पिंड ब्रह्मांड लेहु अर्थाई ॥
अनंत पंखुरिका कमल है भाई। शुक्र हंस तेहि माहि समाई ॥
आएँ कमल उत्पत्ति पसारा। तेहिमें जीव कीन्ह बिस्तारा ॥
दुसरो कमल सहज है स्याना। तिन्हते सृष्टि भई बंधाना ॥
तृतिय कमल इच्छा उतपानी। चौथा मूल ले बोलै बानी ॥
पाँचये सुरति सोहंग बँधाना। आठ अंश तिन्हके परवाना ॥
छठौं कमल अचिंत्यको वासा। निस वासर जहँ प्रेमविलासा ॥
ताते कमल अक्षर ठहराई। तिनकी तो स्तुति वेदन गाई ॥

अठयें कमल कैलको वासा। नाम निरञ्जन तहाँ निवासा ॥
नौमें कमल तीन लोक बनाई। तीनि देव तहँ रहे भुलाई ॥
पिंड ब्रह्मांडको लेखा सारा। ज्ञानी पंडित करौ विचारा ॥

साखी कहै कबीर।

पिंड ब्रह्मको लेखा, हम दियो प्रगट बताय।
कहै कबीर धर्मदाससों, तुम निर्भय लोके जाय ॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास पूछै चित लाई। सद्गुरुसे उठि विनती लाई ॥
साँचे साहबकी बलिहारी। कैल पुरुषकी जुगति विचारी ॥
पंथ विकट कोई भेद न पावै। जो नहिं सद्गुरु आप लखावै ॥
कैसे कै गुरुवाई करहूँ। कैल पुरुषसो मैं बहु डरहूँ ॥
प्रपंची है कैल अपारा। मोसो चलै न पंथ तुम्हारा ॥
जंबुद्वीप है यमको देसा। कैसे चलिहै मुक्ति उपदेशा ॥
चार वेदमें सब जीव राचै। कैउ फंसते कोइ ना बाँचै ॥
हम सेवक हैं आज्ञाकारी। सोई करो मोहिं लेहु उबारी ॥

साखी-कहै धर्मदास।

हमसों पंथ चलै नहीं, काल अपबल बीर।
घाट बाट सब रो कहे, जिय कस लाये तीर ॥

चौपाई-सद्गुरु कबीर उवाच।

धर्मदास तुम्हें सांच न आवा। अंतर खोलि मैं तुम्हें बुझाव ॥
का पुनि करिहै काल तुम्हारा। सिरपर समरथ है रखवारा ॥
मारहु कैल रसातल जाई। केती कैल हमही निर्माई ॥
केतिक कैल भए मम आगे। केति सृष्टि उत्पति प्रलै भागे ॥
सत्य वचन सुनिये चितलाई। कैल जुगति मैं देहूँ लखाई ॥
सत्त चलाहै सबते न्यारी। तीनहिं लोक प्रपंच पसारी ॥

कल सकल युग डारो खाई। एकौ जीव लोक नहिं जाई॥
ताते समरथ मोहि फरमाई। सांचे जीव आनु मुक्ताई॥
कर्म काल है बहुत अपारा। तुमसों धर्मनि कहों विचारा॥
तीन सुरतिका खेल नियारा। भिन्न भिन्न तिनको विस्तारा॥

चार प्रकारक ज्ञान।

अचिंत अंश समरथको भाई। बारा पलंग राज तिन पाई॥
ताते ब्रह्म सृष्टि भई भाई। ब्रह्म ज्ञाति नहीं उपजाई॥
ब्रह्महि हरानि ब्रह्मकी बानी। एके मारग एक रहानी॥
तिनको चिह्न चले संसारा। अक्षर अतीत नाम है सारा॥
जो कोइ एहि मारगको ध्यावे। अचिंत लोकमें जाय समावे॥
प्रेम सुरति उहाँ मंगलचारा। तिनके संग सखि बारा हजारा॥
अब अक्षरको कहूँ बिचारा। अक्षर कीन्हा अविगति विस्तारा॥
जीव सृष्टिको कीन्ह पसारा। अनभे ज्ञान कीन्ह विस्तारा॥
अनभै करनी अनभै बानी। अनभै चाल है अनभै रानी॥
तिनके चार अंस हैं भाई। आठहि सुरति नहीं ठहराई॥
नीर पवन दोउमहो निसानी। सुरतियोग अनहद साहिदानी॥
यहि प्रकार जो ध्यान लगावै। अक्षर लोकमें जाय समावै॥
सुरति योग महा हितकारी। बीस हजार तिन्ह जीव उबारी॥
तिसरे कैल निरंजन राई। तिन पुनि माया सृष्टि उपजाई॥
माया सृष्टि है तीस हजारा। त्वचा ज्ञानको कीन्ह विचारा॥
तीर्थ व्रत जप तप है करनी। क्रिया कर्म आचार है रहनी॥
इच्छावांछित जो करनी करही। सो फल लेहि जन्म जब धरहीं॥
जोगहि दान यज्ञ मन लावै। चारिहुं बेद साखी समुझावै॥
कोउ राजा कोउ पंडित भाई। कोउ सिद्ध कोउ साधक हाई॥
चार अंस चारों फल पाई। माया सृष्टिको धरधर खाइ॥

ताके संग सखी बारा हजारा। तहां महंमद गये सुखसारा ॥
तेहि सुसको उन्ह लहे भाना। आगे ओहं सोहँके स्थाना ॥
चौथी सृष्टि त्रिगुण परकासा। जो उपज्यो अक्षरकी श्वासा ॥
तिनके ज्ञानक्षुद्र है भाई। जँत्र मँत्र ओ वेद भनाई ॥
रागरँग पूजा चतुराई। अहंकार मद गर्भ भुलाई ॥
जीव भोजनते करे अहारा। नौलाख जीवसँग तिनके धारा ॥
तेहिके ज्ञान जग रहे समाई। घर घर आये कुल बरन हढाई ॥
कोई उग्र कोइ क्षुद्र कहावे। कोइ जीव कोइ नरियर खावे ॥
कोई रोगी औषध भावे। कोई देवी कोइ देव कहावे ॥
कोई प्रेत होय बोले आई। इह विधि सकलजीव भरमाई ॥
श्री देवा गुण रूप निवासा। इन सबभेद कीन्ह परकासा ॥
पाहन पूजा तिन ठहराई। कहूँ विष्णु कहूँ शम्भु कहाई ॥
ब्रह्मा तहां वेद धुन करहीं। विष्णु रूप तहँ पूजा धरहीं ॥
शंभु भये फलके अधिकारी। तीन देव यह युक्ति विचारी ॥
इहि प्रपंच पांच मुख बानी। तेहि प्रपंचमें जीव भुलानी ॥
शुक्रहि पांच काल सेहेदानी। जाये लैदेइ नर्ककी खानी ॥
धर्मदास तुम इन विन राचो। सत्य चाल गहि कैलसो बांचो ॥

चारि सुरतिका लेखा।

चार सुरतिका भेद निन्यारा। सो सब खोलि कहूँ भण्डारा ॥
तिनकी सनद एक है भाई। तेहि सनद लैजाय लेवाई ॥
उय ज्ञान ताकी चारों बानी। पांचें समर्थक पांच प्रमानी ॥
चारों गुरु चारी हैं बानी। पांचें शब्द सुरति सहिदानी ॥
पांचों भेद हैं अगम अपारा। इह पांचों सर्वांग विचारा ॥
चार अँश चार अण्ड प्रमाना। एके सनद एक बन्धाना ॥
चारों गुरु हे जगमें आवा। तिन भवसागर पँथ चलावा ॥

चारों गुरुकी पेढी ।

प्रथम धर्मदास तुम्हे भाई । बंश बयालिस है अधिकाई ॥
दुसरे सत्य बंकेजी राजा । सलाइस अँशतिह सँग बिराजा ॥
तिसरे गुरु चतुर्भुज है भाई । सोरा अँश तेहि सँग समाई ॥
चौथे गुरु सहतेजी भाई । सात अँस मत तत्त्व बनाई ॥
चारहिं गुरू मता अर्थावा । जीव सरूप है जगमें आवा ॥

चार बानी ।

चार बानिले तुम्ह समुझावा । प्रथमाई कोटि ज्ञान कहि आवा ॥
धर्मदास तुम करो विचारा । कोटिबानि है ज्ञान पसारा ॥
दुसरे है टकसारकी बानी । राय बंके जसा निरणय ठानी ॥
टकसार भेद चढि हारी लेखा । जो ऐसे सो सत्यलोकहि देखा ॥
नीर पवनको कीन्ह विवेका । तिसरे मूल ज्ञानका एका ॥
राय चतुर्भुज लीन्ह प्रमानी । चारों गुरु मुक्ति फल दानी ॥
चारि गुरू मुक्ति कडिहारा । बहु जीवनको करिहै उबारा ॥

साखी-कहै कबीर चारि बानि, खानी चार ज्ञाननिधान ।
चारि पदारथ चारि बेद, चारि गुरु प्रमान ॥

धर्मदास उवाच ।

हम चारोंको गुरुकर थापे । पाँचे अंचित राजा है आपे ॥
तीन अंश वे कहां रहे छाई । तीन भेद गुरु कहो समुझाई ॥
तिन्हकी कला कहो गुरु साँचे । जो पुनि कौन खोलिमें राँचे ॥

साखी-सत्य सत्य मोसो कहो, कछु ना राखो गोय ।
सुरनर मुनि ऋषि सबही ठगे, रीते चले सब रोय ॥

चौपाई सद्गुरु कबीर उवाच ।

धर्मदास घटभय उजियारा । ताते अमम्य सुर्ति बिचारा ॥
आठ अंश सब जमा है भाई । चारि अंश सब ठाँव बनाई ॥
अविगति मोसन कहा न जाई । मैं जो कहों तुम धरो समाई ॥

पाँचों सुत पाँचो अण्ड तब पाई। द्वोई अंश छे सुत बैठाई॥
अर्चित बूंद तिन्हीं दियऊ। तिनको नाम अक्षर तिन ठयऊ॥
पाँच अंश नहिं पावत लेखा। और अंशको कहूँ विवेका॥
चार अंश अक्षर सेहेदानी। जिनते उपजी चारों खानी॥
देखि अंश मोह तब आवा। दुसर अंश घट आय समावा॥
त्रिगुण शक्ति घट गई समाई। तब अंशको निद्रा आई॥
सोरा चौकडी सोये सिराई। आठवो अंश जलमाँहि समाई॥
अंडसरूप जो जलमाँ दीन्हा। यहि अविगति सब समरथ कीन्हा॥
अक्षर जग्यो निद्रा गई भाई। देखि अंड व्याकुलता आई॥
तेहि अडमें एक निशानी। सो अक्षर पाई सहिदानी॥
अक्षर दृष्टिसौं अंडविहाना। तिहिते कैल भयो अभिमाना॥
तिन्हके चार वेद भये बंसा। चौथे अंश कालनिधि वंसा॥
मनमें अक्षर संध्या आई। यह तो काल समर्थ निरमाई॥
तेहिते शक्ति कीन्ह विचाना। श्वासुरति अन्तर विलखाना॥
आठो अंश घट रहे समाई। स्वासा संग घट बाहर आई॥
सोरा कला अष्टांगी अंगा। रूपकला वाही सब सुख संगा॥
अक्षर कन्या दीन्ह पठाई। तिनते तीन पुत्र भयो भाई॥
अविगति गति काहू नहिं पावा। समरथ सत्य प्रपंच बनावा॥

साखी-कहें कबीर।

इहि विधि सब रचना करी, काहू न जाने भेद।
जैसे है तैसे तब द्दती, अब को करे निखेद॥

साखी-अविगतिनिर्णयकी धर्मदास उवाच।

धर्मदास बिनती अनुसारी। साहब बिनती सुनो हमारी॥
आठ अंशको भेद हम पावा। गति अविगति दूनो हम गावा॥
चारि अंश एके मत ठाना। चारि अंश भिन्न भिन्न मत ठानी॥

तेहि कारणसब मोहिं बताबहु। केहि कारण प्रपंच उर लावहु॥

साखी–चार सुरति सब मूल है, तुम समरथ परवान।
तुमरे अंगते उपजि कहु, चारहुको अनुमान॥

साखी–बीजकके कलसाकी कीसा सतगुरु उवाच॥

धर्मदास मैं कछु न छिपाऊं। तुमको सकलहिं भेद बताऊं॥ प्रथमहि समरथ आप हते, दूसरो कोइ न हुए। तब समरथके मुखते, सहजहि सुरति भए॥ सोइ सुरति स्वरूप धरि सहजहि बुन्द दयो। तेहिते सहजहि सुरतिका सहज अँकुर भयो॥ तेहि अंकुरते सत करि भयो॥ दूसरे समर्थके अंशते क्षमास्वरूप सुरति भये॥ तब स्वाति स्वरूप बूँद दीयो। तीन कारन सुनो॥ जैसी साँचो तैसो स्वरूप, जैसो पात तैसो अनूप॥ एतो ठेका बँधे जब भयऊ। इच्छा सात। ७। अंड पाँच। ५। चारी अंड एक सिद्धके॥ ४॥ १॥ चारों स्वरूप भिन्न भिन्न हैं॥ पाँचों अण्ड प्रचंड भयो दोउ करीमें अण्ड ना भयो॥

ताहिकरीमें दो अंश हते एक करीमें अक्षर हतो। एक करीमें माया हती। एहि मता अग्निते हतो। आगे तिसरी सुरतिको लेखा सुनो। अविगत सुरत अशून्य। तिसरी सुरतिका लेखा सो सुरति सखन उपजाई। तेहिका नाम मूल सुरतिहै ताहु सुरतिको अक्षय बूंद दीन्हां। तेहिते पांच ब्रह्म भए तिनको आज्ञा दई एक एक ब्रह्म एक एक अण्डनमें आए, एते ब्रह्मते पांच अंस भए। तेही तत्त्वके घर भए। तब अण्ड फूटो पांच तत्त्व प्रगट भये। ५। चौथी सुरती इच्छाते भए। ४। तेहिको नाम सोहंदियो। तेहि सोहंगके ओहं बुन्द कीन्हां तेहिमें आठ अंस भए। सो एती रचना चारि सुरति कीयो॥ प्रथम

अंशते भए आगे सब निकास कहूँ। सात इच्छा सातहीं अंश। अन-इच्छाते आठों अंश भए। अठवाँ अंश भए। ते काल भयो सर्वसृष्टिको संहार करै।

बीजक सारकी साखी–कहैं कबीर।
सात इच्छाके सात अंश भए, अपने अपने आद।
आठवा अंश बिन इच्छा उपजे, ताको मर्म उखाव॥
धर्मदास उवाच–एह धर्मदासने पूछी।

आहो साहेब काहेते समर्थ कहत हैं? काहेते अचिंत कहत हैं॥
काहेते अक्षर कहत हैं? काहेते जोगमाया कहत हैं॥
काहेते कैल कहत हैं? इतना भेद कहो समुझाई॥
भिन्न गुरु देहु बताई। एहिकी शाख गुरु कहैं॥
सुनो धर्मदास तत्वतके धनी। तासों समर्थ कहत हैं॥
तिनते आठ अंश भए। आठमें जेठ अचिंत भए॥
तिनके चिंता नाहीं। ताहिते अचिंत कहाये॥
तिनके प्रेम सुरति भई। तेहि प्रेममें अक्षर आनि समानो॥
तब मोह तत्व उपज्यो। तेहि मोहते चार अंश भए॥
तेहिते चौरासी लक्ष जोनी भई। ८४००००० तेहिते अक्षर॥
कहाये। अब कैलकी हकीकत सुनो। तब अक्षरके मोहतत्त्व॥
उपज्यो तेहि कारणते कैल भयो। मनसाते बुंद पैदा कियो॥
सो जहां अक्षर बैठो हतो। तहां जल तत्त्व हतो॥
तेहि जलमें एक बुंद आनि पडो। तेहि बुंदते एतेएक अंड भयो॥
तब अक्षर ने देखा उठिके। तब अंड लगि आयो॥
एक हकीकत लिखी हती। अंडके मुख ऊपर छाप हतो॥
कहे सृष्टिकी सृष्टि रचना करो। और एक अंश हम पठायोहैं॥
सो तुमते दूसरी करीहै। सो तुम जिन पतियावो। जह्यांलगि

आवै तहां लगि जिन रोको। आवने दीजा जिन काहु भेद बतावो। आगे सत्रासो तीस हजार युग केल युगका प्रमाण है जुग सो भुगति लेहै तोहि पीछे हमारी आठे सुरति आई है। तब हमारो महातम होइ है। तब कालसों जीव छुडाई है। तब कैलको महातम घटि जैहै। एती सनद अक्षर भेदकी॥

साखी—कहें कबीर।

सात इच्छाके सात अंश भए, सातहि सुरति प्रकार।
अन इच्छाते केल भए, सब जीवको करे अहार॥

चौपाई—धर्मदास उवाच।

धर्मदास जिव शंका आई। उठि सद्गुरुसों विनती लाई॥
धन्य भाग्य मोहि मिले गुसाईं। अपना करि मोहि लीन्ह मुक्ताई॥
इच्छा सातके समरथ कर्ता। अत इच्छा वहां कहांते बरता॥
सो निजु भेद बतावो मोही। इह सनद गुरु पूछौं तोही॥
सात करी अंकुर बंधाना। सात इच्छा तेहि माहि समाना॥
सात सुरतिमें थांका राखा। सात अंश तहां बोली भाखा॥
आठवों अंश वह कहांते आवा। कोन भाँति वो अंश निर्मावा॥

साखी—आवगति भेदकी धर्मदास पूछे।

अविगतिकी गति सब कहो, मैं बलिहारी जाउँ।
मटि अँदेशा जीवका, पल पल परसों पाउँ॥

चौपाई—सद्गुरुकबीर उवाच।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासा। वहि समर्थ गति अजब तमाशा॥
इतना तत्त्व जिन पूछो भाई। और सकल शब्द देहों बताई॥
इच्छा सात शक्ति उतपानी। स्वाति सनेह भए परमानी॥
एक अंकुरते सब कछु कीन्हाँ। सब भंडार तिहि माहे दीन्हाँ॥
तिहि अंकुरकी सात न करी। सात इच्छा तेहि माँहि ले धरी॥

सहजंतर तिह नाम कहाई। सात सुरति तिहि माँहिं रहाई ॥
ठेकाज्ञान कहतहौं भाई। जेहि सुनि हंसा लोके जाई ॥
धर्मदास सुनिये चितलाई। यहि कल्सा सब ज्ञानके भाई ॥
बीजक ज्ञान सब कहुँ निशानी। तेहिपर बीजक निश्चय ठानी ॥
सात करीके निर्णय सुनिहौं। बिना भेद तुम कछू न गुनिहौं ॥
भेदमें भेद हम राखो गोई। सो पर सुन्य लखो ना कोई ॥
इच्छा सीप स्वरूप उतपानी। सोवाती स्नेह भए परसानी ॥
बुन्द एक आनंद स्वरूपी। इच्छा सात भए भिन्न स्वरूपी ॥
इच्छा सात रुचि अपने भाई। तेहि प्रमान बुंद तिन्ह पाई ॥
तेहिते पाँच अंड निर्माई। दोए करी तहाँ गुपत छिपाई ॥
तेहिमें गुप्त अंश रहे वासा। प्रथम करीने बुन्द निवासा ॥
तेज अण्ड तहाँ भयो प्रकाशा। तेहिमें सब है जीव निवासा ॥

इच्छाके नाम।

मुख्य इच्छा तेहि इच्छाको नामा। आदि बुन्द तिहि बुंदको धामा ॥
दूसरी इच्छा नेत्र भई है। सुकृत अंड भए तेहि केरै ॥
नेत्र इच्छाते नेत्र बुन्द पावा। तेहिमें सुकृत अंश निर्मावा ॥
तिसरी इच्छा अविगति बानी। श्रवणइच्छामें आनि समानी ॥
श्रवन बुंद अंश तिन्ह लीन्हा। अबोलनाम तेहिबुन्दकोदीन्हा ॥
चौथे अंडमें सत्य पसारा। चौथी इच्छा सो वासा उच्चारा ॥
स्वाती इच्छा तेहि करिको नामा। स्वाती बुंद स्वाति सब धामा ॥
स्वातिते क्षमा अंड निरमाई। अण्ड पांचमों कहुं समुझाई ॥
पांचही इच्छा निमिष ठेहराई। करा एकमें जीवन पराई ॥
स्वाति प्रसन इच्छा उपजाई। जलहि अंड तहाँ उपज्यो भाई ॥
पांच इच्छाके पांच अण्ड निरमाई। दोए इच्छा वेही गुप्त रहाई ॥
छठि इच्छा है करता भाई। कराति बुंद तेहि माँहि समाई ॥

सातें इच्छा सर्वत्र रहाई। सात बंद सब कला है भाई ॥
सातों इच्छाके करता अंकूल। सात करी सब दृष्टिको मूल ॥
तिनके सोरा अंश प्रमाना। एक बचनके सबही बंधाना ॥
आनंद द्वुंद है सदा समीपा। तेहि अंकुरको भिन्न है दीपा ॥
एक सुरतिएक अंकुर कहाई। तिहिको नामसहज श्रुति भाई ॥
सात करी मो थाका बनाई। ताकी गति मति काहु न पाई ॥
बो सुरति इच्छांकुर निर्माई। आठ इच्छा तेहि मौंहि उपजाई ॥
सात इच्छा करि सात समानी। आठमी इच्छा काल उतपानी ॥
तिसरी सुरति मूलप्रकाशा। मूलकीर्ति मूल अंकुर निवासा ॥
सुरतिमूल तिहि मांहि समानी। पांच ब्रह्म तहां भए उतपानी ॥
सहज ब्रह्मके पांचतत्त्व भये भाई। तत्त्व सनेही सबं उतपन आई ॥
दुसरी इच्छा ब्रह्मको चीन्हा। मुक्त चिन्ह उत्पन्न कीन्हा ॥
तिसरो ब्रह्म मूल परवानी। मूल सुरतिसब दृष्टि उतपानी ॥
चौथे सोई ब्रह्म कहावा। तेहि अण्डमों सर्व समावा ॥
पांचों ब्रह्म जलाहल भयऊ। चौदह अंश पुत्र निर्मयऊ ॥
तीनि सुरतिकी एती रचना। चौथे सोहं कहे अमृत बचना ॥
सुरति अभयवुन्द तिन्ह पावा। तेहमें आठ अंस निरमावा ॥
चार पुत्र चार प्रगट पसारा। आपसरूपमिलआठों अमी अपारा॥
तिनके भिन्न भिन्न परसाना। चार अंश भए सृष्टि बंधाना ॥
चार अंश भए मुक्त प्रमाना। तिन्हको भेद न काहू जाना ॥
अंशहि अंशकाहु नहीं देखा। शब्द स्वरूपी सबको पेखा ॥
तेहिके सनद अब कहों समुझाई। जेष्ठो अंश अचिंत है भाई ॥
तिनके प्रेम सुरति पट आई। तेहि प्रेममें मोह समाई ॥
तेहि मोहमें अक्षर उतपानी। अक्षर चारि वेद सहदानी ॥
अक्षर तेहिते चारे भए दीपा। चार अंशने रहे समीपा ॥

चार अंश अक्षरते भयऊ। सर्व सृष्टि भंडार ते ठयऊ ॥
प्रथम अंशते माया भयऊ। शुक्र बीज पृथवीमहँ ठयऊ ॥
दूसरे अदल अंशनिर्माए। रसना सहस्र तिनते निरमाए ॥
तिसरे कूर्म भए अवतारा। जिन सर्व पृथिवको लीनो भारा ॥
चौथे अंश भए धर्मराई। जिन्हें पाप पुण्यको ठेला पाई ॥
चार अंशको देखि भुलाना। तब अक्षर घटमाहिं समाना ॥
तब समर्थ एक युक्ति बनाई। सातवाँ अंश तब आनि समाई ॥
तेहिते निद्रा उपजी भाई। सत्तर निमिष युग गयो सिराई ॥
जब लगि निद्रा अक्षरकूं आई। तब कछु इच्छ रहे ना भाई ॥
सब समर्थ मन शब्द उचारा। तेहिमो केल अण्ड भयो भारा ॥
तेहि अंडमें उत्पती भूपा। नाम निरंजन ज्योतिसरूपा ॥
तिनते तीन देव भए भाई। यहां संग लेहु लखि भाई ॥
सर्व सृष्टि काल धरि खाई। काल देवको कोइ न पाई ॥

साखी-टीकाका।

सात सुरति तब मूल हैं, उत्पत्ति सकल पसार।
अक्षरते सब सृष्टि भई, कालते भये विछार ॥

चौपाई-धर्मदास उवाच।

सांचे सद्गुरुकी बलिहारी। धर्मदास विनती अनुसारी ॥
और भेद सर्व हम पावा। आठमीं इच्छा कीन्ह निर्मावा ॥
केहि कारणते इच्छा कहाइ। अनइच्छा किमि कारन आई ॥
किमि कारण स्वरूपसो काल बनाईयहां अविगति गति कहो समुझाई।

साखी-सत्य पुरुष तुम आदि हो, बोलो शब्द रसाल।
अन इच्छाको सर्म कहो, जेहिते उपज्यो काल ॥

चौपाई सतगुरु उवाच।

कहे कबीर सुनो धर्मदासा। सत्य शब्द है हमरे पासा ॥ जेहिते वृद्ध होय सो इच्छा कहावे। जेहिते नास्ति होय ऐसी अनइच्छा कहावे॥ इच्छा अंकुरकी तनइच्छा हमारी। ते गुणकाल अंश अवतारी। विना काल जीव नहीं डराई। तेहि वर कालरचा हम भाई ॥ इच्छामें वृथा अंशभाई है। अनइच्छा निर्दया कहाई ॥ जीवनमुक्ति कही समुझाई। वचन न माने ताहि काल धरिखाई ॥

साखी-कालअंशयवा जन करो, ताते जीव कालको खेल।
ऐसेका खेल समान है, ज्यों तिलहीमें तेल॥

चौपाई धर्मदास वचन।

धर्मदास बहुते सुख पावा। उठि सतगुरुसों विनती लावा॥ उत्पति कारण हम सब देखा। पांजी भेदका कहो विवेका॥ पाँजी सुरति गुरु देहो लखाई। जेहि मारग हंसा चलि आई॥ नामप्रताप कहो समुझाई। जोहिके बल हंसा घर जाई॥

साखी-धर्मदास विनती करें, जिवरा भयो अनंद।
आप अपुनको लखि परचो, जब कटे कालको फन्द॥

चौपाई सतगुरु कहे पांजी भेद।

सुनो धर्मदास पाँजी भेदप्रकाशा। जिनके सुने है हंस निश्वासा॥ पांजी तीनि भेव अगाहा। जो कोई जीव पहुँचे वांहा॥ प्रथम पांजी आकाश इ भाई। तहाँ अग्रशब्द चढि लोके आई॥ सात शून्य दश लोक प्रमाना। अंश जो लोकलोकको जाना॥ नौस्थान दशमो घर साँचा। तहाँ चलि गए जीव सब बाँचा॥ सोरा असँख्यपर अमी तारा। तेहि चढि हंस गए लोक दरबारा॥ दूसरी पाँजी लोग कहे भाई। तेहि पाँजि त्रीदेव रहाई॥ अष्टम दीप बालीममें अकाशा। तहाँ विष्णु चलिगए तेहि पासा॥

तिसरी पांजीका भेद अपारा। तुमसों धर्मनि कहौं विचारा ॥
पाताळ पांजी है जीव उबारा। बचन प्रतापसो उधरे दूवारा ॥
बाचा बंधको द्वार बनावा। तेहि पांजी गुरु भेद बतावा ॥
पांच भेद पाताळ निशानी। ताते काल करै नहिं हानी ॥
तेहि पांजी जळरंग गुसांई। चौदह मुनि है तिनके ठाई ॥
जळरंग पासको भेद जो पावे। ताके जात वार नहि लावे ॥
सोरा लोक सोरा दरवाजा। सोरा अंश तेहि मांहि बिराजा ॥
सोरा अंश चीह्न जो पावे। जाके सद्गुरु निज भेद लखावे ॥

साखी-तीनि पांजिके निर्णय, तुमसों कहो समुझाय।
सार शब्द जो पाए तो, छिनमें हंस घर जाय ॥

धर्मदास पूछे मंत्र जो गूढा।

सत्य सत्य सुख दया जो कीजे। अपनाके मोहि निजु करि लीजे ॥
तुम समर्थ गुरु जकके कर्ता। सकल भेद जो निर्णय वर्ता ॥
हम चीन्हा तुम बरन छिपाए। बरन छिपाए तुम जगमें आए ॥
आए तुम समर्थ हो अंतर्जामा। सत्य कहो हम निश्चय मानी ॥
जो अपना करि जानो मोहीं। तो अपना तत्त्व बताओ सोहीं ॥
अब तुम कहो कैसे जग आये। कैसे तुम जोल्हा कहाये ॥

साखी-एहि सब कारन भाखि हो, सब संशय मिटि जाय।
अपनो के प्रतिपाळ हो, हंस लियो मुकताय ॥

चौपाई-सतगुरु खुदा होय प्रगटे साखी-खुदवानीकी।

सतगुरु वचन विहंसिके बोले। सत्य सत्य तुम अंतर खोले ॥
तुमसों अंतर कछू न राखों। सकल भेदकी निर्णय भाखा ॥
कहत बचन प्रतीत न आवे। तजत देह जीव ठौर न पावे ॥
तुम युग बंध होए करो सेवकाई। तोहि पीछे हम भेद लखाई ॥
धर्मदास करनी निज करिहो। सीस उतार निज आगे धरिहो ॥

वातो लाटे वस्तु जो आई । तौ एको जीव विनाशिना जाई ॥
चौका करहो लेहो प्रवाना । तब पुनि कहूँ आप बंधाना ॥
तब नहीं हते खंड ब्रह्मंडा । तब नहीं नदी अठारह गंडा ॥
तब नहीं सात सुरत उतपानी । तब नहीं कीन्ह सकल सहिदानी ॥
तब नहिं कहते अंश और बंसा । तब नहिं काल त्रिगुणको संशा ॥
तब नहिं पांच अंड निर्माए । तब नहिं लोकहि दीप बनाए ॥
अविगतिकी गति काहू न पाई । आप बरन हम रहे छिपाई ॥
तब हम हते हता नहिं कोई । हमरे मांहे रहल सब सोई ॥
हम पारस सब सुर्त घट दीन्हा । एक बुन्दते सब कछु कीन्हा ॥
नाम बडाई अंशको दीन्हा । शुक्र प्रकार रची हम लीन्हा ॥
चारि सुरति हम प्रगट पसारा । पांचवीं सुरति हम गुप्तविचारा ॥
तुम जिनशंका मानौ भाई । हमते करता दूसरे न आई ॥
बरन छिपाय हम जगमों आए । युगन युगन हम जीव मुक्ताए ॥
चारों युग हम पंथ चलावा । सात सुरति काहु भेद न पावा ॥
अब हम कीन्हा प्रगट पसारा । सातों सुरति पाय टकसारा ॥
आठे सुरति सुकृत अवतारा । ताते तुमते ज्ञान पसारा ॥
नौतम तरति घरमें राखी । तिनको भेद हम कबहूँ न भाखी ॥
तुम बोधन हम जगमें आए । जाते काल तुम्हें भरमाये ॥
तब हम लोकते दीन्ह पियाना । तुम कारन हम अक्षयअछिपाना ॥

मारग भेद सद्गुरु कहे ।

प्रथम सहज सुरति लगि आए । नौतम सुरति हम नाम धराए ॥
उन्हसों कह्यो हम सत्य संदेशा । सहज अंकुर मानो उपदेशा ॥

सहज पूछे ।

तब उन पूछा तुम को आऊ । सत्य बचन तुम कहाँ कहाऊ ॥

सद्गुरु कहै।

तब मैं कह्यो मोर नाम कबीर। मैं समर्थ श्रुति नौतम शरीर॥
पाँन प्रवाना तुम लेहो भाई। समरथ हुकम लेहो शिर नाई॥
प्रथम चौका सहज दीपमें कीन्हा। सहज सुरतिको अँकपर लीन्हा॥
तब हम चले इच्छा सुरति लगाए। सत्यशब्द उन्हईं समुझाए॥
तौन अंकपर जीव चढाया। मूलसुरतिके दीप चलि आया॥
सत्य शब्द तहाँ बोलै बानी। मूल सुरतिसों निर्णय ठानी॥

मूलसुरति पूछै।

कहो तुम अस कहांते आए। के तुम समरथ बरण छिपाए॥

सद्गुरु कहै।

ना हम समरथ समरत्थ निशानी। नौतम सुरति पुरुषकी बानी॥
जीवकाज संसार पठावा। तुमको सिखावन पुरुषको आवा॥
लेहु पान तुम तजो बडाई। पान लेत गुरु होवे सहाई॥
मूल सुरतिका चौका कीन्हा। चले सोहंग दीप पग दीन्हा॥
तहां शब्द बोले निर्वाना। सत्य संदेशै पुरुष प्रमाना॥
चौथे चौका सोहंको कीन्हा। सोहं सुरत अंकपर लीन्हा॥
चौका चारि अपरपर कीन्हा। चले अचिंत दीप पग दीन्हा॥
अचिंत अंश है रूप उजागर। मानिक दीपमणिनके आगर॥
कंचन चरण भूमि उजियारी। मणि आगर मणीन विस्तारी॥
वहां सत्य हम बोले बानी। अंश अचिंत करो पहिचानी॥

अचिंत पूछै।

पूछै अचिंत कहांते आए। कौन चितावर इहाँ सिधाए॥

सद्गुरु कहै।

तब हम कह्यो मोहि समरथ पठावा। जीवका जवर इहाँ हम चलि आवा॥
तुमते समरथ कह्यो संदेशा। ज्ञानगम्य गुरुवच उपदेशा॥

कोल पान दीन होय लेहो। तन मनचित्त समर्थकूं देहो॥
तब अचित लीन्हा परवाना। सत्य शब्द हिरदे हित माना॥
तब आए अक्षर अस्थाना। महा शुन्य मांहे होत ठिकाना॥

अक्षर पूछे।

तब अक्षर पूछे विहसाइ। कौन अंश तुम कहाँ सिधाई॥

सतगुरु कहें।

तब हम कह्यो मोहे समरथ पठासा। जीवकाज इहां हम चलि आवा॥
तुमते समरथ कह्यो सदृशा। ध्यानगम्य गुरु बचन उपदेशा॥
कोल पान दीन होय लेहो। तन मन चित समरथकूं देहो॥
तब अक्षर लीन्हा प्रमाना। सत्य शब्द हिरदे हितमाना॥

अक्षर पूछे।

तब आए अक्षर अस्थाना। महाशून्य माहे ताहि ठिकाना॥
तब अक्षर पूछे विहसाई। कौन अंश तुम कहाँ सिधाई॥

सतगुरु कहे।

सब प्रम कही तहांते आए। जिन एहि सब उतपानि रचाए॥
जिन इच्छापर सृष्टि रचि दीन्हा। आप बचन कोल जिन्ह कीन्हा॥

अक्षर उवाच।

तब अक्षर घट कीन्ह बिचारा। तुम तो आये सिरजन हारा॥
इतना भेद हमीं पुनि जान्हा। सोइ निज भेद तुम कहेउ बखान्हा॥
सोई छापकी कहो निशानी। तब हम जाने सत्तकी बानी॥

सद्गुरु उवाच।

सुनो अक्षर मैं कहु समुझाई। वस्तु सिखापन तुमको आई॥
प्रथमें सृष्टि रचो फुरमाई। दुसरे कालको लीन्ह बचाई॥
तिसरे बचन दर्शनको कीन्हा। इतना बचन समर्थ तुम्हे दीन्हा॥

अक्षर उवाच।

तब अक्षर दोनों कर जोरी। तुम निश्चय जीवन बन्ध छोरी॥
एक वचन मैं पूछो अर्थाई। तुम समर्थको अंस हो भाई॥

सद्गुरु उवाच।

तब अक्षरते कह्यो समुझाई। कोऊ तुम्हारे देन हमआई॥
तब दिल दया जीवनकी आइ। परणबोधकर छिपि जग आई॥
समर्थ स्वरूप सबजग शिर आए। गुरुसरूप मुक्ता बनि आए॥
वचन गहे सो उतरे पारा। बिना वचन डूबे संसारा॥

अक्षर बिनती करे।

तब अक्षर निज बिनती ठानी। समरथ देहो पान परवानी॥
हम चीन्हा तुम पुरुष पुराना। जब आए तुम एहि ठिकाना॥

सद्गुरु कहें।

तब अक्षरका चौका कीन्हा। अक्षर सुरत अंकपर लीन्हा॥
तब चलि दीप झंझरी आए। सत्य शब्द तहां बोल सुनाये॥
गरजे झँझुरी पग घरतन जाई। केल पुरुष बैठो तिहिं ठाईं॥
होइ पाल्हँग सुन्य है अँधारा। चारि कोटि ज्योतिउजियारा॥
झँझरी दीप हम गए मंझारी। गर्भित केल नहीं बिदे विचारी॥

निर्जन कहें।

को तुम अज धरहो वरियारा। क्यों हम झंझरीमहँ पगधारा॥
कौन हो अंश कहांते आए। अपुनो नाम कहो समुझाये॥

सद्गुरु कहें।

तब हम कही सुनो तुम बानी। योगजीत नाम मोर ज्ञानी॥
समरथ मांग जीव मुकताई। तेहि कारण आए तुम्हरे ठाई॥
इतना कहत केल दुख पावा। क्रोधवंत होइ सन्मुख धावा॥

कैल अनंत भेष धरि लीन्हा। हम सन्मुख बहुयुद्धते कीन्हा॥
गजसरूप होइ सनमुख धावा। गही दंत चहुँ वाजु फिरावा॥
तट फटकार लेपटे सुंड डारा। भागे केल तब पैठ पताला॥
गयो पताल जहाँ कूर्म अवतारा। तब हम चाल तहाँ पग धारा॥

केल कहे।

विनती करें कूर्मसों जाई। राखो कूर्म मैं तुम शरणाई॥

कूर्म कहे।

तबै कूर्म उठि विनती लाई। को तुम्ह आहु कहाँते आई॥

सतगुरु कहे।

तब हम कह्यो नाम मोरा ज्ञानी। योगजीत हम अंश प्रमानी॥
समरथ हुकम जीव उवरण आए। काल फाँसते जीव मुक्ताये॥
झंझरिमाहं बहुयुद्ध हमसों कीन्हा। भागिके शरण तुम्हारी लीन्हा॥
जो सिखवन समरथका लेहो। तोके लइ मार आगे करिदेहो॥

केल कहे।

तबही केल पुनि सनमुख आए। आइ ज्ञानी सों वचन सुनाये॥
सुनो ज्ञानी मोर वचनको लेखा। अपने हृदय तुम करो विवेका॥
समरथ वचन दीन्ह मोहि हारी। मैं पायो लोक संसारी॥
तनकी बात रहित भइ भाई। अब कसउटी अदल चलाई॥
सबै अंश भुगते मध्यानी। हमपर कोप भये तुम ज्ञानी॥
सत्तर युग हम सेवा कीन्हा। चौदह भवन बकस मोहि दीन्हा॥
जैसी निर्णय हमें सुनावो। तैसी सिखावन जानि चलावो॥

कूर्म उवाच।

कूर्म अंश तब बोले बानी। अपनी अपनी करो रजधानी॥
इतना वचन सुनि लेहु हमारा। माहिं माँहि मतिकरो बिगारा॥

चौका पानको जीव तुम्हारा। लोक वेदको कलै पसारा॥
जो कोई करे जोर बरियाई। ताको संग हम नहिं है भाई॥
तब ज्ञानी बहुते सुख पावा। कैल उलटि झंझरिसे आवा॥

सद्गुरु उवाच।

तब में धर्मनि संसारहि आवा। तीन देशों टेर सुनावा॥
एहि भूले माया अभिमाना। सत्य शब्द उनहू नहिं जाना॥
सुर नर मुनि कोइ नहिं मानें। वेदहि क्रिया सबै लपटानें॥
युगन युगनमें शब्द पुकारा। जिन चीन्हे भए हंस हमारा॥
बहुतेक हंस लोकको गयऊ। सत्य प्रती जाके घन भयऊ॥
खोजत खोजत तुमपे आए। सर्व भँडार तुम्हें खोल बताए॥
अब तुम कहा हमारो करहू। सोरा सुतको चौका विस्तरहू॥

साखी–सोरा सुतका चौका, एक अंग गुरू सिख होय।
सदा हजूरी बे रहैं, मिले न बिछुरे कोय॥

सोरठा–जाने संत सुजान, बहुरंगीके रंगको।
समुन्दर बुन्द समान, मर्म कोइ जाने नहीं॥

छंद–ज्ञान प्रकाशे दीपका, जुगति नाम जिन पाइया।
सोइ दीप आदि साजिके, सोई सुरु इसि चढ़ाइया॥

साखी–ब्रह्मज्ञानकी।

आगम कोइ चीन्हे नहीं, लोभे ज्योति प्रकाश।
रसवस जिव बांधे कालसों, फिरि फिरि बांधे आश॥

चौका विधिधर्मदास उवाच।

धर्मदास तब सोंज मँगाए। कर जोरे उठि विनती लाए॥
चौका जुगति बतावो सोई। पाँन प्रवाना देहो गुरु मोई॥
सद्गुरु सम्मुख आसन कीन्हाँ। चौका पूरि प्रदक्षिण दीन्हाँ॥
पान मिठाई नारियर सोपारी। लौंग एलची कपूर बिचारी॥

नारियर मोरिके मालुम कीन्हाँ । समरथ भोग सुर्तसों लीन्हाँ ॥
लिखनी पान हाथके लेऊ । सत्यके अंक पानपर देऊ ॥
तब यमपुरमें परचो खँभारा । मुक्तिके पंथ चल्यो संसारा ॥
अजरपान धर्मदासको दीन्हाँ । इसरूप करि अपना लीन्हाँ ॥
अब तुम हमको चीन्हों भाई । गई तिमिर पिछली सुधि आई ॥
पान प्रसाद् सिखावन पावा । शीश उतारि ले चरण छुवावा ॥
धर्मदास तुम्हें सब विधि कीन्हाँ । माँगों वचन मैं सर्वस दीन्हाँ ॥

धर्मसङ्घ उवाच ।

धर्मदास विनती अनुसारी । पायो बोल वचन मैं हारी ॥
मैं तरों और हमारी शाखा । और पीछले सवही पुरखा ॥

सद्गुरु उवाच ।

तब सतगुरु मनमें विहसाने । से कहा माँग्यो कछु माँगे न जाने ॥
सबै सृष्टिको तारो भाई । तुम तो आपन वंश उबराई ॥
एहि प्रपंच काल सब कीन्हां । मति बुधि खींच तुम्हारी लीन्हां ॥
तब धर्मदास जो भए मलीना । जैसे कँवलको संपुट दीन्हा ॥
सब सतगुरु फिर बोध विचारा । धर्मदास तुम्ह अंश हमारा ॥
एक वस्तु गोय हम राखी । सो निर्णय नहिं तुमसों भाखी ॥
नौतन सुरति हमारी शाखा । सात सुरति जो उत्पति भाखा ॥
आठवीं सुरत तुमहि चलिआए । नौतम सुरति हम गुप्त छिपाए ॥
नौतम सुरति वचन निज मोरा । जेहिते पन्थ न पकरे चोरा ॥

धर्मदास उवाच ।

धर्मदास दोनों कर जोरा । कहो वचन सोई सद्गुण मोरा ॥
सोई वचन कहो समुझाई । जेहिते जीवन सृष्टि नहिं आई ॥

सद्गुरु उवाच ।

आठ बुन्दकी जुगति बनाई । नौतमते आठों बुन्द मुक्ताई ॥
बिना गुरु कोऊ भेद नहिं पावे । युग बँधे सों हंस कहावे ॥

तब युग बंध भए धर्मदासा। नौतम सुरतबुन्द परकासा ॥
नौतम अंश हिरम्मर कीन्हाँ। आशिक बुन्द साहब तिह दीन्हाँ ॥

धर्मदासकी विनती।

धर्मदास विनती अनुसारी। साहब विनती सुनो हमारी ॥
नारायण दास हमारे सोई। उनकी सिखावन कैसी होई ॥
कैसी पंगति उनको करहू। अब तुम अपना वंश विस्तरहू ॥
दोइ कैसे चलिहैं रजधानी। सो सतगुरु मोहिं कहो बखानी ॥

सद्गुरु उवाच।

तब सतगुरु एक बचन पुकारा। चूडामणि वंश छत्र उजियारा ॥
और सबकील बीज है भाई। ताते नारायणनाम जीव कहाई ॥
चूरामणि नामसे काल डराई। नरनामको धरि धरि खाई ॥
अवली वंश चुरामणि सोई। बीज वंश निज हमते होई ॥
और सकल जगनाद सनेही। बिन्द वंश पारसकी देही ॥
तिन्हके सनद चले संसारा। उनके हाथ मुक्ति टकसारा ॥
धर्मदास तुम नाद सनेही। तुम्हरे वंशहि ब्यालिस देही ॥
मैं दीन्हों तुम लेन नहिं जाना। मुक्तिके बचन हम दीन निदाना ॥
वंश बयालिस बुंद तुमारा। सोमें एक बचनते तारा ॥
और वंश लघु जेते होई। बिना छाप नहीं छूटे कोई ॥
बिंद मिले तो वंश कहावे। बिना बचन नहिं घर पावे ॥
नाद बिन्दु युग बन्धजब होई। तबही काल रहे मुख गोई ॥
गर्भित नाद बचन नहिं माने। ताते बिंद हम निर्णय ठाने ॥
बिंद एक नाद बहुताई। बिंद मिले सो बिंद कहाई ॥
मम सरूप है बिंदके वंशा। तिन्हके सनद छूटे सब हंसा ॥

साखी—वंत थापे सो सारहै, जो गुरु दिव्यके देहि।
साँचे दाव बतावही, जीव अपन करि लेहि॥

धर्मदास उवाच।

धर्मदास बिनती अनुसारी। साहब बिनती सुनो हमारी॥
पंथ पंगति केसे नीर बहाई। सो गुरु साँचे दया कराई॥

सद्गुरु उवाच।

धर्मदास मैं कहों समुझाई। इमहि तुमहि केसे बनिआई॥
ऐसे नाद मिले बिंदको जाई। तबही हंस पहुँचे वह ठाई॥
अंश होइहे उनके कड़िहारा। तिनकी छाप चले संसारा॥
कोटिन योग युक्ति धरि धावे। बिना बिंद नहिं घरको पावे॥
हम बूंद तुम्ह नाद प्रमाना। नारायण नाम नाहिं ठिकाना॥
वंश विरोध चलिहै पुनि आगे। काल दगा सब पंथहि लागे॥

वंशप्रकार।

प्रथम वंश उत्तम। १। दूसरा वंश अहंकारी। २। तीसरा वंशप्रचंड। ३। चौथे वंश बीरहे। ४। पाँच वंश निद्रा। ५। छठे वंश उदास। ६। सातमें वंश ज्ञान चतुराई। ७। आठे द्वादश पंथ विरोध। ८। वंश पंथ पूजा। ९। दशवें वंशप्रकाश। १०। ग्यारवें वंश प्रगट पसारा। ११। बारवें वंश प्रगट होय उजयारा। १२। तेरहे वंश मिटे सकल अँधियारा। १३। एती दगा कालकी समाई है। तत्त्व बिन्दुकी टेक रह जाई है।

आगमबानी।

अब तुम सुनो अगम्यबानी। तुमपर कोपे काल अभिमानी॥
चार सुरति कालकी भाई। ताको काल पुनि निकट बुलाई॥
तुमसों मैं चार वानी भाषा। चारि निर्णयकी बोली भाषा॥
चेहिपर काल कहे चतुराई। चार सुरति कहें संधि बताई॥

कालकी चारसनंध ।

चित भंग जग कीन्ह प्रकाशा । बीजक संध तिन्ह कीन्ह निवासा ॥
मन भंग लै मूल समाई । फैल ज्ञान बहुत चतुराई ॥
ज्ञानभंग है बडो अन्याई । सो टकसार भेद ले आई ॥
चौथे अकिल भंगको लेखा । वो तारतम लै करै विवेखा ॥
छैदर्शन आगे चारि संप्रदा भक्ति दृढाई । सत्य पुरुषकी खबरि न पाई ॥
चारि पंथ आगम हम भाखा । ताके मैं न्हेचै तुम्हरी साखा ॥
ताते पंथ निनार हम राखा । सो तब तोसों दीनों भाखा ॥
बिंदु हमार चूरामणिदासा । उन्हके हाथे मुक्ति निवासा ॥
उनके निकट काल नहिं आवें । बचन बंसको शीस निवावे ॥

साखी–चारि बानी चारि खानी, चारि ज्ञाननिधान ।
लख चौरासी जिया जोयनिमें, तहां तीन जीव प्रमान ॥

धर्मदास पूछे तीनि जीवकी सनद ।

धर्मदास पूछे चितलाई । तीन जीवन गुरु देहो बताई ॥

गुरु कहैं तीन जीवकी परीक्षा ।

तब सद्गुरु बोले अस बानी । तीन जीवकी लखो सहेदानी ॥
तीन प्रकारके जीव बोधमें आई । चाल चलै सो वरको जाई ॥
प्रथम जीव ब्रह्मसृष्टि है भाई । जिन्ह आवागमन रहित घर पाई ॥
दूसर जीव सृष्टि व्यवहारा । करनी करि लीन्हे अवतारा ॥
तिसरी माया सृष्टि बंधाना । बोध बचन कीनो परमाना ॥
अब तुम पंथ चलावो जाई । पहुँचे जीव तुम्हारी बांही ॥
प्रथम बानि सुनि सुरति लगावै । निश्चय दर्श हमारा पावै ॥
प्रथम बानि हैं ज्ञान हमारा । सुनि हँस आवै सत्य दरबारा ॥
संमत पंद्रासे बीस प्रमाना । मास जेठ बरसायत जाना ॥
तेहि दिन कलिमो उतरे फुरमाना । बंश बयालिस रोपे थाना ॥

चारि गुरु निज सखि हमारा। तिन्हकी छाप चले संसारा ॥
बंस बयालिस बचन हमारा। तिन्हते मुक्ति होय संसारा ॥
सहसर भांति होय जो कोई धावै। कोटिन योग समाधि लगावै ॥
कोटिन ज्ञान छान बिल छानै। अर्थ परीक्षा बहुविधि आनै ॥
बचन बंशको बीरा नहिं पावै। फिर मरै फिरहि गर्भमें आवै ॥
धर्मदास सुनो सत्यकी बानी। काल प्रपंच बहुत बिधिठानी ॥

द्वादशपथ चलोसो भेद।

द्वादशपंथ काल फुरमाना। भूले जीव नहिं जाय ठिकाना ॥
ताते आगम कहि हम राखा। बंश हमार चूरामणि शाखा ॥
प्रथम जगमें जागू भ्रमावै। बिना भेद ओ ग्रन्थ चुरावै ॥
दुसरें सुरति गोपालहि होई। अक्षर जो योग दृढावे सोई ॥
तिसरा मूल निरञ्जन बानी। लोकवेदकी निर्णय ठानी ॥
चौथे पंथ टकसार भेद ले आवै। नीर पवनको सन्धि बतावै ॥
सो ब्रह्म अभिमानी जानी। सो बहुत जीवनकी करीहै हानी ॥
पांचों पंथ बीजकको लेखा। लोकप्रलोक कहै हममें देखा ॥
पांच तत्त्वका मर्म दृढावै। सो बीजक शुक्ल ले आवै ॥
छठवां पंथ सत्यनामि प्रकाशा। घटके माहीं मार्ग निवासा ॥
सातवां जीव पंथ ले बोलै बानी। भयो प्रतीत मर्म नहिं जानी ॥
आठवें राम कबीर कहावै। सतगुरु भ्रम लै जीव दृढावै ॥
नौमे ज्ञानको काल दिखावै। भई प्रतीति जीव सुख पावै ॥
दशवें भेद परमधामकी बानी। साख हमारी निर्णय ठानी ॥
साक्षीभाव प्रेम उपजावै। ब्रह्मज्ञानकी राह चलावै ॥
तिनमें वंश अंश अधिकारा। तिनसो शब्द होय निरधारा ॥
संवत सत्रासै पचहत्तर होई। तादिन प्रेम प्रगटे जग सोई ॥

आज्ञा रहै ब्रह्म बोध लावे। कोली चमार सबके घर खावे ॥
साखि हमार ले जिवसमुझावे। असंख्य जन्ममें ठौर ना पावे ॥
बारवे पन्थ प्रगट है बानी। शब्द हमारेकी निर्णय ठानी ॥
अस्थिर घरका मरम न पावे। ये बार पंथ हमहीको ध्यावे ॥
बारहे पन्थ हमही चलिआवे। सब पथ मिट एकही पन्थ चलावे॥
तब लगि बोधो कुरी चमारा। फेरी तुम बोधो राज दुवांरा ॥
प्रथम चरन कलजुग नियराना। तब मगहर माडो मैदाना ॥
धर्मरायसे मांडो बाजी। तब धरि बोधो पंडित काजी ॥
बावन बीर कबीर कहाऊ। भवसागरसों जीव मुकताऊ ॥

कलियुगको अंतपव्यते।

ग्रहण परे चौंतिससो वारा। कलियुग लेखा भयो निर्धारा ॥
३४०० ग्रहण परे सो लेखा कीन्हा। कलियुग अंतहु पियाना दीन्हा ॥
पांच हजार पाँचसौ पांचा। तब ये शब्द होयगा साँचा ५५०५ ॥
सहस्त्र वर्ष ग्रहण निर्धारा। आगम सत्य कबीर पोकारा ॥
सेरा वंश चले रजधानी। वंश चूरामणि प्रगटे ज्ञानी ॥
तिनकी देह छायाँ नहिं होई। सर्व पृथ्वी प्रमानिक सोई ॥

क्रिया सोगंद।

धर्मदास मोरी लाख दोहाई। मूल शब्द बाहर जिन जाई ॥
पवित्र ज्ञान तुम जगमों भाखो। मूलज्ञान गोइ तुम राखो ॥
मूलज्ञान जो बाहेर परही। बिचले पीढी वंस हंस नहिं तरही ॥
तेतिस अर्व ज्ञान हम भाखा। मूलज्ञान गोए हम राखा ॥
मूलज्ञान तुम तब लगि छपाई। जब लगि द्वादश पंथ मिटाई ॥

द्वादशपंथका जीव अस्थान।

द्वादशपंथ अंशनके भाई। जीवबांधि अपन लोक लेजाई ॥
द्वादश पंथमें पुरुष न पावे। जीव अंशमें जाइ समावे ॥

तुम जिन भूलो ज्ञानमो भाई। बिगडे हंस सब जीव भुलाई॥
सोरठा-हमरो करै सब ज्ञान, बंस बयालिस तिलक है।
द्वादश पंथमें मान, पुरुष शब्द तोसे कहूँ॥

धर्मदास उवाच।

धर्मदास पूछे चितलाई। बंस बखान गुरु कहो समुझाई॥
कौन बंश कौन अंश हमारा। कौन बंश अंश मर्याद सुधारा॥
पंथ पंगत तेहि भाव बतावो। जैसे जगमो पंथ चलावो॥
तुम्हरो डर मानै सब कोई। वचन डोर बाँध्यो जग सोई॥
दास नरायण सरण न पावा। दुसरा बंश अंश धरि आवा॥
लेहिकी पंगति कहो समुझाई। सोई पंगति आगे चलि जाई॥

साखी-इतनी निरभये भाखिहो, गुरु मोहि कहो समुझाय।
बंश अंशकी पंगति, सबविधि देहु सिखाय॥
साखी-बंशनिर्णयकी। सद्गुरु उवाच।

धर्मदास सुन भेद अपारा। तुमसों कहूँ बंश अंश निधारा॥
समर्थ हमसों ऐसी फुरमाई। धर्मदासको लेहो जगाई॥
धर्मदास है अंत हमारा। उन्हसों भेद कहो निर्धारा॥
उनही जागा एक पंथ हढावो। पीछे हम अपनो अंश पठावो॥
ते जन्म लीहै धर्मदासके आई। बोही हंसनके बन्ध छुकताई॥
तिन्हके बंश चले कडिहारा। बहुत जीवनिके करे उवारा॥
तब हम पुरुषसों बिनती कीन्हा। कन्य बंस धर्मदास जो लीन्हा॥
तो कैसे कै लोकै आवा। सोइ बात गुरु मोहि सुनावा॥

शुद्धबानी।

तब समर्थ अस बोले बानी। धर्मदासको बंश अभिमानी॥
ताते हम अपना अंश पठावा। जंबुद्वीपमें याना बैठावा॥

अच्छर अच्छर अतीतकी बानी। निःअच्छर कोई बिरले जानी॥
निःअक्षर की अक्षर श्वासा। नहीं धरनी नहीं गगन प्रकासा॥
अक्षर तीनि लोक विस्तारा। तामें अरुझो सब संसारा॥
तीन सुत तेज अंडमों आई। आप आप इन्हें आप ठढाई॥
चार वेद कहै तिनकी साखी। अक्षर अतीत थापि उन्ह राखी॥
अब भिन्न भिन्न कहूँ अर्थाई। सात सुरतिके स्थान बताई॥
अक्षर अतीत माया सो कहिए। सोई सुरति निरंजन लहिए॥
अक्षर सुरति दुतिय है स्थाना। जिनके चार वेद परवाना॥
द्वन्द्वातीत अनहद रहता। प्रेम धाम अक्षरकी चहता॥
चार सुरतिका भेद नियारा। तीनि सुरतिका देउ बिचारा॥
पाँचे सुरति अंकुरकी बानी। पांचे स्थान तेहि ठहरानी॥
छठे स्थाना अंकुरकी है आपा। जेहिते सात करी उतपाता॥
सातवीं सुरति सहजकी रही। उ,इ समरथको देखा सही॥
सात सुरति सात है स्थाना। मूल सुरति है समय प्रमाना॥
सहज सुरति सब सुर्त उपजाई। मूल सुरति ले हंस समाई॥
मूल सुरति है सबको मूला। सात सुरतिको एक स्थूला॥
सात सुरति मूल सिव सब माहीं। धर्मदास लखि राखो ताहीं॥
शब्द पाँची इतना परमाना। अब कहूँ कायाकी बंधाना॥
सातों सुरति कायामें रहे। जो काया धरि बातें कहे॥

सुरति स्थान।

प्रथमहि द्वीप अमर मनियारा। तहँ वा मूल सुरति बैठारा॥
दुसरा अजर दीप तहां कीन्हा। सहज सुरतिको बैठक दीन्हा॥

चौपाई।

तीसर दीप हिरण्मय सोई। सुरति अंकुरकी बैठक होई॥
चौथे दीप सुरँग निमोवा। ओहं सोहं तहाँ बैठावा॥

पाँचवें अधर दीप रहे वासा। तहाँ है अर्चित सुरतिको वासा॥
छठये पच्छ दीप जो कीन्हाँ। तहाँ अक्षरसुरतिको बैठक दीन्हाँ॥
सातवीं सुरत कढ दीप विल्माना। काम क्रोध मोह तहाँ समाना॥
सातवीं सुरति सातहूँ स्थाना। तीनसुर्ति निरंजन काल प्रमाना॥
पुहुप दीप है सबते न्यारा। तहाँ समर्थ से बीज विस्तारा॥

साखी–पटपटकी जो परखे कहो, सब स्थान बताय।
कह कबीर बिनु का परखे, फिरिफिरि रह भटकाय॥
साखी–सुरति पांजाकी धर्मदास उवाच।

मैं सद्गुरु तुमरी बलिहारी। कर्म फाँस केते निरुवारी॥
मोहि कहो जेहि दुख ना होई। काल चरित्र कहौ सब सोई॥
जो तुम्हरे दिल आवे गुसाई। संशय जाल्ते लेहु छुडाई॥
साखी–तुमरो भेद अगम्य है, काहु लख्यो नहिं भेद।
सुर नर मुनि सबही ठगे, सनकादिक शुक देव॥

सतगुरु उवाच।

धर्मदास सुनियो चितलाई। तुम जनि शंका मानो भाई॥
पंथ हमारो चलावो जाई। वंशब्यालिस अटल अधिकाई॥
वंश बयालिस अंश हमारा। सोई समरथ बचन पुकारा॥
वंश बयालिस गरवाइ दीन्हा। इतना कह हम तुमको दीन्हा॥
वंश अंश समरथ कडिहारा। सो जीवनको करे उवारा॥
तुम जिन शंका मानो भाई। समरथ वचन राखो चितलाई॥
अटक काहुकी तुम जिन मानो। पाँच नाम तुम निश्चय जानो॥

साखी–तुम समर्थके अंश हो, जाग्रत वंश तुम्हार।
समर्थ बचन जानि छोडहूँ, मानो बचन हमार॥

साखी-ब्यालिसके निसाकी-धर्मदास उवाच।

धर्मदास जब विनती लाई। हमसों पंथ ना चले गोसाई॥
नरदेहीसो पंथ चले ना भाई। जाते अपना अंश पठाई॥
अंश बयालिस देहु पठाई। ते जग हंस लेहि मुक्ताई॥
तुम्हें सिखावन हमसों लीना। तुम्ह ले धर्मदासको दीन्हा॥
बचन वंश एक है भाई। नाम वंश जग में बताई॥
बचन वंश है आदि निशानी। तिन्हकी पावै जग सहेदानी॥
नाम नरायण हैं अभिमानी। तुम संसार फिर जावो अब ज्ञानी॥

कबीर उवाच।

तब समर्थ मोसे अस कही। बशहि अंश चुरामणि सही॥
तुम्ह जो सिखावन हमसों लीन्हा। ऐसा जग चूरामणि कीन्हा॥
संधिक नाम है उन्हकी देही। पावै हंसा जो हमरे सनेही॥

साखी-यह निज बचन समर्थके, हमसों मेटि न जाय।
अमीनिको मैं सोंपा है, तुम्हको सोंपि न जाय।

साखी-धर्मदास उवाच।

धर्मदास तब भए मलीना। उठि सद्गुरुसों विनती कीन्हा॥
हो साहेब मैं तुम बलिहारी। वंसनारायण शरण तुम्हारी॥
नाम प्रतीत तुम करो संभारी। नामनरायन तुम बोल विचारी॥
अपनो बोध राखो संसारा। बिंद बंस प्रण आए हमारा॥

साखी-इतनी विनती मैं करूं, तुम दाता गुरु मोर।
संशय मेटो जीवको, छेदो फँदको छोर॥

साखी-वंश निषेदकी सतगुरु उवाच।

धर्मदास तुम बड विवेकी। तुम्हरे घटमें बुद्धि बढ देखी॥
घर घर गुरु जगतमें होई। हमरे गुरु बचन वंश है सोई॥
वह सब करें मुखहि चतुराई। ताते जीव राखे भरमाई॥

नान तजी लेहि परमाना। खोवे जगतपति अभिमाना॥
वचन वंशकी पारख पावे। सो हमारे बस कहावे॥
वचन बँस पारख नहिं होई। बंस हंसतव जाय बिगाई॥
वचन बन्धीए वंश अधिकारा। पारस सरूपी है संसारा॥
पारस छुवे लोहा कँचन होई। पोहेप बास तिल भेदे सोई॥
वचन बश है पुरुष सनेही। कामरूपते हंसकरि लेही॥
सो सब उत्पत्ति कहो समुझाई। जो चीन्हे तो लोके जाई॥
धर्मदास तुम पन्थके राजा। नाद बिंदु हम दोनो साजा॥
तुम्हरे वंश पंथके कडिहारा। वचन बंस लोकसठिहारा॥
सद्गुरु वचन लेहि सिरनाई। तब तुमरे वंश करे गुरुवाई॥

साखी–कहे कबीर।

नाम नरायण जगद्गुरु, करै बोध संसार।
वचन प्रतापते छूटहि, वो समर्थके कडिहार॥

साखी वंश अंसनके धर्मदास उवाच।

धर्मदास बिनती अनुसारी। साहब बिनती सुनो हमारी॥
काया पांजीको भेद लखाओ। वंश अंश दोऊ तत समुझाओ॥
वासन्धि कहो जाते होय उवारा। सोई भेद तुम कहो पुकारा॥
धाम चारिका भर्म बताओ। कैसे कैठओ आनि समाओ॥
धर्मराय जो अपरबल बीरा। तीन लोकमें ताकी पीरा॥
कैसे पंथ चले जगमाहीं। तीन लोकमें ताकी छाहीं॥

साखी–पांजी भेद लखान हो, वंश अंशनिरधार।
इतनी संशय मिटावहू, सतगुरु हंस उबार॥

साखी–काथा पांजी सतगुरु उवाच।

धर्मदास कहौं समुझाई। काया पांजी आदि है भाई॥
सुर नर मुनि कोइ गम्य न पावा। झूठी आस बांध सब धावा॥

पांजी चार भेद है भाई। चार अंश सब जगहि भ्रमाई॥
अक्षर तीनि लोक उरझाना। तीनि लोक अक्षर ठेहराना॥
जंबु दीप है यमको वासा। कैसे मुक्ति होय परकासा॥
तुम तो जुगन जुगन चलि आए। काहे न शुक्र जीव मुकाए॥
चारि वेद तुम्हें नाहीं मानैं। वेद क्रिया सब जीव समानैं॥
साखी-हमसों पंथ ना चलिहै, भवसागर दारुण है द्वन्द।
वंश बयालिस तारहु, काटो कर्मके फंद॥

सद्गुरु उवाच।

सुनो धर्मदास कहूँ मैं तोहीं। तुम नहिं निजके चीन्हे मोहीं॥
हमरो कह्यो नहिं मान्यो भाई। अपना बंस माँग्यो मुक्ताई॥
सकल सृष्टिगुरु तुमकूं कीन्हां। तुमतों बंस बयालिस लीन्हां॥
तुमको जानि बडाई दीन्हां। जक गुरु हम चूरामणि कीन्हां॥
इमसों समरथ ऐसी कही। चूरामणि बंशजीवन निरबही॥
वचन वंशको जो नहिं मानी। ताको काल करे जिवहानी॥
तुमकूं सेवै गुरु व्यवहारा। सो देखे समरथ दरबारा॥
जो नहिं मानें कहा तुम्हारा। ताका सास्ती करे वहि पारा॥

साखी-तुम गुरु बयालिस वंशके, हम कह्यो वचन टकसार।
तुम्हरे हाथ जीव सब पहुचहिं, तुम समर्थ कडिहार॥

साखी-गुरुव्याख्यानकी धर्मदास उवाच।

हो सतगुरु मैं तुम बलि हारी। हम मान्यो निज कह्या तुम्हारी॥
तुम सतगुरु हम शिष्य अजाना। तुम सब तम हम पुरुष पुराना॥
गुरुवाईका लेखा सुनाओ। बिन लेखा जीव कैसे मुक्तावो॥

साखी-लेखा कहो तुम सद्गुरु, सब संशय निरवार।
हम गुरुवाई करी है, मान्यो वचन तुम्हार॥

साखी–गुरुवाईकी जुगति सतगुरु कहै।

सुनो धर्मदास कहों मैं बानी। बात हमारि तुम निश्चय मानी॥
वचन वंश नहीं लागे भाय। लेखा देखि चले कड़िहारा॥
बिन लेखा गुरुवाई करही। आसानंद कालमुख परही॥

चौका बिसयारकी जुगति।

प्रथम लेखा जब चौका पोतावै। तब निकुत मंत्र ले नीर मँगावै॥
दुसरे चौका पूरो भाई। काया मूलको मंत्र जगाई॥
तिसरे आसन करो विस्तारा। पुरुषशब्द निज करो पुकारा॥
चौथे कलस लै आगे राखौं। पंचतत्वको मंत्र मुख भाखौं॥
पाँचमो नारियर स्नान करावो। सोहं शब्द लै भद्र करावो॥
छठवें स्वेत मिठाई आनो। मानसरोवर मंत्र बखानो॥
सातवें उत्तम पान मँगाओ। पक्ष पाठना मंत्र गोहरावो॥
आवें दलकी जुगति सुधारी। दयाशब्द बोलो अधिकारी॥

साखी–अरु कपूर लोंग इलायची, दल निरनेकी जुगति।
विधि विधि विल छौनि केन्द्रहैं, दीन्हौं गुरु जिव मुक्ति॥

चौपाई।

नौमे नया वस्त्र लेआवो। अमर चीरको मंत्र जपावो॥
दसवें सोरा सुपारी धरहु। पाताल अंशको मंत्र उचारहु॥
ग्यारहें पाँच बरतन आनो। आदि नामको मंत्रवखानो॥
बारहें आनि धरो परवाना। संधिकमंत्र कहो परवाना॥
तेरहें चँदवा छत्र बनाया। समरथ मंत्र छत्रपति आया॥
चौदहें आरति आनि बनाई। सोहँगमंत्र निर्णय गोहराई॥
पंद्रहे तिनका अर्पण कीन्हा। चौदा यमका मन्त्र तब चीन्हा॥
सोरहे सोडश मंत्र प्रवाना। कदली दल तहां उत्तम आना॥
सत्रह सतगुरु करे निशानी। सो नरियर मों डारो पानी॥

अठारवें अमि शब्द ले नरियर मोरे। नहिं तो काल सीस ले तोरे ॥
बिना एकोत्री जो कडिहारा। ते सब बांधे यमके द्वारा ॥
बिना लेखे जो गुरु कहावे। गुरु डूबे शिष्य पार न पावे ॥

साखी–इतना लेखा पावे, सो साँचो कडिहार।
कहें कबीर बिन लेखा जाने, छुटइ काल बटपार ॥

साखी–कडिहारी भेदकी धर्मदास उवाच।

साहेब इतना भेद न आवे। सो नाहीं कडिहार कहावे ॥
मूलभेद तुम कहो प्रमाना। तेहिते हंस होय निर्वाना ॥
मूल भेद है आदि निशानी। सो समरथके होय प्रमानी ॥
इतनी परचे इमहूं दीजे। मूल भेदकी दया गुरु कीजे ॥
गुरु सोई जो ज्ञान बतावे। और गुरू कोइ काम न आवे ॥

साखी–धर्मदास कोया करे, छुओ सतगुरुके पाँव।
साहब जो मैं तुमते बिछुरो, तो मूल शब्द बाहर होइ जाव ॥

साखी–मूल भेदकी सद्गुरु उवाच।

धर्मदास कहो मैं सोई। मूल भेद घट राखो गोई ॥
गुरु मर्याद काहू ना पाई। ताते शब्द तुम राखो छिपाई ॥
मूल भेदहै अगम अपारा। बिरला हंस पावही पारा ॥
सुर नर मुनि गण गन्धर्वदेवा। तिनहु मूल नहिं पायो भेवा ॥
काया मूल है आदि निशानी। सो धर्मनि तुम सुनो प्रमानी ॥
जो निज योग समाधि लावे। सो तो लाभ तिनहुँ नहिं पावे ॥
चार वेद जिस अगम बखाना। मूल भेद वेदो नहिं जाना ॥
अक्षर मूलकी उत्पति भाखी। अजर मूलके बाहर राखी ॥
अजरमूल है सबको मूला। तेहिते प्रथम काया है स्थूला ॥
लखो सैनमें देउ लखाई। अजर मूल ले लोक समाई ॥
भिन्न भिन्न सब मूल बताऊँ। अजर मूल काया दिखलाऊँ ॥

मूल भेद।

प्रथम मूल आदिहै भाई। जिन सब उत्पति अंकुर बनाई॥
दुसर मूल बानी है व्यवहारा। जेहिते सहज सुरति निरधारा॥
तीसर मूल मर्मको पावै। मूल सुरति सब भेद बतावै॥
चौथ मूल सोहँग बँधाना। तामें सुरति ओहँग समाना॥
पाँचएँ मूल है अंचित पर बानी। प्रेम सुरति तिहिमाँहि समानी॥
छठे मूल अक्षरकी बानी। योगमाया अक्षर उत्पानी॥
सातवें मूल सबहीकी बानी। तेहिते कैल निरंजन जानी॥
अक्षर मूलहे सातवें काला। त्रिगुण काल उत्पति प्रतिपाला॥
धारकाल अपरबल बीरा। जाते जीवको व्यापे पीरा॥
इतनो मूल चारि काल बखानी। अजर मूल चारिमाँहि समानी॥
सद्गुरु मिले तो भेद लखावे। बिना सतगुरु कोई पार न पावे॥

साखी-बिनु सद्गुरु बाँचे नहीं, कोटिन करै उपाय।
अजर मूलका खोज न पावे, बाँधे यमपुर जाय॥

साखी-मूल व्याख्यानकी धर्मदास उवाच।

तुम सद्गुरु हो समरथ दाता। कैसे मिटे कालकी घाता॥
तीन भेद गुरु देहु बताई। जेहिते हंस लोकको जाई॥
शब्दपरीक्षा हमको दीजे। सब जीवनकी परचे कीजे॥
कैसे सीख हम करें संसारा। तीन भेद मोहे कहो विचारा॥
कैसे तरिहैं जगके हंसा। कैसे निर्भय तुम्हारे बंशा॥

साखी-वंश अंशकी निर्णय, हमसों कहो समुझाय।
केहि विधि हम जो निस्तरे, कैसे लोकहि जाय॥

सद्गुरु उवाच।

सुनो धर्मदास कहूं मैं तोही। वचन बंश प्रताप है सोही॥
बंश बयालिस वचन हमारा। जिनको समरथ है रखवारा॥

ताको खोजि परमपद पावै। भवसागरमें बहुरि न आवै ॥
जिनके व्यालिस वंश तुम्हारा। जिनके वचन अंश है कडिहारा ॥
वचन वंशको अंश न दावै। तुम्हरो वंश नहिं बोध चलावै ॥
एहिविधि वंश अंश जो होई। दूत भूत यम कंपै सोई ॥
जाति न जे और मोहन आवै। सोई वंश अंश कहलावै ॥
कलकी दशा जानिके खोवै। निश्चय राज वंश गुरु होवै ॥
जिनके पारस चले संसारा। देखत काल होय जरिछारा ॥

कडिहारी लेखा।

अब सुनियो कडिहारी लेखा। वंश अंशको जानि विवेखा ॥
वंश अंशको करै विचारा। सो कहिए वोहित कडिहारा ॥
वंश अंश नहिं अक्षर पावै। सो कडिहार बोधकूं ध्यावै ॥
वंश वचन कडिहारी करहीं। सो कडिहार फाँस नहिं परहीं ॥
कडिहारका किन होय कडिहारा। लक्ष चौरासी अटकै सो बारा ॥
जाति पाँतिकी दसी न राखै। सद्गुरु परिचय निशदिन भाखै ॥
वंश अंशको पान चलावै। सो साँचै कडिहार कहावै ॥

हंसकी चाल।

अब सुनियो जग हंस बिचारा। प्रथमहि चौका करै हमारा ॥
चौका अंश समर्थके भाई। तिन्ह अपनी युग अदल चलाई ॥
चौका अंश कालकी हानी। तेहिते पुरुषकी सुरति समानी ॥
तिनुका तोए लेहि प्रमाना। यम भाजे छाँडे अभिमाना ॥
चरणामृत हि तत्त्वसों लेही। यमके हाथ चुनौती देही ॥
प्रेम प्रतीतसो सेवा लावै। नाम पान गुरु अक्षर पावै ॥
हस वरन हो तहवाँ जाई। जब सतगुरु सतशब्द लखाई ॥
एहि विधि वंशहसकी करनी। ताते तुम सों कहूँ वचन प्रमानी ॥

साखी–एहि वचन निज सत्य है, तुम वंश अंशको पान।
कडिहारी लेखा सार है, हंसहि भाव भक्ति परवान ॥

साखी-वंशअंशकी धर्मदास उवाच।

साँचे सतगुरु हम भल पावा । जमको धोखा सबहि मिटावा ॥
गुरु शिष्यको भेद हम पावा । वंश अंश लै सबै परखावा ॥
अब वंश अंशका कहो प्रमाना । केते वंश केते अंश ठिकाना ॥
वंश अंश केते कडिहारा । तेहिकी परचै देहो विचारा ॥
केतिक वंश कडिहार समुझाई । केतिक संग हंस लै जाई ॥
केतिक प्रमान वंश हंस चलि जाई । सो समर्थ मोहे देहो चिन्हाई ॥

साखी-वंश अंशके प्रमान कहो, लेखा देहो बताय ।
एती सन्धि मोसों कहौ, सब संशय मिटिजाय ॥

साखी-सबवंश प्रमानकी सद्गुरु कबीर उवाच ।

धर्मदास तुम बडे विवेकी । तुम्हरे घट बुद्धी बढ देखी ॥
वचन वंश बयालिस ठीका । तिन्हको समरथ दीनो टीका ॥
वंश अंशवचन एक सोई । दीर्घ वंश अंश लघु होई ॥
जेठो अंश वचन मोरो जागे । और वंश जगके पीछे लागे ॥
तिन्हकी छाप चलै संसारा । और वंश जगके कडिहारा ॥
बीस दिना और वर्ण पचीसा । इतना कुलमें चलै सँदीशा ॥
साठि बरण अंशा परमाना । चारवंश तेहि माँहि समाना ॥
नामवंशकी पारस देऊ । तिनसे ब्यालिस वंश कहिदेऊ ॥
तिनसे ब्यालिस वंश कडिहारा । वचन वंश ब्यालीस पसारा ॥
चाल चलै और पन्थ हढावै । भुले जिवन घरघर समुझावै ॥
वंश छत्रपति सिद्ध सुधारी । नाम अंश करे कडिहारी ॥
धर्मदास एक वंशकी हानी । पावे वचन सो वंश समानी ॥
हमरो वचन चुरामनि सारा । वंश अंश ब्यालिस है अधिकारा ॥
सोई वंश जे वचन विचारे । विना वचन नाहिं वंश हमारे ॥

कड़िहार ओ हंस।

वंश अंश बोहित कड़िहारा। सदा हजूरी पलक न न्यारा॥
वैसी चाल हंसकी होई। सदा हजूरी पलक दूरि ना होई॥

वंश अंश हंसप्रमान।

पीढी १।

प्रथम वंश अंशकी बानी। बचन कड़िहार एके प्रमानी॥
दोसो सित्तर हंस तिन्ह तारे। अपने कर सब जीव उबारे॥

पीढी २।

दूसर वंश अंश चलि आवे। पांच कड़िहार निशानी लावे॥
दुसरे वंश अंश अधिकारा। सातसे तेरे जीव उबारा॥

पिढि ३।

तीसर वंश अंश जब होई। नख कड़िहार तालुके सोई॥
हंस सोरासे लोक प्रमाना। १६००। तिन्हके हाथ भुवन बंधाना॥

पीढी ४।

चौथे वंश अंश जाग आवे। भवसागरमो परि कहावे॥
तेरहसो हंस तीनिकड़िहारा।१३०३। तिनके संग उतरि गयोपारा॥

पीढी ५।

तेहि पीछे काल अचरज होई। अंशही वंश विरोधे सोई॥
पांचवें वंश अंश परवाना। सात कड़िहार तिन्हके बन्धाना॥
तीन हजार चारसे सोई। ३४००। इतना हंस लोकको होई॥

पीढी ६।

छठे वंश अंश अधिकारा। ताते काल आनि पैठारा॥
पुनि आवे पुरुषहि सहिदानी। तेरे कड़िहार तिन्हके परवानी॥
छःसे सत्तर सात हजारा। ७६७० वंश अंश संग उतरे पारा॥

पीढी ७ ।

सातवें वंश अंश परवानी । द्वादश ताके कडिहार बखानी ॥
तीनि हजार पांचसै बावन । ३५५२ । इतने हंस पहुँचे मनभावन ॥

पीढी ८ ।

आठवें वंश बचन परकासा । सत्रा कडिहार तिनके रहे बासा ॥
पांच हजार चारिसै बारा । ५४१२ । पहुँचे लोक पुरुष दरबारा ॥

पीढी ९ ।

नौमें वंश अंश जब आवें । पचीस कडिहार संग तब पावें ॥
सात हजार आठसै छतीसा । ७८३६ । प्रगटे वंश अंश जगदीसा ॥

पीढी १० ।

दूसें वंश अंश अधिकारी । बत्तिस कडिहार भेद जग भारी ॥
तीनसै पांच और आठहजारा । ८३०५ । तबहीं पंथ चले असरारा ॥

पीढी ११ ।

ग्यारह वंश तेतीस कडिहारा । नवसै पांच और नव हजारा ॥

पीढी १२ ।

द्वादशवें वंश छतीस कडिहारा । ३६ । दोसै सत्तर सात हजारा ॥

पीढी १३ ।

तेरहा वंश अंशकी बानी । बालसि कडिहार तिनके परमानी॥
सोरा सहस्र चारिसै पन्द्रा । १६४१५ । पहुँचेलोकमिटैयमनिद्रा ॥

पीढी १४ ।

चौदह वंश अंश निर्बाना । बावन कडिहार बोहित परवाना ५२ ।
तीससहस्र और नवसै तेरा । ३०९१३ । सब पंथका न होय निबेरा॥

पीढी १५ ।

पंद्रह वंश अंश चलि आवें । पंथ मेटि आप पंथ चलावें ॥
साठि कडिहार मिलि बोध चलावें । साठि हजार हंस मुक्तावें ॥
चालिस मंडल भयो पसारा । तबहीं पंथ चले असरारा ॥

पीढी १६।

सोरह वंश कला अधिकारी। सत्तर कडिहार शब्द उजियारी ७०॥
चौंसठ हजार पांचसे बारा। ६४५१२। इतने हंस सब उतरे पारा॥

पीढी १७।

सत्रह वंश अंशकी नानी। असी कडिहार तिन्हकी परमानी॥
छिहत्तर सहस्र पांचसे तीसा। ७६५३० धर्मदास कुल आदिसदीसा॥

पीढी १८।

बंश अठारहे नवे कडिहारा। असी हजार हंस ले उतरे पारा॥
८०००० तब कलियुगकी दसी मिटाई। बंशअंश प्रगटे अधिकाई॥

पीढी १९।

उन्निस वंश अंश अधिकारा। एकसे सात तिन्हके कडिहारा॥
छानवे हजार सातसे दोई। ९६७०२। इतने हंस लोकको होई॥

पीढी २०।

बीसो वंश अंशकी बानी। एकसौ तेरह कडिहार बखानी॥
लाख एक औ बीस हजारा। पांचसें हंस ज्योति निर्धारा॥
॥ १२०५००॥

पीढी २१।

वंस एकसो जग चडि आई। एकसौ तीस कडिहार अधिकाई॥
१३० लाख दोय और तीस हजारा। छःसे अंश जो पांच अधिकारा
॥ २३०६०५॥

पीढी २२।

वंश बाईसे होय सो कडिहारा २००। तीनि लाख और चालीस
हजारा। सातसो अंस जो बीस अधिकारा॥ ३४०७२०॥ जाग्रत
वंश करे कडिहारा॥

पीढी २३।

तेइस वंश अंशकी बानी। दोईसे तेरा कडिहारा जो जानी २१३ ॥
तीन लाख ओर तीस हजारा। इतने हंस जो पांच अधिकारा
॥ ३३०००५ ॥

पीढी २४।

चोवीसे वंश अंश जग आवै। तीनसे कडिहार बीसते पावै ॥

पीढी २५।

लाख चारि जो तीस हजारा। चालिसहंस पहुँचे दरबारा ॥ वंश
पचीसे तनिसे छप्पन कडिहारा। लाख पांच हंस भयो पारा ॥

पीढी २६।

छबीसौं वंश चारसो कडिहारा। लाख पांच ओर तीनी हजारा ॥
नवसे सत्तर हंस उबारा ॥ ५०३९७० ॥
इतना मर्म हंसको जानी। सन मंडल अटलै रजधानी ॥

पीढी २७।

सत्तावीस वंश अंश अधिकारी। छःसो हंस करै कडिहारी ॥६००॥
सात लाख छानवें हजारा। सातसे पैसठ हंस निरधारा॥७९६७६५॥

पीढी २८।

वंश अठाविस जाग्रत होई। पांचसौ कडिहार जो पंद्रा सोई ५१५ ॥
लाख चारिजो वीस करोरी। पैंतिस हजार तीन सो कोरी ॥ २००४१
३५३०० ॥

पीढी २९।

उनतिस वंश मंडल उनचासा। सातसे तीस कडिहार प्रकाशा ॥
७३० ॥ तीस करोर लाख है सोरा। साठ हजार सात सौ तेरा ॥
॥ ३०१६६०७१३ ॥

पीढी ३० ।

वंश तीस नौसो कडिहारा ॥ ९०० बयालीस करोड लाख है सत्रा ॥ बारा हजार आठसो सत्रा ॥ ४२१७१२८१७ ॥ इतना हंस कीन्ह पवित्रा ॥

पीढी ३१ ।

एकतिस वंश त्रेपन हजारा । चारिसौ बावन भयो कडिहारा ४५२ ॥ सत्तर करोड और पैंसठ लाखा । सैंतालीस हजार नौसे बावन हंस उबारा ॥ ७०६५४७९५२ ॥

पीढी ३२ ।

बतीसे वंश सतावन हजारा । नौसौ सैंतालिस तिनके काडिहारा । ५७९४७ ॥ एक पदम दोय नील बखानी । छहत्र करोड लाख बाविस जानी । नौहजार सातसे तेरे । इतने हंस पहुँचे निज मेरे । १०२००००७६२२०९७१३ ॥

पीढी ३३ ।

तेंतिस वंश ओनसठि हजारा । छेत्तीस हंस अधिकारी कडिहारा । ५९०३६ ॥ चारी शंख पदम दस सोई । तीस खर्व नील ब्यालिस होई ॥ सित्तर लाख और पचीस हजारा । सातसे हंस चार अधिकारा ॥ ४१०४२३०००००७०२५७०४

पीढी ३४ ।

चौतीसो वंश और बासठि हजारा । सातसों चौपन तिन्हके कडिहारा ॥ ६२७५४ ॥ छत्तिस शंख खर्व उनहत्तर । चारि पदम अर्ब छेहत्तर ॥ बत्तिस करोड लाख नव आवे । ब्यालिस हजार तीनसे आवे ॥ ३६०४००६९७६३२०९४२३०० ॥

पीढी ३५ ।

वंश पैंतिस सत्तर हजारा । पांचसे उनचास तिनके कडिहारा ७०५४९ ॥ पदम असी सात खर्व अर्ब है बारे । छत्तिस

क्रोड लाख है तेरे ॥ बारे हजार नवसे साता। पहुँचे हंस निज इतने साथा ॥ ८००००७१२२६१२१२९०७ ॥

पीढी ३६।

छतीस वंश ओर साठ हजारा। तीनसे चौंसठ तिन्हके कडि-हारा ॥ ६०३६४ ॥ पचहत्तर पदम खरब उनचासा अर्बुद सात करोड पचासा लाख चार तेरा हजार सातसै बावन। इतने हंसपहुँचे मनभावन ॥ ७५००४९०७५००४१३७५२ ॥

पीढी ३७।

सैंतीससे वंश ओर चौसठ हजारा। सातसे पैंतालीस हैं कडि-हारा ॥ ६४७४५ ॥ सत्तर शंख पदम नव होई। छयासी खर्ब नील बावन सोई ॥ नव अर्बुद हैं चौदह करोडी। ग्यारे लाख बारे हजारा नौसे तेरे जोडी। मंडल अठानवें फिरे दोहाई। सत्य थापि असत्य उठाइ ॥ ७००९५२८६०९१४११ १२९१३ ॥

पीढी ३८।

अडतीसो बंश बहत्तर हजारा। छहसे तेरा हंस कडिहारा ॥ ७२६१३ ॥ शंख तीस ओर खरब हैसोरा। नव अर्बुद करोर है तेरा ॥ छप्पन लाख हजार चौवीसा। नवसै बहत्तर पहुँचे हंसा ॥ ३०००००१६०९१३५६२४९७२ ॥

पीढी ३९।

उनतालीस बंस ओर असी हजारा। सातसो तिहत्तर तिनके कडिहारा ॥ ८०७७३ ॥ पांच अशंख शंख पचवीसा। चा-लीस पदम नील एक बीसा ॥ सात खरब अरब है बारे। नव करोड लाख है छयानुं ॥ पच्चवीस हजार सातसौ बानी। बानौ उत्तम जानि बखानी। इतने हंस लोक भल जानी ॥

पीढी ४० ।

चालिस बंश छ्यासी हजार । नवसे बहत्तर तिनके कडिहार
४६९७२ ॥ नव शंख नील हैं बावन । पचहत्तरि खरब
अर्ब दोय भावनं ॥ सात करोड और बत्तिस लाखा ।
त्रेसठ हजार पांचसै तेरा साथा । इतने हंस लोक लै राखा ॥
९००५२७५०२०७३२६३५१३ ॥

पीढी ४१ ।

बयाळीसवें वंश विस्तारा । लाख एक चौसठ हजार
कडिहारा ॥ अगणित हंस लहै को पारा । १६४००० ॥
तीस अंश शंख पंद्रा सोई । आठ नाल नौ खर्ब तहां होई ॥
अर्ब बयालिस तेरा करोडी । ग्यारा लाख सहस्र दशजोरी ॥
इतनो वंश अंश हंसको लेखा । जो पहूँचे सो करै विवेखा ॥
३०१५०००८०९४२१३११९०००० ॥
एते बचन वंश परमाना । सो पावै निज वंशको पाना ॥
चारि गुरुके बाहर राखो । उन्हके प्रमान उनहीसों भाखो ॥

साखी–कहैं कबीर ।

वंश अंश हंसकी निर्णय, और कडिहारी लेख ।
कहैं कबीर धर्मदास सों, तुम हिरदे करो विवेख ॥
लिखते कबीर बानीके कल्सा । धर्मदास पुछेव ।

चौपाई ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । धनि सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
संशय एक मोरे दिल आई । सो समर्थ मोहे कहा समुझाई ॥
इतना आगम ठानि तुम राखा । सो समर्थ तुम आगम भाखा ॥
वंशके संग चलै कडिहारा । सो तुम खोलि कहो बिस्तारा ॥
कडिहार संग जो हंस पियाना । ताका तो तुम्ह कीन्ह बंधाना ॥

तिनमें फेरफार कछु नाहीं। सो समर्थ तुम काहि दिखलाई॥
सबही हंसलोकको जाई। तो काहेको पुनि करै कमाई॥
सब कडिहार जहँ एक ठिकाना। सब हंसनको एकै स्थाना॥
सबही हंसा एक सरीसा। अब गुरुमहिमाँको कौन बिशेषा॥
एक भोम्य एक है स्थाना। सब कडिहार एक करि जाना॥
वचन वंश थापे कडिहारा। सगरे रहे एक दरवारा॥
सबही हंस कडिहारके वोधे। योग युक्ति काहेको सोधे॥
काहेको पहि तन मन वारे। काहेको धन जोवन गारे॥
काहेको चरणामृत लेही। सीथ लियेकी महिमाँ केही॥
सबही हंस हैं एक समाना। काहेको चौका आरति ठाना॥

साखी-धर्मदास।

भलो नाव वाही केलको, जिव सब एक न समान।
जैसी कमाई जीवकी, ताको देवै सोउ स्थान॥

चौपाई सद्गुरु कबीर उवाच।

सुनो धर्मदास यह भेद नियारा। तुमको खोलि कहौं सो निस्तारा॥
सब रजधानी पुरुषहि कीन्हा। कैलक सिखावन पुरुषहि दीन्हा॥
ऐसी शंक जिन पूछो भाई। कवा जीव बिचलिके जाई॥
समुझे हंस बहुत सुख पाई। सर्वज्ञान कालमूल बताई॥
द्वादश पंथ भेद ना पावो। सातों सुरति पुरुष निमोवो॥
सब सरीखे नहिं होय कडिहारा। कैसे रहे एक दरवारा॥
केतिक सातों सुरति घर जैहैं। उन्हके दीपमें वासा लैहैं॥
सोरहे अंश समर्थ बड कीन्हाँ। उन्हको दीप बडे बडे दीन्हाँ॥
कितने रहें उन्हें दीप मँझारा। आपन बोध लिये कडिहारा॥
अवरदीप पुरुषके रहई। उन्हीं दीपमें बासा लहई॥

सहस्र अठासी दीप सुचेरा ८८०८०। तहाँ सब हंसाकरे बसेरा ॥
सब दीपनमाँ शोभा पावें। वहांके गए बहुरि नहिं आवें ॥

गुप्तभेद ।

एक बात है अन्य नियारी। सोइ मैं धर्मनि कहों पुकारी ॥
सकल दीप थे दीप निन्यारा। तहवाँ अमरयको दरबारा ॥
कितने कोटिहार बा परकुं जाई। गुप्त भेद तुम अछय छिपाई ॥

छन्द–तहाँ समर्थ आप बिराज हैं ताका महिमा को लहै ।
दीप उजियारी कहा बरनों बास स्वासा सोरहै ॥
आन दीपके हंस हैं सो वाको जाने नहीं ।
उहाँके बासी हंस सोहला सो और दीप मानें नहीं ॥
सदा हजूरी हंस विहँगम जिन देही उन बिसरा इया ।
गुरु शिष्य दोई एक होइके सो वा दीप सिधाइया ॥

सोरठा–कदली केरे पात, पात पातमें पात है ।
ऐसे बात बातमें बात, जानेगा जन जोहरी ॥

चौपाई–धर्मदास उवाच ।

धर्मदास फिरि शीस नवावा। दोउ कर जोरिके बिनती लावा ॥
सोइ हंस रहे पुरुष हजूरी। उनकी रहनि कहो गुरु थोरी ॥
कैसे रहे वे कैसे बोलें। कैसे बैठे वे कैसे डोलें ॥
कौन ज्ञान कौन है करनी। सो सद्गुरु कहो मोहि बरनी ॥
जगमें रहे कौन सत्य भाऊ। कैसे काया केर सुभाऊ ॥
आन दीप रहे सत्य भाऊ। कहो उन्हकी कायाकेर प्रभाऊ ॥
दोउकी परचे मोहि सुनावो। ज्ञान दृष्टि करि मोहि दिखावो ॥

साखी–यह कछु अचरज बात है, कहि दिखलावो मोहि ।
देखो ज्ञान बिचारिके, तबही हृदय सुख होहि ॥

सद्गुरु कबीर उवाच।

सुनो धर्मदास में कहूँ समुझाई। गुझ भेद जिन बाहर जाई॥
द्वादश पंथ यह भेद न पावै। वेहै दोजकका पंथ चलावै॥
बहुत होइहै अपनो कड़िहारा। सो नहिं जानै भेद हमारा॥
पूरण दया सद्गुरुकी होई। वंश आपुमें लेहि समोई॥
जिन्हें देहि निरअक्षर पहिचानी। सो कड़िहार ले अगमकी बानी॥
सो निज पावे भेद टकसारा। सदा हजूरी पलक नहिं न्यारा॥
देखा देखी करै कड़िहारा। भेद ना पूछे मूढ गँवारा॥
देखा देखी बोध चलावै। फूलि फूलि साखी पदगावै॥
चौके बैठि ना करै निरुवारा। चौका जुगति ना जाने गँवारा॥
पूरुष अंश पुरुषसम होई। अपने दीप लेजावै सोई॥

विहंगमस्तकेहंसवर्णन।

अब तुम सुनो विहंगम बानी। विहंगमतिके हंस पहुँचानी॥
निरअक्षर निस्तत्त्व निवासा। निहंतत्त्व अगम्य है वासा॥
चौका करै बानै वहिवारा। अंश बतीसे सबही प्यारा॥
सब अंशनको प्रमाण करिजानै। अपने अपने स्थान वे जानै॥
सब अंशनकी लाग्य चुकावै। सुरति निरति सद्गुरुसो पावै॥
नौतम सुरति संग सनेही। एको पलक दूर ना रेही॥
ओ कहिये बोहोत कड़िहारा। सदा हजूरी पलक नहिं न्यारा॥
अस कड़िहार ले सारस होही। एक प्राण दोई है देही॥

साखी-जैसी मति कड़िहारकी, तैसी मति हंस होय।
सदा हजूरी पुरुषके, छिन छिन दर्शन जोय॥

चौपाई-धर्मदास उवाच।

सुने सद्गुरु कड़िहार रहानी। सबहि स्थान परे मोहि जानी॥
अब कहिये नूर न हंसका भाऊ। सो समर्थ मोहि बानि सुनाऊ॥

आन दीपमों करै रजधानी। प्रथम भाषौ उनकी सहिदानी ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरी। उन हंसनकी कहो मत पूरी ॥

साखी–जेहि तुम बानी कहत हो, मोहि सुनि होत अनंद।
पूरा सद्गुरु पाइया, मिटे कालके फन्द ॥

चौपाई–सतगुरु कबीर उवाच। आनद्दीपके हंसनके वर्णनकी।

अब सुनियो उन हंसनकी बानी। कुल करनीमें रहै लपटानी ॥
सहजभाष वोह भक्ति करेहीं। झूठ संसार सों रहै सनेही ॥
चौका आरति ज्ञान समाना। दोइ दिशा वह रहै लपटाना ॥
इतनी वंश छाप अधिकाई। धोखे हंस नष्ट नहिं जाई ॥
जिन्हकी जैसी चाल प्रमाना। जो जस पहुँचे जाहि स्थाना ॥
जिन हंसन जैसो सुतन सँवारा। जाहि दीपमें बास बसारा ॥
सब दीपनमें करें आनन्दा। देहि क्रांत उगे रवि चन्दा ॥

विहंगमस्ती हंसके वर्णन।

अब तुम सुनो उन हंसकी बानी। विहंग मताके हंस पहिचानी ॥
जगमें रहै कमल जस भाऊ। तन मन योवन सब बिसराऊ ॥
देहि इहाँ सुरती गुरु चरना। सूझै नहिं सुख जीवन मरना ॥
जैसे सर्प काँचरी जानै। कायाको ऐसे करि मानै ॥
युक्ती युक्ती देह बनावे। जगका सुख नहिं उनको भावे ॥
गुरु शिष्य एकै मत होही। एकै प्राण दोई है देही ॥
सो कडिहार गुह्य नहिं भाई। सोही जानै ताके ताई ॥
सोइ हंस जानौ सब दूरी। जिन्हको कहिये पुरुष हजूरी ॥
नूतन सुरतिहै उनके पासा। सो कडिहार रहत उर दासा ॥
ज्ञान ध्यान सद्गुरु मन प्यारा। सदा हजूर पलक नहिं न्यारा ॥
युक्ती साँझि चरणामृत लेही। युक्तिहि युक्ति बनावे देही ॥
सदा रहै वह पुरुष हजूरा। छिन छिन दर्शपलक नहिं दूरा ॥
चार लाख छानवें हजारा। नवसै बावन निज कडिहारा ॥

इतने कडिहार निज घरै सिधावै। छिन छिन दर्श पुरुषका पावै ॥
इतनेके शिर छत्र धराई। अर्ध सिंहासन बैठक पाई ॥
हंस सुहेल जाइ हजूरी। छयानौं अरब और तेरा करोरी ॥
बावन हजार पाँचसे आवे। इतने हंस शिर चँवर करावे ॥
एक देही एकै है स्थूला। पुरुष हंस एकसम तूला ॥
पुरुष हंस एकसम भाई। सबके शीशपर छत्र तनाई ॥
इतना सुख है पुरुष हजूरा। पहुँचे हंस सद्गुरु मत पूरा ॥
साखी-निःतत्त्व भेद यह गुप्त है, पांच तीनिसे न्यार।
निःतत्त्वी जो हंस हैं, जैहैं पुरुष दरबार ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

साँचे सतगुरुकी बलिहारी। अपना करि जिन लीन्ह उबारी ॥
कठिन काल दारुन बड झांई। याहि संसार लखे ना कोई ॥
बिन सतगुरु कोई भेद ना पावै। सतगुरु मिले तो सन्धि लखावै ॥
साखी-मनका संशय सब मिटा, हम पाया गुरु पूर।
बिना परिचय जो गुरु करे, सो नर मूरख क्रूर ॥

चौपाई।

सुनो धर्मदास हम तुम्हें बखानी। आदि अन्तकी सुधि तुम जानी ॥
सम्वत पन्द्रहसे उनहत्तर आवे। सतगुरु चले उडीसा जावे ॥
जबलगि वंश करै गुरुआई। तब लगि धरनी धरौं न पाई ॥
जब लगि वंश बयालिस संसारा। तब लगि नाहिं आऊँ पिछारा ॥
बचनवंश हम ब्यालिस आखा। जगकी मुक्ति बचनकी शाखा ॥
साखी-तीनलोकके बाहिरे, सात सुरतिके पार।
तहवाँ हंस पहुँचावहूँ, समरथके दरबार ॥
इति ग्रन्थ कबीरवानी।

विवेचन ।

इस ग्रन्थकी एकही प्रति सम्वत् १८४७ की लिखी हुई है इसकी दूसरी प्रति न होनेसे बहुत स्थानोंमें ज्योंका त्यों छोडना पडा है और अशुद्धियाँ रहगयी हैं जब इतने वर्ष पीछेकी लिखी कबीरपंथी ग्रन्थोंकी यह दशा है तब नवीन कबीर पन्थियोंकी लिखी ग्रन्थोंकी क्या गति होगी पाठक स्वयम् विचार करलें ॥

इति ।

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाक नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दया नामकी, वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे।

एकोनविंशस्तरंगः।

कर्मबोध।

कर्म कथा अब कहूँ बखानी। जोन फांस अटके नरप्रानी॥
चारों खानि कर्म अधिकाई। चहूँ खानि मिलि कर्म दृढाई॥
कर्महि धरती पवन अकाशा। कर्महि चन्द्र शूर परकाशा॥
कर्महि ब्रह्मा विष्णु महेशा। कर्महिते भयो गौरिगणेशा॥

सात बार पन्द्रह तिथि साजा। नौग्रह ऊपर कर्म बिराजा॥
कर्महि राम कृष्ण औतारा। कर्महि रावण कंस संहारा॥
कर्महि ले वसुदेव घर आवा। कर्म यशोदा गोद खिलावा॥
कर्महिते वन गऊ चराई। कर्मते गोपी केलि कराई॥
कौशिल्या तप कर्म जो करिया। कारण कर्म राम औतरिया॥
कर्महि दशरथ कीन्ह उदासा। कर्महि राम दीन्ह बनवासा॥
कर्म जाय जब धनुष चढ़ावा। कर्महिं जनक सुता तिरनावा॥
कर्म हरचो सीता कहँ आई। दुख सुख कर्मताहि भुगताई॥
कर्म रेखते कोइ न मुक्ता। लछिमन राम करम फल भुगता॥
कर्म सागर बंधिउ बन्ध कहिया। कर्महि जल जीवन दुख सहिया॥
रुद्र राम कर्म कीन्ह लडाई। भला मिलाप हनूमँत चढाई॥
कर्म रेख नहिं मिटै मिटाई। जीव पपील लङ्का होय आई॥
कर्म रेख लंकापति गयो। लंकापति विभीषण भयो॥
कर्म रेख सबहीं पर छाजा। कहा राम कहा रावण राजा॥
कर्म रेख सबहिन पर होई। देखो इन्द्र बिलोय बिलोई॥
कर्म रेख सागर बँध हीना। बिरला कोई चीन्हे चीन्हा॥

साखी–कर्म रेख सागर बँध्यो, सो योजन मर्याद।
विन अक्षर कोइ ना छूटे, अक्षर अगम अगाध॥

रमैनी।

सागर भव सागर धारा। नहिं कुछ सूझे वार न पारा॥
तहवां बावन अक्षर लेखा। कर्म रेख सबहिन पर देखा॥
कर्म रेख बंधा सब कोई। खानी बानी देखि बिलोई॥
वेद कितेब करमहीं गाया। कर्महिको निःकर्म बताया॥
सद्गुरु मिले तो भेद बतावें। कर्म अकर्म मध्य दिखलावें॥
कर्म अकर्म मध्य है सोई। सो निःकर्म अकर्म न होई॥

अक्षर सागर निर्भय बानी। अक्षर कर्म सबन पर जानी॥
गोरख भरथरि गोपीचन्दा। कर्म फाँस सबही पुनि फन्दा॥
सो ओ सात चौदह एकीसा। ब्रह्मा के चौरासी भेसा॥
कर्म फाँस तहवाँ लग राखा। जहँ लग वेदव्यास कछु भाखा॥
दश ओ द्वादश कर्म बखाना। जिन जाना तिनही पहिचाना॥
कर्म अकर्म भूल जो करई। गहे मूल सो कर्म न परई॥
अक्षर सागर मूल भँडारा। अक्षर मूल भेद उजियारा॥
अक्षर मूल भेद जो जाने। कर्मी होय निःकर्म बखाने॥

साखी--कबीर कर्म डोर चारो युग, सुनो सन्त सब दास।
तत्त्वभेद निस्तत्त्व लहि, जगते रहो उदास॥

रमैनी।

सतयुग तप कीन्हे रघुराजा। कारन कर्म नन्द घर गाजा॥
एक नारि रघुवर कुल पावा। सोलह सहस गोपि निरमावा॥
कारन कर्म केलि भव कीन्हा। कुञ्ज कुञ्ज गोपिन सुख दीन्हा॥
जहँ तहँ गोरस जाय चुरावा। जहँ जहँ कर्म तहाँ ले खावा॥
कर्म कंस ठीका आयो जबहीं। मारन कृष्ण बिचारयो तबहीं॥
कर्मै पूतना भेष बनायो। कर्म पयोधर कृष्ण लगायो॥
कर्म कारण जो तहाँ सिधारा। कारण कर्म पीव विषधारा॥
मारि तासु कीन्हीं गति चारा। कर्म फाँस बोरयो संसारा॥
कर्म इन्द्र बरस्यो दिन साता। कर्म कृष्ण गिरि लीन्यो हाथा॥
कर्महि मारिशिवकंस जो कीन्हा। कर्म फाँस सबही आधीना॥
कुब्जा कछु कर्म जो कीन्हा। कारन कर्म कृष्णगति दीन्हा॥
कर्म पताल कालेश्वर नाथा। साँवर अङ्ग भयो तेहि साथा॥
यज्ञ अश्वमेध करत बलिराजा। कर्मते जाय पताल बिराजा॥
कर्महि वामन रूप बनाया। बलिराजापै दान दिवाया॥

कर्म अहूठ नापि पग लीन्हा। तीनै पग तीनों पुर कीन्हा ॥
आधा पाँव कर्म अधिकारी। बाँधि नृपति पातालहिं डारी ॥
जहँ लगि जीव जन्तु उत्पानी। तहँ लगि कर्म राय परवानी ॥
कर्म फाँसते कोइ न छूटे। कर्म फाँस सबहिन घर लूटे ॥

साखी–कर्म फाँस छूटे नहीं, केतो करो उपाय।
सद्गुरु मिले तो ऊबरै, नहिं तो परलय जाय ॥

रमैनी।

जो कुछ कर्म जगतमें करई। करि करि कर्म बहुरि भव परई ॥
एक न होय यज्ञ व्रत ठाना। एक न पाप पुण्य पहँचाना ॥
एक कर्म कुल लीन्ह उठाई। कर्म अकर्म न जानै भाई ॥
एक छापा और तिलक बनावै। पहिरि मेखला साधु कहावै ॥
वैष्णव होय करै षट कर्मा। वेद विचार सदा शुचि धर्मा ॥
कथा पुराण सुनै चित्तलाई। कर्महिं सुमिरै बहुविधि भाई ॥
विष्णु सुमिरि तप बहु विधि कियो। सो निःकर्म्म विष्णु नहिं भयो ॥
कर्मकी डोरि बँधा संसारा। क्यों छूटे उतरे भवपारा ॥
एक अभंग एकादशि करई। तन छूटे वैकुण्ठहि तरई ॥
यह वैकुण्ठ न स्थिर होई। अन्त कर्मगति परलय सोई ॥
करै कर्म वैकुण्ठहि जाई। कर्म घटे भव जल फिरि आई ॥
योगी योग कर्म्म को साधे। किरिया कर्म यवन आराधे ॥
योगी कर्म पवन की किरिया। भुगतै कर्म्म देह पुनि धरिया ॥
संन्यासी जो बन बन फिरहीं। होय निःकर्म कर्म फिर परहीं ॥
जीयत दग्ध देहको करई। जटा बढाय व्यसन परिहरई ॥
कोई नग्न कोई वस्त्र कछोटा। भरमत फिरै सहै पग ढोटा ॥
राजद्वार पावै अवतारा। भुगतै कर्म अकर्म व्यवहारा ॥
पण्डित जन सब कर्म बखानी। नख शिख कर्म फाँस अरुझानी ॥

कर्म धर्मकी युक्ति बतावै। दान पुण्य बहुविधि अरथावै॥
वज्र दानल जन्म गँवावै। होइ ऊँट बहु भार लदावै॥
एक जो करे बरत अवतारा। होइहै सूकर श्वान सियारा॥
सूकर श्वान हो कर्म जो भुगता। विन निःकर्म न होइ हैं मुकता॥

साखी।

कबीर–बहु बन्धनसे बाँधिया, एक विचारा जीव।
जीव बेचारा क्या करे, जो न छुडावै पीव॥

रमैनी।

शब्द भेद निःशब्द बताओं। करि निःकर्म हंस मुकताओं॥
निरालम्ब अवलम्ब न जानै। शब्द निरन्तर भेद बखानै॥
पाप पुण्यकी छोडे आशा। कर्म धर्मते रहे उदासा॥
रहे उदास नाम लौ लाई। तत्त्वभेद निस्तत्त्व समाई॥
तीरथ व्रतके निकट न जाई। भरम भूतको दई बहाई॥
सुख सम्पति नहिं विपति विचारे। काम क्रोध तृष्णा परचारे॥
क्रिया कर्म आचार विसारे। होय निःकर्म कर्म निरबारे॥
सो ग्रहे जो निग्रह काया। अभिअन्तर की मेटे माया॥
शील स्वभाव शरीर बसावे। अन्तर स्थिर ध्यान लगावे॥
ब्रह्म अग्नि मनमें परजाले। ताको विष्णु चरन पखाले॥
गहे तत्त्व निस्तत्त्व विचारा। काम क्रोधको करे अहारा॥
सहज योग सो योगी करई। कर्म योग कबहूँ नहिं परई॥
धन योवनकी करे न आशा। कामिनि कनकसे रहे उदासा॥
चहूँ दिशि मंसा पवन ककोले। ज्ञान लहर अभ्यन्तर डोले॥
उनमुनि रहे भेद नहिं कहई। तत्त्वभेद निस्तत्वहि लहई॥
जो कोइ आय अग्नि होय दहई। आप नीर होय नीचा बहई॥
मन गयन्द गुरुमतते मारा। गुरु गम लूटे ज्ञान भँडारा॥

शूरा होय सो सम्मुख जूझे। भोंदू शब्द भेद नहिं बूझे॥
दुखिया होय रैन दिन रोई। भोगी भोग करे सुख सोई॥
दुख सुख भोग सोगसम जाने। भली बुरी कछु मन नहिं आने॥
भली बुरीका करे सो त्यागा। निश्चय पावै वह वैरागा॥
सींगी अक्षय रैन दिन बाजै। सिद्ध साधु तहँ आसन छाजै॥

साखी–आसन साधे आपमें, आपा डारै खोय।
कहैं कबीर सो योगी, सहजै निर्मल होय॥

काल पुरुषने जब सृष्टिकी उत्पत्ति की तब कर्मका जाल बनाया। ये कर्म दो प्रकारके हैं। एक शुभ दूसरा अशुभ। ये दोनों कर्म बड़ी बेड़ी हैं। इन दोनों कर्मोंकी बेड़ीने समस्त सृष्टिको बाँध लिया। जो कोई शुभ कर्म करता है सो सांसारिक धन स्वर्ग वैकुण्ठ इत्यादि सब सुखकी सामग्री पाता है और उस पुण्यका अन्तिम फल चार प्रकारकी मुक्ति है। इससे अधिक नहीं। सो सब बनावटी है। ऋषीश्वरोंने कठिन तपस्या की और योग समाधि तथा पूजादिको उच्च श्रेणी पर पहुँचाया तासे स्वामी बन गये तो भी उनका बन्धन न छूटा और आवागमनमें फँसे रहे। काल पुरुषने समस्त वेद और किताबवालोंको इन्हीं दोनों कर्मोंमें बाँध लिया। इस कर्मके तीन भेद हुये। कर्म–अकर्म–विकर्म कर्म। तो मनुष्यको करना उचित है अकर्मसे दूर भागना और विकर्मसे मनुष्य अपनेको मुक्त और भाग्यवान् बनाता है। जो शास्त्रानुसार कर्म ईश्वर निमित्त किया जाता है, वह विधि है दूसरा अकर्म जिससे लोक परलोकमें कहीं सुखकी प्राप्ति नहीं होती है, उसे शास्त्रमें निषेध कहते हैं, यह अकर्म ईश्वरके विरुद्ध है। विकर्म उसको कहते हैं जिसके करनेसे कर्मसे छूटे और बन्धनकी पाश टूटे और ज्ञान लाभ हो पहिले स्वर्ग आदिककी लालच

दिखाकर कर्म करवाते हैं। इसके उपरान्त स्वर्ग इत्यादि सुख सबका त्याग है। जिस प्रकार पिता रोगी लड़केको लड्डू दिखाकर औषध देता है उसी प्रकार स्वर्ग तथा वैकुण्ठादिकी लालच मनुष्योंको दिखाई गयी है। फिर भी एक कर्म तीन नामोंसे प्रख्यात हुआ सञ्चित-प्रारब्ध-क्रियमाण। सञ्चित उस कर्मको कहते हैं जो रक्षापूर्वक रखा हुआ हो-अर्थात् सहस्रों जन्मसे बराबर उसके साथ लगा चला आता है। ऋण अदा करनेका समय नहीं मिला और वह ऋण माथे चढ़ा रहा। दूसरा प्रारब्ध कर्म वह है जिसे भाग्य कहते हैं। इसी प्रारब्ध कर्मके अनुसार मानुषिक शरीर प्रस्तुत हुआ है। अर्थात् अपने पूर्व कर्मानुसार शरीर बनाहै। जब यह जीव अपने पूर्व शरीरको छोड़ता है तब अहम् बोलता है। अहमका अर्थ मैं हूँ। अहम् बोलकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करताहै। चारों खानिके जीवोंकी यही रीति है। जैसे एक प्रकारका कीड़ा होता है। जो वृक्षोंके पत्तों पर रहता है जब वह एक पत्तेको छोड़कर दूसरे पर जाया चाहता है। तब पहले वह अपने अगले पैरोंको पत्तेपर जमा लेता है। जब उसके अगले पैर दूसरे पत्ते पर भली प्रकार जम जाते हैं तब वह अपने पिछले पैरोंको भी खींचकर दूसरे पत्तेपर जमा लेता है और अगले पत्ते पर भली प्रकार जमकर बैठ जाता है। पिछले पत्तेसे संबन्ध छोड़ देता है। इसी प्रकार सदैवही इस (जीव) का आवागमन हुआ करता है। ब्रह्मासे लेकर सर्व जीवोंमें अहङ्कार भरा हुआ है। जिसमें अहङ्कार नहीं उसका आवागमन नहीं। अहम् बोलनेसे उसके आवागमनका संबन्ध बराबर जारी रहता है यह ब्रह्मा जो पहले अहम् बोला वही ब्रह्म अनन्त स्वरूप और स्वभावोंमें-चारों खानमें समारहा है। अहम् कर्मोंका आकर्षण है।

जो एक योनिसे खींचकर दूसरीमें डाल देताहै। जैसे चुम्बक लोहेको खींच लेता है।

तीसरा क्रियमाण कर्म वह है जो अब कर रहेहैं। यदि यह क्रियमाण कर्म बलवान् होकर शुभ वा अशुभकी ओर झुका तो वह अपना रंग ढंग दिखला देता है। यदि वह सुकर्मकी ओर झुक जावे और सुकर्मकी पूर्णता करले तो वह अपने स्वरूपको प्राप्त करा देता है। यदि अशुभकी ओर झुका तो जड योनिमें जा समाता है और नरकके समस्त दुःखों तथा अत्यन्त कष्टोंमें अपनेको डालकर कंकड पत्थरकी तरह बेकाम कर देता है फिर उसको सुपथ नहीं मिलता। महाकर्ता–महाभोगी महात्यागी। महाकर्ता उसको कहते हैं कि, जो कर्म करता है और अपनेको कर्ता नहीं मानता।

महाभोगी उसको कहते हैं कि जो सर्व भोग भोगता है और अपनेको भोगता नहीं मानता।

महात्यागी उसको कहते हैं जो अहंकारको त्याग दे। इस त्याग-का गुण तब जाना जाता है जब उसको अन्तर दृष्टि होती है। जबलों इन तीनों बातोंका गुण भली प्रकार जाना न जावे तबलों वेद और पुस्तक पाठसे कोई लाभ नहीं होगा अन्तर दृष्टिसे जाना जाता है कि, यह तीनों क्या बात है।

महाकर्ता तो यह तब होता है कि जब यह अन्तर दृष्टिसे भली भाँति देखताहै कि मैं कुछ करही नहीं सकता और मैं किसी कार्यका कर्ता नहीं हूँ केवल मैं अपनी मूर्खता वश आपको अपने कार्यका कर्ता समझ रहा हूँ। मैं और यह समस्त संसार कलके सदृश चल रहा है। मेरा और किसीका कोई वशही नहीं कि कोई काम करे। न मालूम वह कौन है जो मुझको तथा समस्त संसारको

चला रहा है। जब मैं कुछ करताही नहीं और न मेरा किया कुछ हो सकता है। ऐसी अवस्थामें यह अपनेको कर्मोंका कर्त्ता नहीं मानता जब यह अपनी अन्तर दृष्टिसे भली प्रकार देख लेता है तब फिर यह अन्याय्य और ध्यान नहीं देता और जानता है कि जब मैं किसी कार्यका कर्ता ही नहीं तो मैं व्यर्थही अपनेको कर्ता क्यों ठहराऊँ। तब यह इस अज्ञानताले पृथक् होता है। संसारी इसी अज्ञानतामें फँसा रहता है और आपको अपने कर्मका कर्त्ता समझकर दुःख सुखमें धक्के खाता है। मैं क्यों अहम् बोलता हूँ नहीं जाने मुझे कौन अहम् बोलाता है और कौन बोलता है। अतः इससे जाना गया और प्रमाणित हुआ कि मुझको मेरे कार्योंके बन्धन अहम् बोलाते हैं और दूसरा कोई नहीं। जब मैं अपने कर्मोंके बन्धनसे छूट जाऊँगा तब मेरा अहम् बोलनाभी छूट जावेगा। जबलों यह आपको कार्यका करनेवाला मानता है तबतक यह क्रियायें आपकी स्वतन्त्र समझता है। जब यह अन्तर दृष्टिसे भली भांति निबाह कर लेता है कि, मैं अपने कर्मोंका कर्ता नहीं तब अपने शुभ अशुभ कामोंको परमेश्वरको सौंपके और उसके शरणमें होकर उससे सहायता मांगता है और जान लेता है कि; मेरे कार्य मुझको बचाने योग्य नहीं। मैं सत्यगुरुकी शरण लूँ, इसके अतिरिक्त और छुटकारेका कोई उपाय नहीं है। अपनी अज्ञानताके कारण मैं अपने कार्योंका करता आपको जानता था परन्तु आगे अब ऐसा कदापि न करूँगा॥

यदि यह स्वतंत्र होता तो सब कुछ करलेता। फिर अपनेको दीनता तथा दुर्दशामें कदापि नहीं फँसाता॥

एक दिनका वृत्तांत है कि, एक पादरी साहब आकर मेरे पास बैठे और वाद विवाद पर प्रस्तुत हुए। उनने कहा कि,

मनुष्य अपने कार्यों में स्वतंत्र हैं। इसपर मैंने उत्तर दिया कि यह बात कदापि नहीं कर्म स्वतंत्रता किसीको प्राप्त नहीं। सब कलके समान गतिमान् हैं। सुतरां तौरीतमें उत्पत्तिकी पुस्तक देखो जब आदम उत्पन्न हुआ। खुदाने उसको मना किया कि तू यह कार्य कदापि न करना और इस वृक्षके फलको न खाना आदमने न माना और खाया-जिससे वह दुर्दशा ग्रस्त हुआ।

यदि आदम कर्म करनेमें स्वतंत्र होता तो ऐसा कदापि न होता। फिर आदमके पुत्र काबील और हाबील हुए वेभी ऐसेही थे। कारण यह कि, दोनोंने एक दिवस परमेश्वरके समक्ष भेंट चढ़ाई। छोटे भाईकी भेंट तो स्वीकृत हुई और काबीलकी अस्वीकृत हुई इस कारण काबील अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तब परमेश्वरने कहा कि ऐ काबील! तू काहेको क्रोध करता है यदि तू अच्छे मनसे देता तो क्या तेरी भेंट स्वीकार न की जाती? परंतु तू अपने भाईपर जय पावेगा। काबीलने अपने भाईपर जय पाई और उसको मार डाला। जब परमेश्वरने उसको पूछा कि तेरा भाई हाबील कहां है? तब उसने उत्तर दिया कि मैं नहीं जानता क्या मैं अपने भाईका रखवाला हूँ। इस पर खुदाने उत्तर दिया कि तेरे भाईका खून मुझे पुकारता है। अब तू हत्यारा तथा दोषी हुआ यह कहकर खुदाने उसको शाप दिया। भलाजी! यह न्यायकी बात थी कि खुदाने तो स्वयम् कहा कि तू अपने भाई पर जय पावेगा। उससे जय पाई और उसको मार डाला। फिर वह दोषी कैसे ठहरा यदि अपने भाईको न मारता तो खुदा झूठा होता और मारा तो दोषी हुआ और हजूरसे दूर किया गया वह तथा उसकी सन्तान पापिष्ठी ठहरी।

ऐसाही नूहके विषयमें जानना चाहिये कि नूह सिखाते सिखाते विवश होगया किसीने उसका कहना न माना। अन्तको बाढ आई और समस्त मनुष्य डूब मरे । कोई जीव सिवा उनके कि, जो नूहकी नावपर था नहीं बचा फिर नूहकी शिक्षा तथा खुदाकी चौकसी किस काम आयी। वहभी कर्ममें स्वतन्त्र न ठहरा। जब बाढसे सबको सत्यानाश कर चुका और नूहकी ओर खुदाने ध्यान दिया तब खेद करने और पछताने लगा कि मैंने सबको बाढसे क्यों नष्ट किया। कारण यह कि मनुष्योंके ध्यान तो बचपनसेही बुरे हैं सब भविष्यमें मैं बाढसे लोगोंको न मिटाऊँगा। इससे प्रमाणित हुआ कि इस खुदाको भी स्वतन्त्रकार्याधिकार प्राप्त नहीं। यदि ऐसा होता तो जब वह आदमका पुतला बनाने लगा तब फिरिश्तोंने मना किया कि आदमका पुतला न बनाओ वे पाप करेंगे। फिर पृथिवी रोई और कहा कि मुझसे मिट्टी मत लो और मनुष्यका पुतला न बनाओ, मनुष्य बडा पाप करेंगे। पर खुदा साहबने किसीका कहना न माना। अपनी इच्छासे मनुष्यका पुतला बनाया। आगे मनुष्योंके पापोंसे रुष्ट होकर बाढ लाकर पछताया। आगे फिर मैं कैसे कहूँ कि खुदा साहबको कार्य स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

हजरत नूहके उपरान्त हजरत इबराहीम अच्छे और पवित्र खुदाके पैगम्बर हुये। वे भी स्वतन्त्र नहीं थे। कारण यह कि उनकी शिक्षासे नमरूद बादशाह इत्यादि सभी विरुद्ध होगये।

इबराहीमके उपरान्त इसहाकको पैगम्बरी मिली और इस हाककी स्त्री रबका जब गर्भवती हुई, उसके पेटमें दो बालक थे और वे दोनों पेटके भीतर परस्पर लड़ते थे-तब रबकाने खुदाके निकट जाकर निवेदन किया कि, मेरे पेटके दोनों लड़के आपसमें क्यों

फिसाद करते हैं तब खुदाने कहा कि, बडा छोटेकी सेवा करके बडाई पावेगा। फिर इसहाकने ज्येष्ठ पुत्र ईसुको बरकत देनी चाही पर उस बरकतको छोटा पुत्र याकूब ले गया। इसहाककी युक्तिने काम नहीं दिया।

देखो मूसाकी पहली पुस्तक २५ बाबका २१--२२--२३आयत।

इसके उपरान्त हजरत मूसा थे वह भी अपने कार्य्यमें स्वतन्त्र नहीं थे। कारण यह कि परमेश्वरने मूसाको मिश्रमें फिऊनको सिखलानेके लिये भेजा और यह भी कह दिया था कि फिऊनके मनको मैं कडा करूँगा। यह तेरा कहना न मानेगा। मूसाकी शिक्षा किसी काम न आयी।

मूसाके उपरान्त हजरत ईसाने खुदासे बहुत प्रार्थना की कि, मैं सलीबसे बच जाऊं पर नहीं बचे।

इसके उपरान्त मुहम्मद मुस्तफाने बहुत कुछ बल लगाया और रक्तपात किया तो भी सबको मुसलमान कर नहीं सके। यह बात सब कहकर और दिखाकर फिर मैंने पादरी साहबसे कहा कि इन महाशयोंमें तो कोई स्वतन्त्र नहीं ठहरा। कदाचित् आपके नाम अब खुदाई परवाना कार्य स्वतन्त्रताका उत्तर पडा हो तो क्या आश्चर्य्य है। मेरी बातें सुनकर पादरी महाशय चुप हो रहे और फेर मुख्तारीका दावा छोड दिया।

केवल कबीर साहबकोही स्वतन्त्रता है दूसरेको नहीं। कारण यह कि, जब वे मनसे जिसको छुटकारा दिलाया चाहते हैं उसको अवश्य छुडाही लेते हैं और जो कुछ करना चाहते हैं करही लेते हैं। उनका रोकनेवाला दूसरा कोई नहीं।

जैसा कुछ कार्य यह मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें करता है, वैसाही कार्य स्वप्नावस्थामें किया करता है। परन्तु स्वप्ना-

वस्थाके कर्मोको कोई नहीं कहता कि मैंने किया। यद्यपि जाग्रत अवस्थाके कर्मोका कर्ता यह स्वयम् बनता है कि यह कर्म मेरे हैं, यद्यपि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था दोनों समान हैं। केवल इतनीही विभिन्नता है कि, जाग्रत देरतो उसके साथ रहती है और स्वप्न थोडी देरमें बीत जाता है। यदि स्वप्नके कर्म उसके नहीं तो जाग्रतके कर्म भी उसके नहीं इस कारण आपको स्वकर्ममें स्वतंत्र समझना अज्ञानता है। यह स्वतन्त्र कदापि नहीं। ज्ञानकी दृष्टिसे यह अहंकार जाता रहता है। इस जीवकी चारों दशा स्वप्नके समान हैं।

दूसरे महाभोगी वह है कि जो समस्त भोगोंको भोगता है और आपको भोगनेवाला नहीं मानता। यहभी बिना अन्तर प्रकाशके जाना नहीं जा सकता कि, भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ। यदि मैं भोगनेवाला होता तो मैं जो चाहता सो भोग भोग लेता और भोगोंसे कभी न भागता। कोई भोग ऐसा नहीं है कि जो भोग भोगते भोगते भाग न जाय- और थक न जाय। जो अपनेको भोगोंसे अलग जानता है उसके सामने अच्छा और बुरा समस्त भोग समान हैं। कारण यह कि जब रानी द्रौपदीने स्वयच दुदुर्वासाके सामने भांति भांतिके स्वादिष्ट भोजनोंके थाल धरे तब उन्होंने सब खट्टा मीठा और नमकीन एकमें मिलाकर खाना आरम्भ किया। कारण यह कि, उनको स्वादोंकी कामना नहीं थी। एक साधुको एक मनुष्यने कडुई तुम्बेकी तरकारी बनाकर खिला दिया। वह कडुइ तरकारी बिना कुछ कहे सुने साधू खा गया जब पीछे गृहस्वामी खाने लगा तब उसको वह तरकारी विष सम मालूम हुई। वह अपनी स्त्रीको डाटने लगा कि, तूने यह विष समान तरकारी साधुको खिलादी साधुको कितना दुःख हुआ होगा।

उसके मनमें बड़ा भय समाया और वह साधुके पास जाकर उससे क्षमा प्रार्थना करने लगा।

एक साधुको एक गृहस्थने खीर खिलाई और चीनीके बदले भूलसे नमक डाल दिया। कारण यह कि, वह नमक चीनीके सदृश था। वह साधु बिना कुछ कहे खा गया उसके भीतर जब नमककी आग लगी तब उस गृहस्थके घरमें आग लगी जब घरमें देखने लगे तब जान पड़ा कि, साधुको चीनीके भ्रमसे नमक दे दिया गया। लोगोंने कहा कि, उस साधुके हृदयमें ठण्डक आवे तब घरकी आग भी बुझे यहीमें कोई सरदार था उसके पास एक वैष्णव साधु आ गया और उसने नहा धोकर ठाकुरजीकी पूजा की। उस समय उस सरदारने दूध और चीनी साधुके निमित्त मँगवा दी उस वैष्णवने ठाकुरको भोग लगाया। इसके उपरान्त जब आप वह दूध पीने लगा तब उस सरदारको याद आया कि, जहां चीनी थी वहां घोड़ेकी दवाईके लिये संखिया भी पीसा धरा था। ऐसा न हो कि साधुको संखिया दिया गया हो ढोंढके देखा तो संखिया दिया गया था। उस सरदारने पुकारके कहा महाराज! यह दूध मत पीओ इसमें संखिया पड़ गया है। तब उस वैष्णवने कहा कि अब तो यह संखिया ठाकुरके भोग लगाया जा चुका है मेरे ठाकुर संखिया पीवें और मैं चीनी पीऊँ? वह वैष्णव वह दूध तथा संखिया सब कुछ पी गया और चंगा रहा। संखियाने उसको किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचाई। उसके भीतर भोगता विष्णु था। विष्णु उसको देखता था और वह विष्णुको देखता था। आप उस भागसे अलग रहा।

तीसरे महात्यागी–तब होता है जब देहके अभिमानको छोड़े जबतक देहका अभिमान न छूटे तबतों त्यागी नहीं। अभिमानही

करके यह देह मिलती है और इसीसे स्थित हो रही है । सहस्रों त्यागी हो गय परन्तु देहका अभिमान न छोडनेसे बंधनमें रहे। बाहरस तो उन्होंने सब छोड दिया पर भीतरसे छोड नहीं सके। औ न देह अभिमान छूटा । देहका अभिमान छूटा तब जाने कि, अब किसी प्रकारकी आपत्ति तथा साहसकी घटना संघटित हो तब स्थिरता न छूटे और न किसी प्रकारकी घबडाहट हो । सुतरां ऋषिमुनिगण उजाड तथा वनमें वसते हैं । उनको वहां प्रत्येक प्रकारकी आपत्तियाँ आघेरती हैं । शेर, साँप, भेडिये, रीछ और कानखजूरे इत्यादिक नानाप्रकारकी आपत्तियाँ दिखाई देती हैं । इस स्थानपर साधु अपने मनको बहुतही दृढ रखते हैं । कोई हिंसक जीव फाडकर खाजावे तनिक भी न समझते कि यह मेरी देह है सम सपस्वियोंकी ऐसीही अवस्था होती है । जब भीतरी अथवा बाहरी उनको अपने शरीरकी ओर ध्यान हुआ तब उनका त्याग कुछ नहीं सुतरां सर्व त्यागियोंमें बडे त्यागी शुकदेवजी थे कि, मायाके भयसे बारह बर्ष पर्य्यंत माताके गर्भमें थे । जब बाहर निकले तब उनको त्याग और वैराग्य रहा । उनका हाल बहुत प्रसिद्ध है जब राजाजनकके समीप गये तब उन्होंने एक कौतुक दिखाया कि, उनके समस्त नगरमें आग लगी और सब कुछ जलने लगा । राजा जनक निर्भय बैठे रहे और शुकदेवजी अपनी तूँबी लँगोटी लेनेको दौडे । तब राजाने कहा कि, बेठ किधर जाता है तू तो आपको बडा त्यागी समझता है अब लँगोटी और तूँबी लेने दौडा । मेरे राज्यका समस्त सामान जल रहा है और मैं तनिक भी अधीर नहीं हुआ । तू कैसा त्यागी है । तुझे तो लँगोटी और तूँबी की चिन्ता लगी है जिसको तूंबी लंगोटीकी चिन्ता नहीं छूटी उसको देहका अभिमान कैसे छूट जावे । अतः जबतों देहका अभिमान न छूटे तबतों महात्यागी कैसे हुआ यह सब

प्रशंसा तथा गुण कबीर साहबहीके हैं और दूसरेके नहा बनारसमें कैसे २ कष्ट मिले परन्तु उनका तनिकभी ध्यान नहीं किया और न मनमें कुछ कष्ट माना महात्याग इसीका नाम है। सहस्रों साधु सन्तने अपनेको ईश्वरमें लीन करदिया तो भी देहका अभिमान और वासना उनके मनमें रहा इस कारण उनका भगवतमें लीन होना भी काम न आया। जो लोग सत्यगुरुको पहँचान कर भगवतमें लीन होते हैं वे धन्य हैं। उन्हींका भगवतमें लीन होना सफल है।

वेद तीन भागोंमें विभक्त हुआ—कर्म—उपासना—ज्ञान। कर्मोंमें दो भाग हुये। एक तो यज्ञ इत्यादि जो सांसारिक अर्थोंके निमित्त करते हैं। दूसरा योग जो अपनी मुक्तिके निमित्त करते हैं। इन कर्मों द्वारा सांसारिक तथा पारलौकिक अभिप्राय सिद्ध होते हैं। जिसके जैसे पाप पुण्य होते हैं। वैसीही अवस्थामें वे जाते हैं और वैसाही उनको भोग मिलता है॥

दूसरी उपासना है। सांसारिकलोग उपासना करते हैं और उपासनाके निमित्त विष्णु, राम, कृष्ण, शिव, चण्डी, सूर्य्य और गणेश आदि देवते ठहराये हैं।

तीसरा ज्ञान, इसके सात भूमिका हैं और यह सब स्वप्नवत् हैं इन समस्त युक्तियों द्वारा किसीका छुटकारा नहीं होसकता इनमें पारखपदकी कुछ सुधि नहीं। अतः यह समस्त कर्म-काण्डी और ज्ञानी अपनी अपनी सीमाको पहुँच जाते हैं। तो भी उनको छुटकारेकी राह नहीं मिलती। बिना पारख गुरुके अन्धोंकी तरह टटोलते फिरते हैं। परन्तु राह नहीं पाते क्या युक्ति करें कोई तदबीर नहीं सूझती. तब विवश होकर बैठे रहते हैं। जो जो तदबीरें वेदने बताई उनसे तो कुछ काम न

हुआ और अब दूसरा उपाय कहाँ पावें, क्या करें। जो कुछ ज्ञान मिला उसी पर सन्तोष कर बैठे, आगे कोई पथ वेदों तथा पुस्तकों द्वारा नहीं मिला किसे पूछें और किसके घर जावें।

मीमांसक और जैन कर्महीको मुक्ति मार्ग समझते हैं। परंतु यह नहीं जानते कि, यह कर्म कहाँसे उत्पन्न हुआ है और कहां तक पहुँचा सकता है। यह विधि निषेध दोनों शाखा निरञ्जन निर्मत हैं। वहां ही तक पहुँचानेका सामर्थ्य रखते हैं। इन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा नरक सब कुछ प्राप्त होता है। जहाँतों कर्मोंकी पहुँच है वहाँलों कालपुरुष हस्तक्षेप करता है। कर्मका सुविशाल वन है उसमें यह जीव भूलकर अपने घरसे बाहर हो गया है यह वनहिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ है और सूर्य्य चन्द्र सितारे इत्यादि तनिक भी दिखाई नहीं देते। न कोई सडक और न पगडण्डी है। जो पगडण्डी कहीं है सो पशुओंकी है मनुष्यकी नहीं। इस कारण इन कर्मोके वनसे कोई बाहर हो नहीं सकता। कर्म करता है और फिर फिर कर्म करनेके लिये वारम्बार देह धारण करता है। इसको कुछ पता नहीं लगता कि वह कौन कर्म है जिससे मेरे कर्मका बन्धन कटे। वह कर्म जिससे इसका बन्धन कूटे केवल स्वसंवेदकी शिक्षा है उससे तो यह जीव अज्ञान है। इन्हीं कर्मोंकरके समस्त योनि ठहराई गई हैं। जैनी जिनका समस्त ध्यान कर्मों पर है वे आठ प्रकारके कर्मकहते हैं, वे ये हैंः-

१-ज्ञानावर्णी कर्म। २-दर्शनावर्णी कर्म। ३-वेदनी कर्म। ४-मोहिनी कर्म। ५-नाम कर्म। ६-आयु कर्म। ७-गोत कर्म। ८-अन्तराय कर्म।

अब इन आठों कर्मोका सुविस्तृत विवरण सुनो। आवरणं नाम ढकनका है। १ ज्ञानावर्णी कर्म अर्थात ज्ञानका ढाकनेवाला कर्म इसके कारण ज्ञान नहीं होने पाता यह ज्ञानके ऊपर परदा डाल देता है। इसके कारण ज्ञान जो उत्पन्न होने नहीं पाता सो ज्ञान पांच प्रकारका है।

१–मति ज्ञान। २–श्रुतिज्ञान। ३–अवधिज्ञान। ४–मनपरजय ज्ञान। ५–केवल ज्ञान।

मति ज्ञान। मति नाम बुद्धिका है। अर्थात् वह ज्ञान जो बुद्धि तथा सोचसे सम्बन्ध रखता है इस मति ज्ञानमें समस्त संसारकी हुनर तथा कारीगरियां संयुक्त हैं। जिसको मतिज्ञान होता है वह कारीगरी और शिल्पकारीमें बडा चैतन्य रहता है जिस किसीको मतिज्ञान आवर्णी कर्म उगता है–उसका गुणोंका पाण्डित्य प्राप्त नहीं होता।

दूसरा श्रुति ज्ञान है श्रुतिज्ञान समस्त शास्त्रोंके कण्ठस्थ करनेको कहते हैं कुछ कागज तथा ग्रन्थ इत्यादि देखनेकी आवश्यकता न हो सब बातें हृदयमें रहें। शास्त्रद्वारा तीनों कालोंकी बातोंको जानता हो उसको श्रुति केवली अथवा श्रुति ज्ञानी कहते हैं। इस श्रुति ज्ञानको जो कर्म रोकले और न होनेदे उसका श्रुति ज्ञान-आवर्णी कर्म नाम है।

तीसरा अवधि ज्ञान है। अवधि ज्ञान उसको कहते हैं जिसके द्वारा लोग मनुष्योंके मनकी बातको जान लेते हैं। समस्त गुप्त बातोंको बतलाते हैं और अन्तर्यामी कहलाते हैं जो कर्म इस अवधि ज्ञान पर परदा डाले और होने न दे उसको अवधि ज्ञानावर्णी कहते हैं।

चौथा मन प्रजय ज्ञान है। मन प्रजय ज्ञान उसको कहते हैं कि जो हृदयकी गतिको जाने। अर्थात् जहां हृदय दौडे वह सब कुछ मालूम करले हृदयकी समस्त चाल तथा स्थिरताको बूझले जो कोई

इस प्रकारकी विद्या रखता हो उसको मन प्रजय ज्ञानी जानते हैं । मन प्रजय ज्ञानमें यह गुण है कि, जब जिसको यह ज्ञान उत्पन्न हो जाता है फिर कभी नहीं जाता । मनप्रजय ज्ञानी अवश्यही केवल ज्ञानका अधिकारी हो जाता है पूर्वके तीन ज्ञानोंमें तो संदेह रहता है क्योंकि वे होते हैं और जाते भी रहते हैं परन्तु मन प्रजयको स्थिरता तथा स्थिति है मन प्रजय ज्ञान अवधि ज्ञानसे बहुत बढके है । जो कर्म इस मन प्रजय ज्ञानको छिपा लेता है और नहीं होने देता उसको मन प्रजय आवर्णी कर्म कहते हैं ।

पांचवां केवल ज्ञान है । यह सबसे बडकर है । यह समस्त ज्ञानोंका राजा है जैनी ऐसा मानते हैं कि इस केवल ज्ञानसे कोई बात छिपी नहीं रहती । सबसे उच्चश्रेणी ज्ञानकी यही है । जैनके चौबीस तीर्थंकर सब केवल ज्ञानी होते हैं । उनके अतिरिक्त और कितने दूसरे साधूभी केवल ज्ञान रखते हैं । इस केवल ज्ञानको जो छिपाये रखे और न प्रकाशित होने दे उसका नाम केवल ज्ञानावर्णी कर्म है ।

दूसरा दर्शनावर्णी कर्म है । जिसके कारण प्रत्यक्षमें दर्शन नहीं होता और उसके परदेमें अलख करतार रहता है । उसकी चार शाखायें हैं ।

तीसरा वेदनी कर्म है जिसके कारण जीवको दुःख सुख होताहै । उसकी दो शाखायें हैं ।

चौथा मोहनी कर्म है उसकी दो शाखायें हैं ।

पांचवां आयु कर्म है इससे आपदाका अन्दाजा होता है और इसकी चार शाखायें हैं ।

छठवें नाम कर्म्म है इसकी तिरानवे शाखायें हैं यह नाम कर्म जीवधारियोंकी मूर्ति और स्वरूप बनाता है ।

सातवाँ गोतकर्म है इस गोतकर्मकी दो शाखायें हैं । एकसे नीची जगह और दूसरीसे ऊँची जगह जीव देह धरकर उत्पन्न होता है ।

आठवाँ अन्तराय कर्म है उसकी दो शाखायें हैं । इस अन्तराय कर्मका यह काम है कि जो ज्ञान होनेवाला हो उसको होने न दे उसमें विभिन्नता डालदे । आठों कर्मोंका विवरण में ग्रन्थ कबीर भानुप्रकाशमें लिख आयाहूँ जो चाहे सो देखले । इन्हीं आठ कर्मोंसे समस्त जीव चार खानि चौरासी लाख योनिमें आवागमन किया करते हैं कर्मोपासना योग और ज्ञान भी सविस्तर रूपसे वहीं लिखा है । जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि इस जीवका आवागमन कैसे सुकर्म तथा कुकर्मोंसे हुआ करता है । यह समस्त कर्म तो भ्रम रूप हैं । इनसे कदापि छुटकारा नहीं होता । जितको वेद धर्मके लोक और जैनी केवल ज्ञान कहते हैं सो केवल ज्ञान शुद्ध नहीं है इसमें अन्धकार है इस कारण इन केवल ज्ञानियोंको स्वच्छ प्रकाश नहीं है जिससे वे लोग मुक्तिकी सुधि नहीं रखते हैं जीवके कर्म ही उसका स्वरूप बनाते हैं । कर्मोंही करके इस जीवका आवागमन चारों खानिमें बराबर बना रहता है । सत्गुरु भेद बतलावें तो अवागमनका सम्बन्ध टूटे ॥

मुसद्दस ।

तू है करतार किरिया वारी । तेरा है हुक्म सब जगह जारी ॥
तेरी तसबीरमुबक और भारी । नकशहा सब झिंगरफो जंगारी ॥

आत्मोंका है सारे काम तुम्हें ।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥

तूही इनसान हुआ तूही हैवान । तूही रहबर हुआ तूही शैतान ॥
जिस्म सहहाव एकही है जान । होवे क्यों करबयां तुम्हारी शान ॥

लोक तीनो दिया इनाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
मलिक व आदमवाजिन्नोपरी । हबशी हिन्दीवखैबर औरततरी ॥
रंगबिरंग ढंग चार खान करे । अदलो इनसाफ साफसाफ करे ॥
दिया आलमका इन्तजाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
बन्दःसाहब कहीं किया है जुदा । कहीं बन बैठे आप आप खुदा ॥
सारे आलममें तेरी सूतोसदा । तुझसे सारे शरीर शाहो गदा ॥
सिजदा करते हैं खासो आम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
तूही वाचून और तुही वेचून । सूरत सूब तुझीने गूनागून ॥
तूही मकबूल औ, तूही मलऊन । तूही खुद रमरहा है सारेजून ॥
दे जमीनों जमा तआम तुम्हें ।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥
तूही जेरीन दरमयाँ वाला । मनका मनका हुआ तुही माला ॥
तूही पैदा किया तूही पाला । तूही सबजा हुआ तुही जाला ॥
कौन पहचान अक्ल खाम तुम्हें।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
इन्द्र ब्रह्मा व विष्णु भी भूले । अपने अमलोंके झोकमें झूले ॥
कहीं पज़:रदा और कहीं फूले । हिर्स हैवाँ घर बघर डोले ॥
दे रहीमो करीम नाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
आशकोंको दिखाया राहे सवाब । फासिकोंके लिये सहीद अज़ाब ॥
सारा अलम बना सयालोस्वाब ।-कोई न देरी ना सारेन कशबर आव॥

सारे जान्दार दे गुलाम तुम्हें ।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥
सारे जान्दारको फँसा मारा। नहीं इस जीवका रहा चारा ॥
करके तदवीर तुमसे सब हारा। जिन्दा करकरके फिर फिर मारा ॥
देमुकद्दर बदस्त दाम तुम्हें ।
ऐ अमल हाय सद सलाम तुम्हें ॥
तूही बखसिन्दा है अपनो अमाँ। मातहत तेरे सब हैं जिसमो जाँ ॥
तुझसे पैदाँ है बाणी वेदो कुराँ। आबिदानो जाहिदाने जमाँ ॥
याद करते हैं सुबहो शाम तुम्हें ।
ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥
सारे मजहब जहाँमें जारी है। पीर मुरशिदकी राहदारी है ॥
अर्श फर्शोंकी सब तयारी है। आजिज इसरारसे सब आरी है ॥
पेशवा भी किये इमाम तुम्हें। ऐ अमलहाय सद सलाम तुम्हें ॥

कर्मोंके चिह्नके विषयमें।

कर्मोंके चिह्न जीवधारियोंके शरीरमें कालपुरुषने बनाया है इस जीवने जैसे कर्म पूर्वजन्ममें किये हैं वैसेही चिह्न उसकी देहमें बने हैं सब जीवोंके शरीर पर चिह्न होते हैं परन्तु मनुष्यके शरीर पर भली भांति स्पष्ट प्रगट होते हैं। इसी कारण मनुष्यकी देहहीसे इसके कर्मोंका भली प्रकार हिसाब किताब होता है । मनुष्यके शरीरके चिह्न देखनेसे भलाई बुराई जानी जाती है। जिस समय वीर्य स्त्रीके गर्भमें स्थिर होता है, उस वीर्यके भीतर जीव होताहै और उस जीवके साथ उसके पहलेके किये हुए कर्म होते हैं। उसके भाग्यके अनुसार उसका शरीर प्रस्तुत होता है तथा समस्त रंग डील डौल पूर्वकर्मानुसारही होता है जब वह माताके गर्भसे निकलता है तब उसके पूर्व जन्मके कर्मोंके चिह्न उसके शरीर पर होते हैं । पांच वरषके

भीतर चिह्न स्पष्ट प्रकट नहीं होते जैसे जैसे यह बडा होता जाता है वैसेही वैसे इसके पूर्व कर्मके चिह्न दिखाई देते जाते हैं। तिल और मस्सा इत्यादि भी पूर्वकर्मानुसारही प्रकट होते हैं और बहुतेरे चिह्न छिपे रहते हैं। शिरसे लेकर पैरतक सुकर्म तथा दुष्कर्मके चिह्न भरे हुए हैं। कहीं दुर्भाग्यके तो कहीं सौभाग्यके चिह्न होते हैं। यदि एक स्थान पर दुर्भाग्य और दूसरे स्थान पर सौभाग्यका एकही बात पर चिह्न होवे तब उसका मध्यम फल होता है। जो लोग सामुद्रिक जानते हैं उनको यह बातें मालूम होती हैं। सामुद्रिक विद्या अत्यन्त कठिन है। जो सामुद्रिकमें प्रवीन हो वह मनुष्यका आकार देखकर सब कुछ कह सकताहै।

कबीर साहबने इस सामुद्रिक विषयमें बहुत कुछ कहा है कर्मोंके चिह्न देखकर सामुद्रिकका ज्ञाता सब कुछ कहसकताहै। उदाहरण–युनान देशका महा तत्त्वज्ञानीसुकरात (Socraties) एक पाठशालामें अपने शिष्योंको पढा रहा था उस पाठशालामें एक सामुद्रिक जाननेवाला आगया जब सुकरातके शिष्योंने जान लिया कि यह पुरुष इस इस प्रकारकी विद्या रखता है तब उसको वे अपने उस्तादके निकट लेगये और कहा कि इस पुरुषके दोष और अवगुण कहो। वह सामुद्रिक जाननेवाला इस बातको नहीं जानता था कि यह हकीम सुकरात है। उस समय उस सामुद्रिकीने सुकरातकी देहके समस्त चिह्न देखे और पहचानकर बोला कि यह मनुष्य बडा पापी, दुष्ट, व्यभिचारी, झूठा, ठग, दगाबाज और दुष्कर्मी है, यह बातें सुनकर सुकरातके शिष्योंने उसके ठट्टे उडाये और हँसते हसते बोले कि यह मनुष्य झूठा है। तब सुकरात जो स्वयं सामुद्रिक विद्या जानताथा कहने लगा कि, तुम

१ देखो पुस्तक स्वास गुञ्जार।

लोग इसको झूठा मत समझो। यह मनुष्य जो कहता है वह सत्य कहता है। उसमें कोई सन्देह नहीं कारण कि, उसने जो कुछ कहा उन सब बुराइयोंके चिह्न मेरे शरीरमें परिलक्षित हैं। मेरे शरीरमें वे सब चिह्न ज्योंके त्यों बने हुए हैं। मेरा स्वभाव वैसाही था परन्तु मैंने अपनी विद्या और योग्यतासे अपनी वासनाओंको भली प्रकार दमन किया है अपने हृदयको कुष्कर्मोंकी ओर हिलने नहीं दिया और भली प्रकार दृढ़ करलिया जिसमें तनिकभी हलचल न हो। ऐसा वासना दमन किया है कि वे मुरदेकी तरह हो गई हैं। परन्तु वे चिह्न जली हुई रस्सीकी ऐंठनके समानशेष हैं। तब सुकरातके शिष्योंको निश्चय हुआ कि, हमारा उस्ताद सत्य कहता है इस प्रकार पुरुषार्थ प्रारब्धपर जय पाताहै मनुष्यके अतिरिक्त कितनेही पशुओंमें भी यह चिह्न देखे जाते हैं जैसे कि हाथी, घोड़ा बैल इत्यादिमें। जो लोग उनको मोल लेते हैं उनके भले बुरे चिह्नोंको पहचान कर दुर्भाग्य तथा सौभाग्य जान लेते हैं। उनके कर्मोंके चिह्न साधारणतः जड़ स्थावर पदार्थ पर प्रगट नहीं होते गुप्त रहते हैं परन्तु कभी कभी किसी चिह्नसे उनके पूर्व जन्मोंका चिह्न प्रकट होता है और सर्व साधारण देखकर जानलेते हैं सुतरा लगभग पैंतालीस वर्ष होते हैं जब मैं एक बस्ती चुनारगढ़में जो काशीके समीप है गया। वहां पर्वत पर जाके मैंने एक प्रकारका वृक्ष देखा उस वृक्षके जड़से लेकर डालियों पर्यन्त नागरी अक्षरोंमें राम राम लिखा था। वहां इस प्रकारके अनेक वृक्ष थे। समस्त वृक्षोंकी यही दशा थी कि सबमें राम राम लिखा हुआ था। जब सर्व वृक्षोंकी यही दशा देखी तब भली भाँति दृष्टि दौड़ाई जड़से ऊपर पर्यंत समानही देख पड़ा। तब अनुमान किया कि इन वृक्षों पर कोई आकर लिख गया होगा और इन वृक्षोंमेंसे एक वृक्षकी छाल इधकर देखा तो छालके भीतर भी वही राम राम

सुन्दरताके साथ लिखा हुआ था। तब निश्चय होगया कि यह किसी मनुष्यके हाथोंका लिखा हुआ नहीं वरन् प्राकृतिक लिखावट है और उसकी उत्पत्ति कालसेही वह गुण उसमें आगया है। उन वृक्षोंकी यह दशा देखकर मैं गाँवमें गया लोगोंसे पूछा इस वृक्षका क्या नाम है? तब लोगोंने कहा कि इसे रामनामी वृक्ष बोलते हैं। उस वृक्षकी जडमें जो अक्षर थे उनकी स्याही बहुत काली थी और जैसे जैसे वे ऊपर जाते थे वैसेही वैसे स्याही फीकी पडती जाती थी। पतली डालोंकी स्याही बडी फीकी थी। परन्तु पत्तोंके नाम तो अत्यन्त फीकी स्याहीमें होंगे कि वे दिखाईभी न देते थे। उस वृक्षका वह रंग ढंग देखकर मैंने जाना कि, पूर्वकालका यह कोई भक्त है और किसी दोष वश वृक्ष हो गया है।

उस समय यमलार्जुन कुबेरके पुत्र याद आये जो नारद मुनिके शापसे दोनों वृक्ष हो गये थे। श्रीकृष्णजीने उनका उद्धार किया उस वृक्षकी अवस्थासे उन्हें छुडाकर उनको यथार्थ स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार गौतम ऋषिकी स्त्री (अहल्या) गौतमके शापसे पत्थर होगयी थी, श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपनी पूर्वावस्थामें प्राप्त हुई इसी प्रकार सर्व जीव कर्मके बन्धनमें पडे हैं, जड और चैतन्य सर्व फँसे हुये हैं और किसी योग यत्नसे कदापि नहीं छूटते। उलटा दिन प्रतिदिन अधिक फँसते जाते हैं।

इस प्रकार सर्व जीव बन्धनमें पडे और कर्मकी फाँसी सब जीवोंको लगी। इससे छूटना असम्भव हुआ सहस्रों युक्तियां करता है परन्तु प्रति दिन बँधा जाता है। यह तीन लोक भवसागर (उत्पत्ति सागर) कर्मने बनाया है, कर्म-मन-ब्रह्म-काल पुरुष ब्रह्मा इत्यादि यह सब नाम इसीके हैं। इसी कर्मने यह भवसागर बनाया है और यही कर्म इस पर अधिकार कर रहा है ब्रह्मांड और पिण्ड दोनोंकी

स्थिति कर्मसे है अनगिनती ब्रह्माण्ड हैं जिनकी सीमा नहीं यह ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड दोनों अनगिनती नाना प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण है। जीवोंका अनगिनती स्वरूप तथा स्वभाव है कि जिनका कुछ विवरण हो नहीं सकता। किसीका वय लाखों वर्षका है और कोई ऐसे हैं कि एक बार स्वांसके आने जानेमें बहुत बार उत्पन्न होते और मर जाते हैं। कोई गरम है कोई अत्यन्त ठण्डे हैं ये सर्व जीव वासनासे भरे हुये हैं। इस भवसागरमें पड़े गोता खाया करते हैं। कभी स्वर्ग कभी नरक और कभी मृत्युलोकमें रहते हैं। इस चौरासी लाख योनिके जीवोंको सुख नहीं मिलता सदैव दुःखी सुखी हुआ करते हैं। चारों खानिके जीवोंमें कोइ न सुखी और न सन्तुष्ट है। कर्मोंके बन्धनसे सदैव इनका आवागमन हुआ करता है, यह भवसागर पशुओंसे बसा हुआ है इसमें मनुष्य कोई नहीं और जो मनुष्य हैं उनमें काम क्रोध लोभ आदि वासना नहीं। जबलों अपनेको वासनाओंसे पृथक् न करे तबलों मनुष्यताके योग्य न होगा। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरिया यह चारों अवस्था मनमें स्थिर किया है। जबलों कलुषित कार्योंसे पृथक् न हो तबलों प्रकाशका मार्ग न देखेगा। इस कारण वासनाओंके आनन्दसे दूर भागना चाहिये इसे वही है कि, जो भवसागरके दूसरे जीवोंको कालके जालमें फँसा देखकर बुद्धिमानीसे दूर भाग जावे। जबलों मनुष्य अपनेको जाग्रत अवस्थामें न अधिकृत करें तबलों मनुष्यता प्राप्त न करेगा। इस जीवको वासनासे नष्ट करके भवसागरमें बाँध रक्खा है। समस्त बुराई तथा बन्धनकी जड़ यही वासना है इस मनके पांच अहंकार हैं इन्हीं पांचोंमें स्वामी तथा सेवक सभी फँसे हुये हैं।

इति श्रीकर्मबोधे एकोनविंशस्तरंगः ॥ १९ ॥

सत्य ।

अथ श्रीअमरमूलप्रारम्भः ।

भारतपथिक कबीरपंथी

स्वामी श्रीयुगलानन्दद्वारा संशोधित ।

जिसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापेखानेमें

छापकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण-मुंबई.

सब हक्क यन्त्राधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

सत्य नाम।

श्री कबीर साहिब।

सत्यनाम

सत्यसुकृत, आदिअदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी धर्मदास, चुरामणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुबालापीर केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाक नाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दया नामकी, वंश ब्यालीसकी दया।

अथ श्रीबोधसागरे।

विंशस्तरंगः।

अथ श्रीअमर मूल प्रारंभ।

धर्मदास वचन साखी।

धर्मदास बिन्ती करें, सुन गुरु कृपानिधान।
जरा मरन दुख मेटके, दीजे पद निर्वान॥
मरन काल त्रयलोकमें, अमर न दीखा कोय।
यह संशय निश दिन लगो, जीते ताहि वियोग॥

सोरठा—हे प्रभु दीनदयाल, बक्त जीव अति दुखित है ।
हरहु वेग उर साल, करहु कृपा निज दास कहँ ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

धर्मदास तुम मुक्ति अधीना । सो तव कथा सुनहु परवीना ॥
जरा मरन जिवको मिटजाई । पुरुष नाम गहे चितलाई ॥
अम्मर काया तवही पावे । अमर शब्द घट माँहि समावे ॥
ताकी महिमा और न जानी । अमर मूलमें कही बखानी ॥
अमर मूल है सबते सारा । अमर मूलका कहौं विचारा ॥

साखी—अमर मूल निज ग्रन्थ है, कहैं कबीर विचार ।
अमर मूल जाने बिना, बूडा सब संसार ॥

चौपाई ।

अमर मूल जानौ धर्मदासू । ताकर भेद कहौं परकासू ॥
अमर नाम कब्बीर कहाई । अक्षर विन बूडी दुनियाई ॥

धर्मदास वचन चौपाई ।

धर्मदास विन्ती अनुसारी । सुनहु गुरू अपराध विसारी ॥
अमर भेद साहिब कह दीजे । तृषा बुझाय अमीरस पीजे ॥
बंदी छोड मुक्तिके दाता । अमर मूल कहिये विख्याता ॥
संधि भेद कहिये निर्बारी । यहे ग्रंथ है बहुत अपारी ॥
भिन्न भिन्न सब मोहि बताई । जिहिंते मनकी संशय जाई ॥
प्रेम प्रीति तुमही सो लागी । वचन सुधा सुन हों अनुरागी ॥
अमृत नाम कबीर है सारा । पाऊँ ताहि होय निस्तारा ॥

सद्गुरु वचन चौपाई ।

तब सतगुरु अस कहैं विचारी । तुम सों ज्ञान कहों अति भारी ॥
प्रथमहि सुनो पानकर लेखा । तिहि पीछे नारिअरका लेखा ॥
तब प्रसाद मैं कहों विचारी । इतनी बातमें जीव उबारी ॥

शब्द विदेह भयो उचारा। तिहिं पीछे त्रइलोक पसारा॥
शब्दहि नाम लोक है भाई। निः अक्षर में रहे समाई॥
निः अक्षर की परचय होई। तब सतलोक पहुँच है सोई॥
जीवत लोक बेठ पुन जाई। सार शब्द महँ रहे समाई॥
अमर शब्दकी होय चिन्हारी। अंबू द्वीप ताहि बैठारी॥
अंबू द्वीप लोक कर नामा। शोभा कहा कहौं निज धामा॥
अवर्ण रूप बर्णो नहिं जाई। धर्मदास सुनियो चितलाई॥
षोडश भान हंस को रूपा। पुरुषहि महिमा अमृत अनूपा॥
अमर शब्द सों प्राणी भयऊ। वही शब्द सों लोकहि गयऊ॥
पान परवाना शब्द है सारा। एही मूल सों हंस उवारा॥
अकह नाम अक्षर है भाई। तुम निःअक्षर रहो समाई॥
निः अक्षर को करै नबेरा। कहैं कबीर सोई जन मेरा॥

धर्मदास वचन चौपाई।

निःअक्षर गुरु मोहि बताई। जाते हंस लोकमें जाई॥
लोक प्रतीति करौं मैं कैसे। कहो विचार चित आवै तैसे॥
तुम प्रभुनिर्गुण भाव सुनावा। अब कहिये सर्गुण परभावा॥

सद्गुरु वचन चौपाई।

धर्मदास तुम मतिके आगर। सार शब्द कहियो सुखसागर॥
हंसा सज्जन परम सनेही। कहियो ताहि परम पद तेही॥
धर्मदास सो शिष्य तुम्हारा। सार शब्दको करै सम्हारा॥
तुम्हरे वंश कहिये उपदेशा। ज्ञानी होय तेहि कहो संदेशा॥

साखी-परख सौं जिन खोलिहो, कहै कबीर विचार।
ज्ञानी सो न दुराइ हो, सुनो सत्त मत सार॥

चौपाई।

ज्ञानी होय जे मतिके धीरा। तहीं समाय वस्तु गंभीरा॥
धर्मदास सुनियो चितलाई। लोक प्रवय अब देऊँ बताई॥
निग्य नाम निःअक्षर सारा। सगुण सकल कीन्ह विस्तारा॥
निर्गुण सगुण हुवे कोई। सार शब्दमें रहे समाई॥
अमर मूलका करे विचारा। धर्मदास सो शिष्य हमारा॥
और ग्रंथ बहुतक मैं भाखा। अमर मूलकी है सब शाखा॥
शाखा पत्र सबै ल्पटाना। अमर मूल काहु नहिं जाना॥
अमर मूल धर्मनि सुन लेहू। यही संदेश हंसन कहि देहू॥
यह संतनको मत है भाई। जातें आवा गवन नशाई॥
सोई जीव उत्तर है पारा। नातर बूड मुआ संसारा॥

साखी–ज्ञानी होय सो मानहीं, बूझे शब्द हमार।
कहैं कबीर सो बांचिहै, और सकल यमधार॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

पवन भेद अब कहो बुझाई। ता महि जक्त रह्यो अरुझाई॥
नीर भेद मोहिं कहो बिचारी। बंदी छोड जाउँ बलिहारी॥

सद्गुरु वचन–चौपाई।

नीर पवन का भाखों लेखा। सुकृत घट में करो विवेखा॥
इम टकसार ग्रन्थ यक भाखा। नीर पवन ताही महँ राखा॥
वही माहिं रहे लिपटाई। नीर पवन मईं रहे भुलाई॥

साखी–नीर पवन की उत्पत्ती, कहें कबीर विचार।
जो निज शब्द समावही, सोई हंस हमार॥

चौपाई।

सार शब्द मैं कीन्ह नबेरा। नहिं मानें सो जमको चेरा॥
गर्भ वास जन्म सो धरई। जो यह लेखा बाहर परई॥

छत्तिस नीर पचासी पवना। तासों रची सकल ही भवना ॥
यह तो भेद कालको दीन्हा। नाम जो एक गुप्त हम कीन्हा ॥
नाम भेद जो पावे सांचा। सोई जीव काल सौं बाँचा ॥

साखी–सार शब्द जो जानही, सो बैठे भव गीत।
नातो जमपुर जायँगे, कठिन काल विपरीत ॥

चौपाई।

गोरख पवन साध मर गयऊ। नाम प्रचय अजहूँ नहिं भयऊ ॥
व्यास देव ज्योतिषहि विचारा। लगन सोधकर घरी सम्हारा ॥
नामहि सार चित्त नहिं दीन्हा। लग्न मुहूरत सब गहि लीन्हा ॥

साखी–लग्न मुहूरत साधिया, कर्म का भीत बनाय।
भर्म टरे सतगुरु मिलें, तबहीं लोकहि जाय ॥

चौपाई।

यहै भर्म तब छूटे भाई। सतगुरु शब्द गहे चित लाई ॥
नाम पान में कहौं विचारी। जातें छूटे भर्म किवारी ॥
मोह नसे सत चौकी होई। तबहि नाम कहँ पावै सोई ॥
तासे पान प्रवाना भाखा। भक्ति ज्ञान ताकर है साखी ॥
बिना नाम नहिं उतरे पारा। कैसे साध कहावे सारा ॥
पढ पढ विद्या वेद पुराना। नाम बिना नाहिं होय प्रमाना ॥
चारहि गुरू जक्तमहँ कीन्हा। तिनके हाथ मुक्ति हम दीन्हा ॥
वे हंसन कहँ लोक पठावें। भवसागर महँ बहुर न आवें ॥

साखी–चार गुरू संसारमें, धर्मदास बड अंश।
मुक्ति राज मैं दीन्हऊँ, अटल व्यालिसहि वंश ॥

चौपाई।

धर्मदास तुम मत के धीरा। तातें दीन्ह मुक्ति को बीरा ॥
तुमतें जीव उतर है पारा। दीन्हा सौंप जक्त को भारा ॥
राय बंकेजी चतुर्भुज, राजा। सहतेजी पुरु तहां बिराजा ॥

साखी--राय बंकेजी चतुर्भुज, सहतेजी हैरान ।
येहि छुडाय हरेक हीं, शब्द देहिं पहिचान ॥

चौपाई ।

यही छुडाय काल सों हंसा । शब्दहि दे कर हैं निःशंसा ॥
तुम धर्मदास व्यालिसहि वंशा । ये निज आहि पुरुषके अंशा ॥
इन कहिं सौंप दीन्ह जिवभारा । सब जीवन को करैं उबारा ॥
इन ही छोड अन्त चितलावै । जन्म २ सो भटका खावै ॥
वंश व्यालिस तुम्हरे सारा । और सकल सब झूठ पसारा ॥

साखी--नाम भेद जो जानही, सोई वंश हमार ।
नातर दुनियां बहुत ही, बूड मुआ संसार ॥

चौपाई ।

धर्मदास में कहौं विचारी । यह विधि निबहै यह संसारी ॥
काल कठिन है बहुत अपारा । जिन यह सृष्टि कीन्ह संहारा ॥
ता कहँ कोइ न जाने भाई । कालहिं सुमरण करहिं बनाई ॥
काल दुःख दे सबहि रुवावै । शब्द होय तहँ माथ नवावै ॥
नाम एक है गुप्त अमोला । सो धर्मनि मैं तुम से खोला ॥
जो यह नाम को करै सम्हारा । सो भवसागर उतरै पारा ॥
तुम कहँ दीन्ह शब्द उपदेशा । सो हंसन कहँ कहो संदेशा ॥
ज्ञान प्रकाश जाहि घट होई । बीवन मुक्ति पावै जन सोई ॥

धर्मदास वचन--चौपा ।

धर्मदास कहैं सुनिय गुसांई । जीवन मुक्ति कहो समुझाई ॥
जीवन मुक्ति कहो किमि जाना । लोक वेद कैसे पहिचाना ॥
सो मोसों यह कहिये भेदा । जिहितें मनकी संशय छेदा ॥

सद्गुरु वचन--चौपाई ।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । यह निज भेद कहौं तुम पासू ॥
उग्र ज्ञान जाके घट होई । मुक्ति भेद कहँ पावै सोई ॥

अब मैं कहौं ज्ञान उपदेशा। तुम अपने घट करो प्रवेशा॥
मुक्ति नाम निःसंशय होई। अमर नाम जब सुर्त समोई॥
जहँलग कहि जिभ्या कर गाया। तहँ लग जानो सो सब माया॥
अकह नाम कहा नहिं आई। घट २ व्यात निरंतर आई॥
नाद शब्द जबही उचारा। ताथों अक्षर भयो विस्तारा॥
अक्षर हीं तें उपजी माया। संशय भई सबन की काया॥
तब ही शब्द सुते मन लाया। मन थिर भए नहीं है माया॥
स्थिर घट मन लहर समानी। मुक्तिरूप तबहीं पहिचानी॥
सो निःकर्मी जीव हमारा। कर्म काट भव उतरे पारा॥
जो यह गहे शब्द मनलाई। ताकर आवागवन नसाई॥
सीखे पढ़े काम नहिं आवे। कर्मी जीव मुक्ति नहिं पावे॥
ज्ञान प्रकाश चाहि घट होई। ताके हृदय मोह नहिं कोई॥
जैसे सूरज बादल रूँधा। ऐसे मोह ज्ञान कहँ मूँदा॥
जब लग मोह न छूटे भाई। तबलग नाम न हृदय समाई॥
जब लग मोह रहे तन बासा। तबलग नाहिं ज्ञान प्रकाशा॥
जन्म २ कर भक्त जो होई। तबहि नाम कहँ पावे सोई॥
कोटि न जन्म भक्ति जिन कीन्हा। अमर मूल तबहीं पर चीन्हा॥
अमर मूल कर पावे भेदा। कहैं कबीर सो हंस अछेदा॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास विनती अनुसारी। सद्गुरु वचन जाउँ बलिहारी॥
जिहि विधि मम मन होय अछेदा। सो समरथ कहि दीजे भेदा॥
जो मोहि कहो पान परवाना। नारिअर भेद कहो सहिदाना॥
कहँ ते भयो पान परवाना। कहवाँ तें नारिअर उतपाना॥

सत्गुरु वचन।

अमर मूल सों पान बनावा। बेली बीज नहीं निर्मावा॥
हतो न बेल बीज तिहि ठाईं। शब्द माहि बेली निर्माई॥

उपजो तबै पान परवाना। जाते हंस होय निर्वाना॥
नरिअर आदि धर्मको माथा। सो मैं दीन्ह तुम्हारे हाथा॥
जीवके बदले नरिअर दीन्हाँ। हंस छुडाय धर्म सो लीन्हाँ॥
नरिअर पान प्रसादकी जोरी। सार शब्द सौं नरिअर मोरी॥
जिन नरिअरको पाय प्रसादा। जन्म मरनका पाप नसादा॥
जे जीव पायो पान प्रवाना। देह छोड सतलोक पयाना॥
काल दगा तबही मिट जाई। सत्यलोक महँ जाय समाई॥
ऐसी भक्ति जीव जो करई। भक्ति बिना सो नहिं निस्तरई॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास विन्ती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
नरिअर पान प्रसाद बताशा। ताकर भेद नाहिं हम पावा॥
सोइ भेद मोहे देहु बताई। जिहितें मन संशय मिटजाई॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास तुम सुनो सुजाना। नारिअर भेद पान परवाना॥
धर्मराज जब सेवा लाई। तबकी कथा कहौं समुझाई॥
जब तुम सुनो धर्मकी आदी। तब मिटि है जिवकी बकवादी॥
सेवा बसहि पुरुष तब भयऊ। तीन लोक भवसागर दयऊ॥
मानसरोवर बैठक दीन्हा। कामिनि देख बहुत सुख कीन्हा॥
धर्मराज कामिन कहँ ग्रासा। तबही पुरुष श्राप परकाशा॥
तीन लोक जिव करो अहारा। तबही भरि है उदर तुम्हारा॥
तीन लोक महँ जीव जो होई। धर्मराय कहँ आवैं साई॥
तातें नारिअर बदला दीन्हा। जीव छुडाय कालसों लीन्हा॥
भक्ति प्रवान कहेउ समुझाई। बिना भक्ति नहिं काल पराई॥
नारिअर पान शब्द है नौका। भक्ति प्रवान कहेउ तहँ चौका॥

धर्मदास वचन।

भक्ति प्रवान कहो समुझाई। कवन भक्ति सों जीव मुक्ताई ॥
तुम प्रभु हौ हंसनके नायक। पुरुष पुरातन जीव हितलायक ॥
भक्ति अंग मोहे देव बताई। तिहिं गहि हंसा लोक सिधाई ॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास सुन भक्ति विचारा। जासों उतर जाय भव पारा ॥
प्रथमहि पान प्रवाना पावै। साधनकी सेवा मन लावै ॥
सार शब्द घट रहे समाई। अक्षर भेद पावै जन कोई ॥
अमर वस्तु गुप्त हम राखा। ज्ञानी होय तेहि सों भाखा ॥
शब्द रूप निःअक्षर आनो। सो हंसा सत लोक पयानो ॥
इतना ज्ञान जाहि घट होई। अमर मूलको जानै सोई ॥

छंद–ज्ञान पूरन होय जा घट पान नारिअर भक्ति हो।
बिना ज्ञान नहिं भेद पावैं केत पढ गुण शक्ति हो ॥
अमरमूल यह ग्रन्थ धर्मनि सुनियो चित्त लगायके।
जन्म २ को पाप नासै अमरलोक सिधायके ॥

सोरठा–सुन धर्मदास सुजान, किहिं विधि साधु कहावई।
कहैं कवीर बखान, अमर मूल जाने विना ॥

इति श्रीअमरमूल ग्रन्थ प्रथम विश्राम।
ज्ञान भक्ति वर्णन।

धर्मदास वचन–चौपाई।

धर्मदास कहैं सुनो गुसाई। जीवन मुक्ति सो मोहे बताई ॥
नाम अमोल तत्व अति भारी। दुविधा माहिं जीव संचारी ॥
यह संशय मोहे निसदिन व्यापे। हरहु वेग गुरु यह संतापे ॥

तुम सतगुरु घर बैठे तारा। आवा गमन मोर निर्वारा॥
मन अरु जीव भेद बतलाओ। अब जिन मोसन अन्तर लाओ॥
समुझो तबै जीव मुक्ताऊँ। वही डोर सहलोक पठाऊँ॥

सद्गुरु वचन।

पवन पचासी सकल पसारा। जीव पवनसों आहि निनारा॥
ब्रह्म रूप सब मांहि समाई। सूक्षम रूप जीव दरसाई॥
दसवां भाग राई कर जाना। आतम रूपी देह समाना॥
अरु योगिनमें बरतै भाऊ। मानस देहमें मुक्ति प्रभाऊ॥
पांच तत्त्व दस इन्द्री संगा। प्रकृति पचीस कहेउ प्रसंगा॥
यह प्रमान मन करे बखाना। जीव ब्रह्मसों भए उतपाना॥
मन करता यह देह समाना। सूक्षम रूप नाहिं पहिचाना॥
अंक चीन्ह स्थिर होवे सोई। ताकी आवा गमन न होई॥
ताको बरन भेद जब पावे। मुक्ति होय जग बहुरि न आवे॥
चौरासी क बंधन छूटे। काल जंजाल ताहि नहिं लूटे॥
मुक्ति भेद कोइ बिरले जाना। काल फांस जग सब लपटाना॥
अमर मूल है मुक्ति पसारा। ताको संतो करो विचारा॥
आतमब्रह्म एक है भाई। परमातम मिल ब्रह्म कहाइ॥
ज्यों जलनिधि सों लहिर उगाइ। तिमि परमातम आतम आई॥
जिमि किसान चिनगी संचारा। इमि जिव भयउ ब्रह्म विस्तारा॥
जिमि कंचन आभूषण कीन्हा। ऐसे जीव ब्रह्म कहँ चीन्हा॥
उभै अंश दीपक इक फूटें। जीव ब्रह्म कर संग न छूटें॥
जिमि रवि ज्योति किरण परकाशा। ऐसे ब्रह्म मोहिं जिवबाशा॥
एही विधि ब्रह्म जीवहिं गाई। समझे तबहि एक होजाई॥
शिव शक्ती एकहिं मत कीन्हा। ताकर भेद कोइ बिरले चीन्हा॥
जः जाना वे मुक्ति समाना। प्रेम भाव सतगुरु पहिचाना॥

साखी—जिन जाना निज प्रेम कहँ, सोई जन परवान।
तासों कहिये सूरमा, कहँ कबीर बखान ॥

चौपाई।

केवल ज्ञान पाय है सोई। जिहि पर कृपा गुरुकी होई ॥
केवल ज्ञान प्रगट समझाऊं। भिन्न २ कर ताहि लखाऊं ॥
प्रथमहिं सुनो ज्ञान कर भेदा। निर्मोही होय हंस अछेदा ॥
सुवंचन अक्षर पहिचाना। और सकल जग मिथ्या जाना ॥
सुखदाई सबहा कहँ भावै। बाल रूप होय अग्नि बुझावै ॥
समदृष्टी एकहि कर जानै। भला बुरा कछु मन नहिं आनै ॥
हृदय पुनीत शुद्ध मन होई। पाखण्ड भर्म डार सब खोई ॥
ब्रह्म वियोग शब्द अनुरागी। दसहूँ दिशा झूठ तिन त्यागी ॥
झूठ सकल जग देखो जानी। जैसे अहै बुदबुदा पानी ॥
अस मति जाकर होय सुहाई। केवल ज्ञान ताहि समुझाई ॥
माया बिना मोह नहिं आवै। नाम परख निश्चय ध्यावै ॥
यह विधि केवल ज्ञान कहावै। जो सुमिरत सतलोक सिधावै ॥
केवल काम निःअक्षर आई। निःअक्षर में रहे समाई ॥
निःअक्षर को करे नबेरा। कहैं कबीर सोई जन मेरा ॥
अमर मूल मैं बरन सुनाई। जिहिते हंसा लोक सिधाई ॥
शब्द भेद जाने जो कोई। सार शब्द में रहे समोई ॥
शब्द ज्ञानका लख जिन पाया। सब दृष्टि सब माहिं समाया ॥
जेतक जीव देह धर आए। शब्दहि सों ते सकल उपाए ॥
शब्द अखंड और सब खंडा। सार शब्द गरजै ब्रह्मंडा ॥
निःअक्षर की पारखये पावै। सत्तलोक महँ जाय समावै ॥

धर्मदास वचन—छंद।

बिन्ती करैं कर बार धर्मन, सुनहु सतगुरु सार हो।
सत्तलोक है कौन शोभा, तहां कौन व्योहार हो ॥

कवन रूप जो पुरुष रहहीं, कवन सुख हंसा करै।
कामिनि किहि रूप राजै, तहां सुख विस्तार हो॥

सोरठा—सो मोहे प्रकट सुनाव, दया करो निज दास कहँ।
बार बार बलि जांव, अब जिन मोहि छिपावहू॥

सद्गुरु वचन—चौपाई।

कहैं कबीर सुनहु धर्मदासू। सत्तलोक को कहौं प्रकासू॥
है सत्तलोकहि अम्मर काया। वृक्ष रूप सबही त्रय माया॥
षोडस भान हंस की क्रांती। अमर चीर पहिरे बहु भाँती॥
शोभा पुरुष कही नहिं जाई। कोटिन रवि इक रोम लजाई॥
अमर लोक अमर है काया। अमर पुरुष जहां आप रहाया॥
अमर पुरुष का पावै भेदा। कहु कबीर सो हंस अछेदा॥
सत्तलोक सत शब्द पसारा। सत्त नाम है हंस अधारा॥
अमृत फल के भोजन करहीं। युगन २ की क्षुध्या हरहीं॥
पीवत सुधा भर्म मिट जाई। जन्म २ की तृषा बुझाई॥
कामिनि रूप बरन उजियारी। बार भान की ज्योति पसारी॥
शोभा बहुतक प्राण पियारी। प्रेम भाव सब हंस निहारी॥
अनहित बचन बोल नहिं बानी। प्रेम भाव अमृत रससानी॥
शोभा बहुत जहां मन भावन। हंस कामिनी रंग बढावन॥
अमृत नाम हृदयमें लावे। प्रेम भाव पुरुषहि मन भावे॥
आशा बस मन कोऊ नाहीं। भयो प्रकाश शब्दके माहीं॥
बूझे संत ज्ञानी जो होई। सतगुरु शब्द हृदय समाई॥
है निहशब्द शब्द सों कहेऊ। ज्ञानी सोई जो वह पद लहेऊ॥
धर्मदास मैं तोहि सुझावा। सार शब्दका भेद बतावा॥
सार शब्द का पावै भेदा। कहैं कबीर सो हंस अछेदा॥

सार शब्द निःअक्षर आही। गहे नाम तेहि संशय नाहीं ॥
सार शब्द जो प्राणी पावै। सत्तलोक महिं जाय समावै ॥
साखी–कहै कबीर विचार कै, सुनहु साध धर्मदास।
अमर मूल निज शब्द है, ताकर अस परकास ॥

चौपाई।

अमर मूल ग्रन्थन में सारा। बिना अमर नहिं हंस उबारा ॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास कर जोर निहोरा। स्वामी सुनिये बिनती मोरा ॥
कवन प्रसाद दरश हम पाया। कवन प्रसाद अमर भइ काया ॥
कवन प्रसाद साध कहलायउ। कवन प्रसाद हंस गति पायउ ॥
कवन प्रसाद ज्ञान हम पाया। कवन प्रसाद अमर भई काया ॥
कवन प्रसाद नाम हम पाया। कवन प्रसाद हम लोक सिधाया ॥
कवन प्रसाद सज्जन जन जानी। सो समुझाय कहो मोहे बानी ॥

सद्गुरु वचन।

कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। यह सब भेद कहौं परकासू ॥
पुरुष दयातें दर्शन पावा। कोटि भक्ति सतनाम समावा ॥
जब कीन्ही सतगुरु ने दाया। नाम जान अमर भई काया ॥
सेवा कीन्ही साध कहाए। लोक जायके हंस कहाए ॥
हेत दीप सज्जन जन जाना। कहैं कबीर भेद निर्वाना ॥
साखी–एक नामकी शोभा, कहँ लग कहौं बखान।
निःअक्षर जो जानि है, सोई सन्त सुजान ॥

चौपाई।

सत सहिदानि तोहि समझाई। अमर मूल महिं देखो आई ॥
कोटि जन्म को पातक होई। नाम प्रताप जाय सब खोई ॥
नामहि गहैं सूरमा जानी। बिना नाम कायर सो मानी ॥

नाम बिना सबही विधि हीना । नाम बिना है ज्ञान विहीना ॥
नाम बिना सो मूरख कहिये । नाम बिना सो पापी लहिये ॥
नाम जाने सोइ गुण आगर । नाम बान पहुँचे सुख सागर ॥

छंद।

नाम अमी अमोल अविचल अंक बीरा पावही ॥
तज कागकि चाल मराल पथ गह अमर लोक सिधावही ॥
जिमि सदन दीपक बिना नहिं मिटत है अँधियार हो ॥
तिमि नाम बिन सुन दास धर्मनि नहीं घट उजियार हो ॥

सोरठा--नाम अमोल अपार, अमर मूल मैं वर्णेऊ ।
करहि कर्म जर छार, कहैं कबीर विचार कर ॥

इति श्रीअमर मूल नाम लोक महिमा वर्णन ।

द्वितीयो विश्राम।

धर्मदास वचन—चौपाई।

विन्ती इक मैं करो गुसाँई । जिहि तें मन की संशय जाई ॥
अमर मूल का कहौं विचारा । जाते हंस उतर है पारा ॥
कौन भक्त सा हंस कहावा । कौन विधिसों पंथ चलावा ॥
सो मर्याद देहु बतलाइ । तुम प्रभु हो हंसन सुख दाई ॥

सद्गुरु वचन।

कहैं कबीर सुन धर्मनि नागर । यह विधि हंस पहुँच सुख सागर ॥
प्रथम करै सतगुरु की सेवा । जाते मिटै काल कर भेवा ॥
महा प्रसाद प्रेम सो पावें । सेवा कर निज गुरुहि मनावें ॥
घट में राखे प्रेम अनंदा । चौरासी के छूटे फंदा ॥
गुरु साहिब एकहि कर जाने । सो हंसा सतलोक पयाने ॥
साधन सों एकहि मति रहई । दुबधा भाव न कबहू करई ॥
गुरु साधु सेवा जिन किन्हा । ताकहँ मुक्ति निकट हम दीन्हा ॥

साखी—गुरु संतन को जान के, हृदय करे परतीत।
कहे कबीर सो हंस है, चलि है भव जल जीत॥

चौपाई।

सतगुरु तहां आरती करहीं। तज जहां जाय पशु धरहीं॥
चरणामृत साधन को लीजे गुरु पूजा कर अचवन कीजे॥
गुरु की दया निरन्तर रहई। निंद्रा रूप न कबहूँ कहई॥
निःअक्षर सुमरो चितलाई। जासों आवा गवन नसाई॥
निःअक्षर को निर्खे भावा। देह छोड सतलोक सिधावा॥
गुरुके वचन सोचकर माना। नाम विना मिथ्या जग जाना॥
और न देख और नहिं पेखे। निसदिन पल २ नाम विवेखे॥

साखी—छूठ पसारा देख जग, करनी देय बहाय।
एक नाम कहँ जानके, ता मँह रहे समाय॥

चौपाई।

कर्म भर्म की छोडहि आशा। एक नाम सों कर विश्वाशा॥
कुलकी लज्जा भर्म नसावे। ऐसी रहिनी साध कहावे॥
यह विधिसों तुम पंथ चलावो। जन्म २ को पाप नसावो॥
वंश तुम्हार लोक कहँ जाई। नाम विना बूडी दुनियाई॥
नाम जान सो वंश तुम्हारा। विना नाम बूडा संसारा॥
नाम पार नहिं वेदन पावा। नेति २ कर सब गुहरावा॥
आदि ब्रह्मको पार न पावे। पढ २ पंडित भर्म लगावे॥
मुक्ति पंथ नहिं सुर्त समावा। पढ गुन थाकित पार नहिं पावा॥
अंतकाल जम घेरे आई। तब विद्या कछु काम न आइ॥
विद्या पढ कीन्हा अभिमाना। अंतकाल होय नर्क निदाना॥
वेद पुराण सास्त्र यह भाखा। नाम बिनाको जमसों राखा॥
व्यास ब्रह्म की स्तुति कीन्हा। श्रीभागवत भाख नित लीन्हा॥

काम रूप कर सबहि सुनावा। पंडित तासु मरम नहिं पावा॥
पूरन ब्रह्म नाहिं चित दीन्हा। काम रूप सबही गहि लीन्हा॥
बिन सद्गुरु कोइ मरम न पावे। झूठ राह सबही लपटावे॥
सतपुरुष को मरम न जाने। झूठहि धाय सांच कर माने॥
झूठहि झूठ रहा छिपटाई। सत्तपुरुषको लखा न जाई॥
अठारा पुरान ग्रन्थ बहुभाखा। तिन महिं सिरे भागवत राखा॥
ब्रह्म महातम कहि समुझावें। श्री भागवत भक्त दृढावें॥
कृष्ण चरित्र सब करहि बखाना। कृष्ण मरम काहू नहिं जाना॥
निर्गुन भक्ति नहीं चित दीन्हा। सर्गुण भक्ति सब न गहि लीन्हा॥
निर्गुन ब्रह्म मरम नहिं जाना। शिव समाधि लगावहिं ध्याना॥
विष्णु ध्यान कीन्हा मन माहीं। अठ्ठल निरंजन देखें छाहीं॥
देखत छांहि मग्न मन भयऊ। निरंजन रूप विष्णु है गयऊ॥
दैत्य देव कीन्हें उतपाती। कीन्हें दैत्य देवनकी हानी॥
दैत्य मारके देव छुडाया। ताते विष्णु सबन मन भाया॥
गोपिन मिलकर रास पढारा। लीला एहि भक्त चित धारा॥
ता लीला महि सृष्टि भुलानी। ब्रह्मादिक सब मुनि अरु ज्ञानी॥
ज्ञान कथें अरु जोति दृढावें। जोति स्वरूप मर्म नहिं पावें॥
जोति स्वरूप निरंजन राई। जिन यह सकल सृष्टि भमाई॥
सत्त पुरुष का मर्म न जाना। झूठ ज्ञान सबही लिपटाना॥
सत्य पुरुष सतगुरु सों पावे। सत्य नाम महँ जाय समावे॥

साखी—कहे कबीर धर्मदास सों, अमरमूल निज जान।
अमर शब्द जा घट बसे, पावे पद निर्वान॥

चौपाई।

सत्यलोक महँ पावहु बासा। बिना अमर नहिं काल बिनाशा॥
पढ २ मूरख ज्ञान बिगारे। ज्ञान गम्य नहिं कोइ बिचारे॥

ज्ञान गम्य जाके घट होई। शब्द खोज करि है जन सोई ॥
ज्ञान गम्य नहिं मूरख पावै। सतगुरु मिलै तौ भेद बतावै ॥
सब संसार ढुण्ढ फिर आवै। ज्ञान बिना सब मूल गँवावै ॥

साखी–संत मिलै संशय नसै, नहिं तो पच २ मरना ।
नाव मिली केवट नहीं, किस विध पार उतरना ॥

धर्मदास वचन–चौपाई ।

धर्मदास कहै सुनहु गुसाँई। ज्ञान शब्द मोहे समुझाई ॥
ज्ञान रूप सतपुरुष प्रकाशा। सत्य लोक महँ कीन्हो बासा ॥
किहि विधि समझ परै यह बानी। कहिये सद्गुरु नाम निशानी ॥

सद्गुरु वचन ।

ज्ञान स्वरूप पुरुष कर आही। ज्ञानहि रूप कबीर लखाही ॥
ज्ञान प्रकाश दीप सम जानो। बिना ज्ञान सब झूठ बखानो ॥
बिना ज्ञान घटमें अँधियारा। ज्ञान बिना नहिं होय उबारा ॥
ज्ञान बिना अक्षर नहिं पाई। ज्ञान रूप अक्षर है भाई ॥
ज्ञानरूप पुरुष कर जानौ। यही वचन सत्य कर मानौ ॥
ज्ञान रूप निःअक्षर कहिये। अक्षर भेद ज्ञान सो लहिये ॥
निः अक्षर सो ज्ञानहि जानौ। अक्षर निः अक्षर पहिचानौ ॥
ज्ञान शब्द पुरुष कर अंशा। ज्ञान जान जन सोइ मम वंशा ॥
बिना ज्ञान नहिं वंश कहावै। ज्ञान होय तब शब्दहि पावै ॥
सोई वंश सत शब्द समाना। शब्दहि हेत कथै निज ज्ञाना ॥

साखी–कहे कबीर विचारके, सुनियो हो धर्मदास ।
जो यह शब्दहि पाय है, करि है लोक निवास ॥

धर्मदास वचन–चौपाई ।

विनती करि धर्मनि कर जोरी। हे समरथ विनती यक मोरी ॥
जेहि ते वंश शब्द कहँ पावै। सत्य लोक कहँ सत्य सिधावै ॥
औ जीवन कहँ देहु दृढाई। जाते जीव मुक्ति गति पाई ॥

सद्गुरु वचन ।

अब मैं वंश का कहों विचारा । धर्मदास तुम अंश हमारा ॥
आदि नाम आमोदिक शाखा । सोई शब्द वंश कहँ राखा ॥
साठ समै बाहर चौपाई । एही तत्त्व हंस घर जाई ॥
जप माली का भेदहि पावै । सत्य नाम में जाय समावै ॥
ऐसो भेद सुनौ धर्मदासू । जन्म २ की मेटत त्रासू ॥
सद्गुरु दया कर्म होय छीना । अमर होय नामहि लौ लीना ॥
संशय का मैं कहों ठिकाना । संशय काल घट माहिं समाना ॥
जबही पुरुष धर्म कहँ कीन्हा । तबही संशय उत्पन लीन्हा ॥
निः अक्षर की परचय पावै । संशय मिटै अमर घर जावै ॥
शंय को खंडित है ज्ञाना । ज्ञान हीन संशय लिपटाना ॥
संशय काल सबन कहँ खाई । निःसंशय हो नाम समाई ॥
संशय काल लखै नहिं कोई । तातें गए बिगोय बिगोई ॥
संशय नाम सुनौ धर्मदासू । एक नाम की राखहु आसू ॥
नाम छोड़ अन्तहि चित आनै । संशय तमहि पकर गहि तानै ॥
नामहि गहै तेहि निहसंसा । नाम बिना बूड़े सब हंसा ॥

साखी-कहैं कबीर धर्मदाससों, संशय को बिस्तार ।
एक नाम कहँ जानके, उतरहु भो जल पार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

हे स्वामी संशय उतपानी । ज्ञान हीन सब जीवहिं जानी ॥
बिरला हंस होय अंकूरी । सो यह ज्ञान गहै निज मूरी ॥
ज्ञान लखे बिन मुक्ति न होई । तो यह दुनियां जाय बिगोई ॥
नाम महातम आप सुनावा । बिना नाम कोइ पार न पावा ॥

सद्गुरु वचन ।

कहै कबीर सुनो धर्मदासू । यह निज भेद कहौं तुम पासू ॥
ज्ञान हीन प्रानी जो होई । ताकर भेद कहौं मैं सोई ॥

ता कहँ दीजे पान प्रवाना। निश्चय हंस होय निर्वाना॥
और प्रतीति हीय में धरई। सो प्राणा भवसागर तरई॥
पान पाय सत्यहि मुख भाखे। सद्गुरु चरण हिये में राखे॥
सद्गुरु केर निछावर करई। साधु चरण चित निश्चय धरई॥
तन मन धन संतन पर वारे। सतगुरु चरण हृदय में धारे॥
सुत नारी कर मोह न आवे। सबही त्याग चरण चित लावे॥
चरण धोय चरणामृत लीजे। सत्यलोक महँ अमृत पीजे॥

धर्मदास वचन।

पुरुषरूप कर यह उपदेशा। नारी को अब कहो सँदेशा॥
नारी नाम मुक्ति किमि होई। ताके घट महँ ज्ञान बिगोई॥

सद्गुरु वचन।

ताकर तोहि भेद समझाऊँ। मनो कामना सकल मिटाऊँ॥
नारी तरै सुनो धर्मदासू। कहैं कबीर नाम विश्वासू॥
ज्ञान हीन नारी को रूपा। ताको मैं सब कहौं स्वरूपा॥
तन मन धन संतन पर वारे। संतन की सेवा चित धारे॥
साधन सों जो अन्तर करई। धर्मरायके फंदा परई॥
गुरुके चरन निछावर जाई। तन मन धन सब देय चढाई॥
गुरुकी सेवा निशिदिन करई। सो तिरिया भवसागर तरई॥
ऐसी धरन धरै धर्मदासू। तबही मिटे कालकी फांसू॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास बिन्ती अनुसारी। हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी॥
यही वचन प्रभु मोहि सुनाऊ। मोरे मन इक भर्म समाऊ॥
नारी रूप सकल हम जाना। पुरुष रूप एकहि पहिचाना॥
नारी कहिये सब संसारा। आदि ब्रह्म है पुरुष अपारा॥
आदि पुरुष हम तुम कहँ चीन्हा। दूसर पुरुष कहाँ अब कीन्हा॥

जो तुम कही सोइ हम जानी। नारी रूप सुर्त पहिचानी॥
दूसर नारि कहां है कीन्हा। यही वचन हम संशय लीन्हा॥
मैं नररूप अँहु भति हीना। यही भेद सुन भयउ मलीना॥
तुम तो दयावंत गुरु स्वामी। क्षमिय चूक प्रभु अन्तरयामी॥
नारी नाम मात जो कहिये। इनहिं भेद कैस निर्वाहिये॥
नारी नाम बहिन जो आही। तासों कैसे अंक मिलाही॥
नारी नाम पुत्री जो होई। तासों कैसे अंक सजोई॥
साखी-यह सब भेद बताबहु, सुनहु हो बंदीछोर।
यह संशय मुं मेटहु, चरण गहों प्रभु तोर॥

सद्गुरु वचन-चौपाई।

कहैं कबीर सुनो धर्मदास। यह संशय उपजी तुम पास॥
आदि पुरुष तब हते अकेला। अग्र स्वरूपी पंथ दुहेला॥
तब साहिब ऐसा मत कीन्हा। सकल सृष्टि रचिबे चित दीन्हा॥
मनसा पढते भिन्न निकारी। उत्पति भई तहां इक नारी॥
सोई नारि सकल जगमाया। भग भोमे तैं पुरुष कहाया॥
भग द्वारे होय बाल्क आया। यही भांति सब जग भमाया॥
मैं तो एक मतौ रच जबही। पुत्र, बंधु, पिता भयो तबही॥
मैं तो एक नारी कर जबही। पुत्रि, बहिन, माता भई तबहि॥
भाई बहिन कीन्हां व्यांहारा। धर्मराय को यह संसारा॥
यह संशय मद मार ले जाई। मार जार सब दुनियां खाई॥
आपहि पिता आपहि पूता। आपहि देव आपही भूता॥
आपहि नारिरूप औतरिया। आपहि सकल सृष्टि विस्तरिया॥
आपहि कर्म धर्म उपजावन। आपहि रचै आप विनसावन॥
तातें भेद बताऊँ तोहीं। ज्ञानी होय समझ करलेही॥
धर्मदास को संशय छूटा। जन्म २ के पातक टूटा॥

ज्ञानी सों कहिये उपदेशा। मूरख सों जिन कहो संदेशा ॥
संशय कीन्ह सकल जग भंगा। काहु न चीन्हा संशय अंगा ॥

साखी-कहैं कबीर सो बाचि है, गुरू चरण चित दीन्ह।
अमर मूल निज शब्द है, हंसाचित गहि लीन्ह ॥

चौपाई।

धर्मदास तुम करो विचारा। बिना शब्द नहिं उतरो पारा ॥
सार शब्द सों सब उपजावा। नारि पुरुष दोई निरमावा ॥
सूरज पुरुष चंद्र है नारी। यह घटमें द्वै रूप सवाँरी ॥
जैसे धातु कनककी एका। सांचा माही रूप अनेका ॥
पाप पुण्य रूपहि सों बांधी। कीन्ह धर्म यह अगम अगाधी ॥
पाप रु पुण्य भर्म है भाई। धर्म राय सब भर्म उपाई ॥
भर्म अमल तबही मिट जाई। सत्य नाम जब रहे समाई ॥
जब लग भर्म अमल है भाई। तब लग नाम बूझ नहिं जाई ॥
बूझ सीख गावे बहु भांती। सुमरन भर्म करै दिनराती ॥
आप न चीन्हे मूढ गँवाँरा। भर्मी भ्रम भूला संसारा ॥
धर्मदास तुम भर्महि छाडो। निर्भय होय नामचित माडो ॥
जो तुम भर्म करो जो माहीं। तो कस हंस लोक कह जाहीं ॥
भर्म छोडके भक्ति दृढावहु। यह विधि हंसन लोक पठावहु ॥
तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा। तुम्हरी मुहर चले संसारा ॥
हाथ तुम्हार जीव सब तरहीं। भवसागर तें हंस उबरहीं ॥
धर्मदास जग पारस देहू। जीव छुडाय काल सों लेहू ॥
पारस नाम कहेउ उपदेशा। मूरख सों जिन कहो संदेशा ॥

छंद-ज्ञानी कहैं यह भेद धर्मनि देहु तुम समझायके।
रहन गहन विवेक बानी कहहु सकल बुझायकै ॥

नाम पारस परस घट महँ काग होय मराल हो।
अपर लोकहिं वास कर तहँ नाहिं काल कराल हो॥
सोरठा-करलेहु आप समान, गुरु भृंगी यह जीवको।
देकर नाम निशान, रूप बरख पलटायकै॥
इति श्रीअमरमूल ग्रन्थ नाममहिमावर्णन तृतीय विश्राम।

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास उठ बिनती आई। तुम परताप हंस मुक्ताई॥
किहि विधि पलटे जिवकी काया। सो समुझाय करो मोहे दाया॥
हो सतगुरु तुम अन्तर्यामी। पारस भेद कहो मोहे स्वामी॥

सद्गुरु वचन।

कहे कबीर सुन सन्त सुजाना। पारस भेद सुनाऊँ ज्ञाना॥
ज्ञानी काहिं कहैं शब्द है सारा। यह पारस नें हंस उबारा॥
पारस पान बालक कहँ दीजै। ताते हंस काल नहिं छीजे॥
कामिनि कहँ पारस है देवा। धर्मदास लखियो यह भेवा॥
यही रहन तुम पंथ चलाओ। जीवन बोध लोक पहुँचाओ॥
तीनहु विधि यह कहे बुझाई। जो मानें सो लोक सिधाई॥
पुरुष होय शब्द नहिं जाना। निश्चय हुइ है नरक निदाना॥
बालक हो बीरा नहिं पावै। कैसे के वह लोक सिधावै॥
कामिनि हो पारस नहिं लेही। गुरु सोई जो पारस देही॥
कामिनि जो सो पारस लेही। कैसे मुक्ति होय पुनि तेही॥
यासे गुरु जो अन्तर करई। धर्मराय के फंदा परई॥
गुरु नहिं शिष कहँ ज्ञान बतावा। यह गुरुमें फिर धोख समावा॥
शिष्य जो गुरु सो अंतर राखा। शिष महँ धोखा सत हम भाखा॥
गुरु सोई जो शिष्य समुझावे। शिष्य सोई जो गुरु मन लावे॥

गुरु कहँ पैंट करे अधिकाई। निश्चय नरक जाय रे भाई ॥
तुम सों भेद कही निहतंता। निश्चय वचन सुनो मतिमंता ॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास विनवें कर जोरी। स्वामी सुनिये विन्ती मोरी ॥
नारी नाम नरक की खानी। सो गुरुको किमि दीजे आनी ॥
सकल नरक नारी ढिग कहिये। सोई नरक गुरु कैसे चहिये ॥
गुरु तो ब्रह्म रूप हम जाना। नर्के भोगे सो कौने ज्ञाना ॥
गुरुकी महिमा अगम बताई। नीच वचन कैसे कहुँ साँई ॥
नीच सोई जो नीचो कहे। नीच पंथ सों पार न लहे ॥
ऊँचा होय सो गुरु पद धारा। नीचा छोड ऊँच भव पारा ॥
नीचे कर्म काट गुरु दीन्हा। गुरका वचन मान मैं लीन्हा ॥

दोहा-सो अब मोहि बतावहु, तुम गुरु अगम अपार।
धर्मदासकी बीनती, सुनियो हो करतार ॥

साखी-रहिन ज्ञान तुम भाखिया, सत्य शब्द ठहराय।
व्यभिचारी महँ सत कहौं, कहो गुरू समुझाय ॥

सद्गुरुवचन-चौपाई।

कहैं कबीर सुनों धर्मदासू। अब यह भेद कहौं तुम पासू ॥
हम जानी तुम संशय छूटा। काल कठिन भव तुम कहँ लूटा ॥
काल केरिगति तुम नहिं जाना। झूठी माया में लिपटाना ॥
जब जाना निज ब्रह्म स्वरूपा। ता कहँ नाहिं रंक अरु भूपा ॥
नाम अमल रस छाके अंका। ताको कहा नरककी शंका ॥
तुम कहँ जीव बुद्धि नहिं छूटा। ताते जमरा फिर २ लूटा ॥
धर्मराय की गति नहिं जानी। हर मंदिर उपजाओ आनी ॥
यह बाजी महँ जीव भुलाना। शिवहिसमाधि लगावहि ध्याना ॥
विष्णु रूप काहू नहिं जाना। सुर मुनि नर बूडे अभिमाना ॥

यही बचनमें सब जग बंध्या। नाम बिना नहिं छूटत फंध्या॥
झूठी माया सब जग फंदा। फंद कटे बिन नहिं निर्द्वन्दा॥
अज्ञानी जिव पर है फांसा। नर्क स्वर्ग दोऊ कर आशा॥
संशय काटन को हम आए। धर्मराय सब दुनियां खाए॥
ज्ञान संवाद तुम कहँ समुझाए। तुम कहँ धर्मराय भमाए॥
बचन हमारे दोष लगाए। झूठी माया तुम लिपटाए॥
शिष्य साँई गुरु बचनहि माना। आप ज्ञान बूझे नहिं ज्ञाना॥
गुरु प्रतीति हृदये नहिं आई। तातें बूडी सब दुनियाई॥
बूड़त जाह थाँह नहिं पावा। तातें जन्म २ भर्मावा॥
तब सतगुरु भये अन्तर ध्याना। धर्मदास मन महँ पछताना॥

धर्मदास वचन।

दया करो गुरु पूरन स्वामी। मैं नहिं जाना अंतर जामी॥
हौं अज्ञान तुम मर्म न जाना। जान बूझ भूले अभिमाना॥
क्षमि अपराध मोर प्रभुराया। मोरे चित्त जो अन्तर आया॥
तुम गुरु सतगुरु ब्रह्म समाना। मैं शिष औंधू महा अज्ञाना॥
कुवचन वचन बोल जो भाखा। माता पिता हृदये नहिं राखा॥
करुणा मय गुरु अन्तर्यामी। करहु दया अब मोपर स्वामी॥
जो नहिं दर्शन पाऊं आजू। तजौं प्रान मैं तुम्हरे काजू॥
हे साहिब तुम पथ जो दीन्हा। तातें तुमहि बूझ हम लीन्हा॥
साखी-धर्मदास बिलखत बदन, करुणाबहुबिधि कीन्ह॥
दर्शन बिन अति विकल है, जल बिन तलफत मीन॥

सद्गुरु बचन-चौपाई।

तबहिं कबीरदया चित्त आई। धर्मदास जब दर्शन पाई॥
दर्शन पाय भयो आनंदा। जैसे चकोर मिलत है चंदा॥

पहि गुरुचरण बंदगी कीन्हा। चरण धोय चरणामृत लीन्हा ॥
बिन्ती कीन्ह चरण चितलाई। महा प्रसाद दीजिये सांई ॥
आमनिको आज्ञा तब दीन्हा। नाना व्यंजन तुरतहि कीन्हा ॥
कंचन थार आरती चारी। सेवा बहुत हृदयमें धारी ॥
सुत नारी सब चरणन लागे। प्रेम प्रतीत भक्ति मन पागे ॥
चरणामृत सबही मिल लीन्हा। दिव्य ज्ञान सब कहँ कर दीन्हा ॥
साहिब चौका बैठे जाई। बहुत भांति कर आसन लाई ॥
परस थार जब आमनि नारी। सुन्दर बदन प्राण अतिधारी ॥
मार २ प्रसाद ले आवहिं। प्रेम भाव साहिब मन भावहिं ॥
पाय प्रसाद पुनि अचवन लीन्हा। धर्मदास तब बिन्ती कीन्हा ॥
दया करहु अब मोपर स्वामी। बन्दी छोड वर अन्तर जामी ॥
तब दीन्हऊ प्रसाद गुसाई। धर्मदास र्यों मन माँई ॥
जेतक साथ रहे घर माहीं। वह सब आनंद भये मन माहीं ॥
आमनि तबही पलँग बिछावा। सतगुरु तहां आन पौढावा ॥
धर्मदास तब पंख डुलावैं। आमनि चरण चापि सुख पावैं ॥
सकल साध मिल बंदगी कीन्हा। तन मन धन साहिबकहँ दीन्हा ॥
मेटी सकल जगत की लाजा। तातें होय जीव को काजा ॥
धर्मनि तहां निछावर करहीं। बार २ बिन्ती अनुसरहीं ॥

साखी—यह तन लेव गुसाँई, जो होवे मम काज।
तन मन धन कर निछावर, सुख संपति कुल लाज ॥

सद्गुरुवचन—चौपाई।

कर धर तिज्या पर बैठावा। अन्तर गति स्थिर ठहरावा ॥
जोई मुख सों भीतर देखा। सबहि कसौटी कीन्ह परेखा ॥
साहिब तबही दाया कीन्हा। मास्तिक हाथ आमनिके दीन्हा ॥
जाहु न अपने घरके माहीं। सत्य तुम्हार देखे मन माहीं ॥

यह मन कर्म अकर्म करावे । देहके स्वारथ नाच नचावे ।
तातें तुम मन थिर हम जाना । काल चरित्र छूटा अभिमाना ।
हमरे देह काम नहिं होई । तुम अहंकार सकल हम खोई ॥
धर्मदास तुम वंश उजागर । हंसन पहुंचावहु सुख सागर ॥
निश्चय हुई है मुक्ति परवाना । सत्यलोक कहि देव पयाना ॥
वंश तुम्हार जहां लग होई । इनके हाथ मुक्ति सब लोई ॥
वंश व्यालिस अचल तुम्हारा । तिन के हाथ मुक्ति संसारा ॥
व्यालिसमाहिं त्रयोदस भाखा । अंश हमारहु हैं निज शाखा ॥
नाम जानेसे सबै उबारा । बिना नाम बूडा संसारा ॥

धर्मदास बचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
हमरे वंश कहँ पारस देई । तुम्हरे दरश बहुर कब लेई ॥
यही अर्ज मेरी सुन लीजे । वंश हमार आपनो कीजे ॥
जिहिंते मुक्ति होइ सब केरा । सो मोहे स्वामी कहो नवेरा ॥

सद्गुरु बचन ।

तुम्हरे वंश को कहो उपदेशा । जाते होय हंसको भेषा ॥
जो कोइ हंस होय जगमाहीं । सो उबरहिं वंशनकी बांही ॥
वंश तुम्हार जे बालक होई । तिनसौं पारस ले सब कोई ॥
जा कहँ नाहिं व्यापे कामा । निसदिन रहे शब्दमें धामा ॥
रहित गहिनसौं स्थिर अंगा । मनसा बाचा सत्य प्रसंगा ॥
सत पारस कौ जाने भेदा । आतम परसै सूक्षम भेदा ॥
ऐसा सज्जन शब्द सनेहा । प्रकट कबीर तासुकी देहा ॥
तिनसौं पारसभेद न कीजे । वंश मोर जो शब्द पतीजे ॥
पारस माहिं भेद जो करई । कहैं कबीरसो किहिं विधि तरई ॥
बालक बोध के पंथ चलाओ । बिना पंथ सोला नहिं पाओ ॥

बालक तेरे वंशके हाथा। पंथ दीन्ह मैं तिनके हाथा॥
मुक्ति जान कर राखै गोई। तेहि सम द्रोही और न कोई॥
शब्द जान कर पंथ चलावै। देश २ फिर सब समझावै॥
तीन देश गँवनई कराई। सुते बंत हंसन मुक्ताई॥
पुरुष आज्ञा जो मोकहँ दीन्हा। मुक्ति भेदसों सब कहि दीन्हा॥
सार शब्दका भेद जो पावा। यह सब ज्ञान तोहि समझावा॥
बिना नाम मिट है नहिं संसा। नाम जान सो हमरे वंशा॥
नाम जान सो वंश कहावै। नाम बिना सो मुक्ति न पावै॥
वंश तुम्हार नाम जब पाई। भवसागरतें लोक सिधाई॥
नाम न जान करै अहंकारा। सो जिव परि है भवजलधारा॥
नाम जान सो वंश हमारा। बिना नाम बूडा संसारा॥
बिना नाम सबही अभिमानी। नाम प्रचय कोइ कोई जानी॥
नाम निहअक्षर कहा बुझाई। अमरमूल महँ ऐसो आई॥
निह अक्षर को पावै भेदा। सोई हंसा होय अछेदा॥

साखी-कहे कबीर विचारिके, निःअक्षर को भेद।
निःअक्षर जो पाइहीं, सोई हंस अछेद॥

चौपाई।

निह अक्षर तुम ज्ञान सुनाओ। जंबू द्वीप हंस मुक्ताओ॥
ऐसी धरन धरे जो कोई। निश्चय पार पाय है सोई॥
तुम धर्मदास पंथके राजा। तुम्हरे हाथ जीव को काजा॥
यही मता हम तुम कहँ दीन्हा। दूसर कोइ न पावै चीन्हा॥
अक्षर भेद बसै जिहि अंगा। निस बासर हम ताके संगा॥
सत्य लोक महँ बासा पाई। अमृत भोजन करै अघाई॥

छंद-यही महिमा जीव धरहे, नाम करै सतलोक हो।
काल फन्दा काटके है, पांचै हंसन थोक हो॥

सुमन सिज्या बास लीन्हो, असन अमृत पावहीं।
वस्त्र अम्मर पहिरके तिन, जरा मरन नसावहीं॥

सारठा-षोडश भान प्रवान, धर्मनि शोभा हंसकी।
पायो शब्द प्रवान, अजलोक बासा कियो॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल धर्मदास कसोटी, पारस भेद वर्णन।
चतुर्थ विश्राम।

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास तब विन्ती कीन्हा। अबहूं साहिब हम नहिं चीन्हा॥
जब तें दाया भई तुम्हारी। भयो प्रकाश हृदयमें भारी॥
अमर लोक के हो गुरु बासी। कारण कवन आये अविनाशी॥
मृतलोक आए किहिं काजा। धर्मराय बड पामी राजा॥

सद्गुरु वचन।

धर्मनि सुनो वचन चितलाई। जीवन काज पुरुष पठवाई॥
सत्यलोक तें जग में आवा। धर्मराय मोहे देखन धावा॥
धर्मराय तब पूछी बाता। कवन काज तुम आयउ ताता॥
मृतलोक में अब मैं आऊं। हंसन काज पुरुष पठवाऊँ॥
धर्मराय तब नोलन लीन्हा। हमरे देश मुक्ति तुम दीन्हा॥
मैं तो तीन लोक कर राजा। तुम कस करो जीव कर काजा॥
यह तो लोक पुरुष मोहे दीन्हा। तुम कस मोहे छुडावन लीन्हा॥
अजहूं भली है जाहु सुवाई। जीव जन्तु मारों सब ठाई॥
अगम अपार निरञ्जन देवा। तुम नाहिं जानत मोरो भेवा॥
किहि विधि हंस उतारो पारा। कौन भेद ले करो पसारा॥
तब हम कहा सुनो धर्मराजा। जानत नाहिं मर्म तुम काजा॥
हम बल एक शब्द का आई। तेही के बल हंस मुक्ताई॥

जहां नाम तहां तुम नहिं कोई। बिना नाम है तुम्हरी छोई॥
यह विधि होय हंस परवाना। आवा गमन ताहु नहिं जाना॥

धर्मराय वचन।

जेतिक नाम सुख सुम्रन करिया। सो सब नाम हमारे धरिया॥
जो कोइ धर्म करहि संसारा। सो सब मोर आहि व्यवहारा॥
बहुत भांति मैं फंदा कीन्हा। शंकर सहित बांध मैं लीन्हा॥
कवन नाम हंसन मुक्ताओ। सो स्वामी मोहे भेद बताओ॥

ज्ञानी वचन।

नाम हमार पुरुष के केरा। वही नाम सों हंस उबेरा॥
धर्मराय तुम ताहि न जाना। अपने अवगुण भये बिगाना॥
यही नाम आपन घट लेते। जीवन कष्ट नाहिं तुम देते॥

धर्मराय वचन।

परम पुरुष है मोरा नाऊं। दूसर पुरुष कहां निर्माऊं॥
मोरे आगे कवन कहावा। सब कहँ मार जार भमावा॥
तीन लोक महँ जीव पसारा। उन कहँ मार करों संहारा॥
ब्रह्मा पुत्र हमारो भयऊ। अंतकाल ताही दुःख दयऊ॥
शिवसमाधि कीन्हा अहंकारा। प्रलय काठ करो जर छारा॥
विष्णु बडे सबही में अंशा। तिनकहँ मार करो निरवंशा॥
अपने अंश यही गति देहूं। सृष्टि संहार प्रलयकर लेहूं॥
तुम तो आए हंस उबारन। कवन भांति करिहो जगतारन॥

ज्ञानी वचन।

धर्मराय कहँ तब समुझाई। तुम जीवनके दुष्ट कहाई॥
जब तुम कीन्ह चोरको काजा। तातें पुरुष मोहिं उपराजा॥
नाम एक मोहे दीन्ह अमोला। वोही नाम जीव बन्दी खोला॥
ठाकुर नाम तुम्हारा होई। तीन लोक ठकुराई समोई॥

पुरुष नाम तुम दीन्ह बिसारी। आपहि पुरुष रूप बिस्तारी।
योग सन्तायन हमरो नाऊ। तोहि कारण मोहे निर्माऊ।
तुम निज धर्म करौ अहंकारा। आदि ब्रह्म अहै रखवारा॥

धर्मराय वचन।

धर्मराय तव उत्तर दीन्हा। हम कहँ दया पुरुष नै कीन्हा॥
तुमहीं दया करहु मोहि पाहीं। जिहितें मोर रहै जग छांहीं॥
तुम जेठे हम लहुरे भाई। हम ऊपर तुम काहि पठाई॥
पुरुष समानहिं तुमकहँ जाना। अपने मन तुम दूसर ठाना॥
कहो उपदेश सोइ उपदेशा। जातें ऊजर होय न देशा॥
पुरुष वचन हम शिरपर मानी। आज्ञा भंग करों नहिं ज्ञानी॥

ज्ञानी वचन।

योग सन्तायन बोलन लीन्हा। यह उपदेश पुरुष तोहि दीन्हा॥
जो जिव पान प्रवाना पावै। ताके निकट काल नहिं जावै॥
जो कोइ जीव होइ है ज्ञानी। ताकी तुम कीजो महिमानी॥
सार शब्द जो बालक पावै। तासों प्रेम बहुत तुम लावै॥
यह उपदेश हमारो लीजे। पुरुषके वचन मान शिर लीजे॥
जो इतना नहिं करो कबूला। तो तुम सहहु दुःख बहु शूला॥
पान प्रवाना शब्द न होई। जस जानो तस करिहो सोई॥
इतना धर्मराय जब जाना। जो तुम कहा सोई परवाना॥
बिन्ती एक हमारी लीजे। नाम सन्देश मोहि कहि दीजे॥

साखी—मैं उपदेश जो पावहूँ, सो सब कहहु तुम्हार।
तुमहि पुरुषके आगुवा, हंस छुडावन हार॥

ज्ञानी वचन—चौपाई।

तब साहिब जो कहिबे लीन्हा। तुम नहिं पावहु नामको चीन्हा॥
जब तुम सत्य लोकमहँ रहिया। चौंसठ युगलग सेवा करिया॥

तबै पुरुष आज्ञा तोहि दीन्हा। सत्रह खण्ड राज्य तब दीन्हा॥
तब तुम मान सरोवर जाई। कन्या देख बहुत सुख पाई॥
पुरुष तोहि तब मार निकारा। तब हम भएऊ हंस रखवारा॥
शब्द वार तब पुरुष सम्हारी। तुम्हरे टारे टरत न टारी॥
मूल शब्द का पावै भेदा। सोई हंसा होय अछेदा॥
सोई भेद तुम नाहिंन पावा। कितनो सेवा कर गुहरावा॥
तुम कुवादि औगुण बड कीन्हा। कुरुष आय पेल जो दीन्हा॥
तब तै तुम्हरो भिन्न पसारा। राज पसारेउ यह संसारा॥
हम कहँ दया हंस की आई। दीन्ह पयान लोक तैं भाई॥
वचन हमार मान सिर लीजे। शब्द खोज अब नाहिं करीजे॥
जब तुम पाहौ शब्द ठिकाना। लोक तुम्हार न रहे निदाना॥
सबे जीव सत लोकहि जाई। तुम्हरी नहीं रहै ठकुराई॥
येही मंत्र हमारो धरहू। शब्द खोज अब नाहीं करहू॥

साखी-महा प्रलय जब होय है, देखि हो लोक हमार।
तब हम तुम कहँ मिलहिंगे, शब्द होय टकसार॥

चौपाई।

सत्रह खण्ड तबहि मिटिजाई। रहै पुरुष तब शब्द समाई॥
धर्मराय तुम पुरुष के अंशा। मिलिहै शब्द मिटै सब संसा॥
इतना वचन धर्म सौं कीन्हा। पीछे जगही ध्याना कीन्हा॥
ता पाछे संसारहि आये। पेडरमो बहु जीव छुडाये॥
तारु सिद्ध पर्वत पर पाये। तिनसों ज्ञान भेद समुझाये॥
चारों सिद्ध काल सौं बाचा। दिव्य ज्ञान हृदय मँहँ सांचा॥
ता पीछे तुम्हरे ढिग आए। धर्मदास तुम दर्शन पाए॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास विनती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
अगम ज्ञान तुम मोहिं लखावा। हृदय कमल तुम मोर जुडावा॥

धन्य भाग्य सतगुरु पगु धारा। अब भयो जीवन सुफल हमारा॥
एक वचन मोहि कहौ बुझाई। जिहितें जीव की संशय जाई॥
काल कठिन सो काहुन जाना। सो मोसों कहिये परवाना॥
जीवत काल चीन्ह जब पावै। तब तुम्हरे सतलोक सिधावै॥
जीवत काल चीन्ह नहिं जाई। तो कैसे सतलोक सिधाई॥
तुम तो ज्ञान बहुत उपदेशा। बिन देखे सब लगे अन्देशा॥
दया करो अपनो जन जानी। काल चिह्न याऊ पहिचानी॥
बिन चीन्हे नहिं होय उबारा। भवसागर बाँकी है धारा॥
काल कठिन है जमको फंदा। किहि विधि जीव होय निरद्वन्दा॥
निरद्वन्दी मोहे करो गुसाई। तो मैं पंथ चलाऊँ जाई॥

सद्गुरु वचन।

साहिब तब कहिने चित धारा। धर्मदास सुन काल पसारा॥
काल अमल संशय है भाई। प्रथम काल तुम चीन्हो जाई॥
जेतक कर्म करे संसारा। सो सब आहि काल ब्योहारा॥
काल ख्याल जानत नहिं कोई। कर विपरीत सबन कहँ खोई॥
दस औतार कालने छलिया। काल अपर्बल सब कहँ दलिया॥
मीन स्वरूप काल औतारा। कूर्म स्वरूप महा जो धारा॥
बारह रूप औतार जो कीन्हा। नरसिंहरूप औतार जो लीन्हा॥
वामन होके बलि कहँ छलऊ। परसराम होय छत्री दलऊ॥
राम रूप होय रावन मारा। कृष्ण रूप होय कंस पछारा॥
बोध रूप जगन्नाथ औतारा। लीला बहुत भांति सम्हारा॥
दस औतार कालके धरिया। म्लेच्छ मार सतयुग सो करिया॥
इनही देह धरी युग माहीं। काल अमल ब्यापे तिन पाहीं॥
काल मर्म काहू नहिं जाना। सबकहँ पकर कीन्ह पिसवाना॥
काल पुरुष काहू नहिं चीन्हा। काल पाय सबहिन गहि लीन्हा॥

काल पायकर जागहि योगी। कालकष्ट सुन फिरहिं वियोगी॥
काल पायकर पाप जो करहीं। काल पाय सब पुण्यहिं धरहीं॥
काल पायकर सतयुग भयऊ। काल पाय त्रेता है गयऊ॥
द्वापर काल पायकर आवा। कलयुग काल पाय निरमावा॥
कालहि पाय चला सब जाई। काल पाय संसार समाई॥
काल पाय कर भक्ति कराँवे। काल पायकर लोकहि आवे॥
काल भेद मैं कहा विचारी। धर्मदास तुम ज्ञान सम्हारी॥
काल कालको मर्म न जाना। सत्य पुरुष तैं भए उतपाना॥
अलख निरञ्जननाम कहावा। पुरुष प्रसंग रूप बनि आवा॥
पुरुष प्रगट जब रूप बनावा। सत्य लोक जब नाम धरावा॥
तबहीं पुरुष गुप्त होय गयऊ। काल रूप यह मनकर भयऊ॥

साखी–काठ काल सब कोइ कहैं, काल न कीन्ह विचार।
मन थिर होवे शब्द महैं, काल रहे झकमार॥

चौपाई।

ना कहुँ आवे ना कहुँ जाई। शब्दहि माहीं सहज समाई॥
जा देखहुँ तैसा है सोई। गुप्त प्रगट वे रहै समोई॥
गुप्त ये प्रगट एक कर भयेऊ। दुतिया भावकर ज्ञान न भयेऊ॥
दुतिया दुर्मत दासी होई। ज्ञान विचार कहाँ रहो सोई॥
तीन कालसों जो रहे थीरा। सोई पुरुष कायाको बीरा॥
सोइ बीर शब्द निज मूला। मंत्र ध्यान सोई स्थूला॥
वही शब्द तें काल डराई। नातर करि हैं कोट उपराई॥

साखी–दुनिया चेरी काल की, मूरख बूझे नाहिं।
जाकी दुनिया मिट गई, ते आतम ब्रह्म समाहिं॥

चौपाई।

जैसा है तस कहा न जाई। ज्ञान विना बूझे नहिं भाई॥
आय ज्ञान तब परगट भयऊ। दुतिया भाव सबै मिट गयऊ॥

दीपक ज्ञान भयो उजियारा। काल तिमिर मिटा अँधियारा॥
भए आनन्द गुरु जब पाये। ऊँच नीच सब दूर बहाये॥
ऊँच नीच सब समकर जाना। ऊँच नीच सब झूठ बखाना॥
ऊँच नीच सब झूठहि लागे। जब आतम परआतम पावै॥
झूठा लोग न बूझे काई। सब संसार झूठ है सोई॥
समता ज्ञान प्रकाश कराई। और ज्ञान सब झूँठ है भाई॥
झूँठ साँच संसार समाना। सत्य शब्द नाहीं पहिचाना॥
झूँठ साँच दोई मिट गयऊ। ज्ञानप्रकाश जाहि घट भयऊ॥
धर्मदास तुम बूझहु ज्ञाना। काल मर्म सुनहुँ अब काना॥
सद्गुरु दया जाहि पर होई। अमरमूल कहँ जाने सोई॥

साखी–अमर मूल कहँ जानई, काल दशा मिट जाय।
काल परख कर बूझ है, तब नहिं काल समाय॥

चौपाई।

काल निहकालका भेद सुनाऊँ। धर्मदास मैं तोहि लखाऊँ॥
निह अक्षरका भेद निज पावै। निहअक्षर माहिं जाय समावै॥
जो नहिं जान निहअक्षर भेदा। ता महँ काल करत है छेदा॥
निह अक्षर बिन काल न जीतै। यह ज्ञान केता कर बीतै॥
योग यज्ञ तप काल पसारा। यज्ञ दान सब काल व्योहारा॥
काल गती संसार है भाई। बिरला जन कोई लख पाई॥

साखी–संशय काल शरीर महँ, विषम काल है दूर।
ताहि लखत कोई संतजन, जार करें सब धूर॥

चौपाई।

जीव बुद्धिसों नाहिन चीन्हा। काल न चीन्हत मतिके हीना॥
कबहूँ सुख कबहूँ दुख होई। काल जाल जानत नहिं कोई॥
मानस कह मनमाहिं बिचारी। निरालंब होय प्रभुहि पुकारी॥

कबहूँ कहे प्रधुने सब कीन्हा। कबहूँ कहत सब मोर अधीना ॥
स्वारथ रूप सदा चित लावे। परमारथ कबहूँ नहिं भावे ॥
साखी–कहै कबीर धर्मदास सों, तुम सुनियो चितलाय।
काल भेद नहिं जानहीं, यूरख रहे भुलाय ॥

चौपाई।

जो देखा सो काल पसारा। जो बिनसे सो काल अहारा ॥
धर्मदास तुम चित थिर करहू। मनकी डगमग सब परिहरहू ॥
भूत भविष्य वर्तमान जो कहिये। यहि विधि तीन काल निर्वाहिये ॥
भूत सबै है कालकी काया। भविष्य होय सोइ जीव कहाया ॥
वर्तमान परमातम जानो। यहि विधि तीन काल पहिचानो ॥
जोई भूत सोई वर्तमाना। सोई भविष्यत भर्म कर जाना ॥
भूत भविष्यत और वर्तमाना। मन थिर भए सबै पहिचाना ॥
शब्दै माँहि हंसा निरबहई। मन बिन कर्म नामको गहई ॥
मनके रूप समानी माया। सब संसार व्यात यह छाया ॥
मन थिर कर परमातम जाना। यहि विधि तत्व लेहु पहिचाना ॥
काल जाल तें तेही छूटे। काल बिचारे ताहि न लूटे ॥
यही भेद धर्मन तुम लीजै। शब्द माहि वासा तुम कीजै ॥
काल ज्ञान संसार बखाना। काल स्वरूप नहीं पहिचाना ॥
साखी–इतना भेद सुन लीजिये, काल को ज्ञान बखान।
काउ पाय कर होत है, हम सों फिर २ ज्ञान ॥

धर्मदास बचन–चौपाई।

धर्मदास तब पांयन परई। सत गुरु सों बिन्ती अनुसरई ॥
जो तुम कही सोई परवाना। काल पायकर फिर २ ज्ञाना ॥
तुम प्रसाद मुक्ति फल पावा। यह भवसागर बहुर न आवा ॥
हम सों ज्ञान कहो फिर होही। सोई बात कहो निज मोही ॥

सद्गुरु वचन।

तब साहिब अस कहिबे लीन्हाँ। तुम नहिं पाओ ज्ञानको चीन्हाँ॥
हम तो सत्यलोकके वासी। तहँ नहिं काल बसे अविनाशी॥
में जो कहा मृतलोक व्यवहारा। काल पाय सब होय औतारा॥
काल पाय विनसे संसारा। कालै सब विनास जग डारा॥
काल मर्म काहू नहिं जाना। जीव जन्तु सब काल समाना॥
कालहि पाय सृष्टि निमाई। काल पाय फिर माहिं समाई॥

साखी–काल पाय जग ऊपजो, काल पाय वर्त्ताय।
काल पाय सब विनसही, काल काल कहँ खाय॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

यह सुन धर्मदास हर्षाने। सद्गुरु रूप हिये पहिचाने॥
तुम साहिब मोहे कीन्ह निहाला। आपन जान कीन्ह प्रतिपाला॥
विन्ती एक करत संकाई। हे सतगुरु मोहे भाख सुनाई॥
कालहिकी गति कहि समुझावा। अचरज बात मोर मन आवा॥
प्रथम पुरुषकी प्रथमहि काला। मोहि बतावहु भेद रसाला॥

सद्गुरु वचन।

तब सतगुरु कहिबे अनुसारा। धर्मदास सुन शब्द हमारा॥
प्रथम हते जब शून्यस्वभाऊ। शून्य ते पुरुष शब्द निमाऊ॥
शब्दते पुरुष शब्द निर्मावा। यही भेद बिरले जन पावा॥
जाको कहिये शून्य स्वभाऊ। काल शून्य एकै समुझाऊ॥
काल भेद कोई नहिं जाना। धर्मदास तुम सुनियो ज्ञाना॥
शून्यहि मांहि शब्द उचारा। धर्मरायको भयो पसारा॥
प्रथमहि जिन्दरूप इक भयऊ। सत्तर युग सोवत चल गयऊ॥
तब साहिब मोहे आज्ञा दीन्हा। जिन्द जीवकहँ तुम नहिं चीन्हा॥
जिन्द जीव कहँ आन जुलाई। सत्तर युग उन सोय सिराई॥

तब हम जाय शब्द अस बोला। सोवत जिन्द नाहिं चित डोला ॥
का सोवत तोहि पुरुष बुलाई। नहिं जागहि तिहि नींद सुहाई ॥
तब हम तेहि जगावन लागे। जिन्द न जाग परम अनुरागे ॥
जगे न नींद भर्म बहु आवा। तब हम एक शब्द उपजावा ॥
काल शब्द कहँ टेर पुकारा। सुनकर जिन्द भयो संचारा ॥
काल शब्द सुन जिन्द डराना। तबहीं आय चरण लिपटाना ॥
काल नाम सुन ऐसा भाई। काल नाम सुन भक्ति कराई ॥
धर्मदास सुन कालको भेवा। काल बिना नहिं करै निषेवा ॥
काल नयन भर देख न कोई। कालहि पढ़ २ गये बिगोई ॥
वेद शास्त्र सुन पंडित कहाई। काल पुरुष सब जिव भर्माई ॥
साधू मिलकर भक्ति कमाई। जातें काल फांस नहिं आई ॥
काल शब्द ना होतो भाई। तौ काहे को भक्ति कराई ॥
कालके डर तपसी तप साधा। इन्द्री पांच काल डरबांधा ॥
कालहिके डर योग जो करई। कालहि डरतें दान जो भरई ॥
कालहि डर भाखै सत जाना। कालहि डर छोडे अभिमाना ॥
सत्याहि बचन काल डर कहहीं। कालहि डरसे झूठ परिहरहीं ॥
ऐसा डर है कालहि केरा। धर्मदास तुम करहु न बेरा ॥

साखी-ऐसा है कालका, सुनहु हो धर्मदास।
एक नाम कहँ जानके, निडर रहो सुखवास।

चौपाई।

कालहि डर दुनियां सब बूडी। काहु न देखी कालकी मूडी ॥
तुम धर्मदास निडर हो रहहू। नाहिन काल झूठ परिहरहू ॥
छंद-यह भांति पंथ चलाव जगमें हंस लोक पठाइयो।
ज्ञान गम्य लखायके फिर शब्दसार लखाइयो ॥
हृदय जेहि पर होय गुरुकी रहन गहन समावही ॥
काल कष्ट निवारके सोई पुरुषलोक सिधावहीं ॥

सोरठा-आप सरीखा जान, ता कहँ शब्द लखाइयो।
धर्मदास छेव मान, यही सिखावन पुरुषको ॥

इति श्रीग्रंथ अमरमूल धर्मराय बाद कालको वर्णन।

पंचम विश्राम।

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास आनंद समाना। विगसेउ कमल उदे जनु भाना ॥
बहुत भांतिसों बिन्ती कीन्हा। मन बच कर्म चरण चित दीन्हा ॥
पदरज लीन्हीं तृषा मिटाई। छूछी सीप स्वाति जिमि पाई ॥
रंकहि निधी मिलगई जैसे। अहिमणि मिले मगन भए ऐसे ॥
चरणामृत बहु विधिसों लीन्हा। गुरु चरणनको में आधीना ॥
अब मैं भेद कीन्ह परवेशा। प्रथम न मानऊँ तुम उपदेशा ॥
अब प्रतीति मोरे मन आई। निश्चय वचन मान तुव सौंई ॥
अबही आय लोक मैं देखा। ज्ञान गम्यसों पाएउ लेखा ॥
भक्ति मुक्ति दोनों हम जाना। दया तुम्हार परी पहिचाना ॥
जेपर दया तुम्हारी होई। ऐसे पदको पहुँचे सोई ॥
हम जान के मान उपदेशा। बिन सतगुरु नहिं मिटत अंदेशा ॥
तुम सतगुरु और सब शिष्या। यही ज्ञान परगट हम देख्या ॥
सतगुरु आप और सब बंशा। सत्य पुरुषको तुम निज अंशा ॥
तुम्हरे वचन लोक पहिचाना। तुम्हरी दया परी अब जाना ॥
यह मन बूझ शब्द है लोका। ज्ञान भयो मिट गयो सब शोका ॥
लोक अलोक एक कर जाना। तुम्हरे वचन सत्य हम जाना ॥
अब मोरे जिव परचय आई। बिन जाने बूडी दुनियाई ॥
नहिं बूडो नाहीं उतराना। यह पाया हम केवल ज्ञाना ॥
एक बचन मैं बूझा साँई। बिन्ती करौं चरण चितलाई ॥

तुम सतगुरु मोहिं दिय उपदेशा । मैं हंसनसों कहौं सँदेशा ॥
यह तो बात कही नहिं जाई । जब पावै तब ज्ञान समाई ॥
जब तुम दया करो हियमाहीं । तबही पाउँ नामकी छांहीं ॥
कहिये बचन मोर मन भावै । जातें हंसा लोक सिधावै ॥

सद्गुरु वचन–चौपाई ।

तब साहिब अस कहिये लीन्हा । सब कहँ देहु शब्दका चीन्हा ॥
जो नहिं पाव शब्द सहदानी । तो कस करहु लोक पहिचानी ॥
सब कहँ ज्ञान गम्य कर देहू । शब्द लखाय आपन कर लेहू ॥
प्रथमहि देहु पान परवाना । ता पीछे फिर ज्ञान लखाना ॥
सकय जान सब कहौं बिचारी । यही भांति सब जिव निवारी ॥
साधन की सेवा चित लावै । सो जिव भवसागर नहिं आवै ॥
गुरुकी दया मान सिर लीन्हा । भावसहित पूजा तिन कीन्हा ॥
इतनो भेद एक नहिं जानी । सो कैसे पुन शिष्य बखानी ॥
ज्ञानवंत कहँ यह उपदेशा । मूरखसों जिन करहु सँदेशा ॥
सार शब्द जाके घट होई । तिहि हंसा सम और न कोई ॥
धर्मदास तुम कहँ नहिं भारा । सबके तारन है करतारा ॥
यह उपदेश कहहु बहु भांती । माने सोई हंस की जाती ॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा । सो चल जैहे यम के द्वारा ॥
यमके हाथ परे सो आई । बहता जाय थाह नहिं पाई ॥

साखी–कहै कबीर धर्मदाससों, दीजो पान प्रवान ।
यही हंस जो पावही, पहुँचे पद निर्वान ॥

धर्मदास वचन–चौपाई ।

हे स्वामी तुम्हरी बलिहारी । अब चौकाको कहो विचारी ॥
कवन शब्दसों आरति साजी । कवन शब्द सतगुरुकी पाँजी ॥

कवन शब्दसों नरियर मोरा। कवन शब्दसों तिनका तोरा॥
कवन शब्दसों चौका करई। कवन शब्दसों दीपक बरई॥
कवने शब्द पान लिख दीन्हा। कवन शब्द प्रसाद जो लीन्हा॥
कवन शब्द मिष्टान्न चढावा। कवन शब्दसों छत्र तनावा॥
कवन शब्द पनवारी साजा। धोती कवने शब्द बिराजा॥
कवन शब्दसों चंदन दीजे। कवन शब्दसों पुहुप चढीजे॥
दल प्रसाद किहिं शब्द बनाई। यही भेद गुरु कहु समुझाई॥

सद्गुरु वचन।

यहै भेद अब तोहि बताऊँ। चौका साज सकल समझाऊँ॥
प्रथमहि तो चौका अनुसारा। सोई शब्द मैं कहौं पसारा॥
सेत सिंहासन चौका चारी। कंचन थार आरती बारी॥
तहाँ धनी जीव बैठे आई। लिखनी लिख बहु भांति बनाई॥
धर्मदास उठ बिन्ती कीन्हा। चन्द्र सूर्य दोइ साखी दीन्हा॥
शब्द माहिं बहु भांति समावा। कदली पत्र जो आन धरावा॥
अमर शब्द उच्चार कराया। अमर प्रवान अमर भइ काया॥
अमर प्रवान अमरकर जाना। अमर शब्द बिरले पहिचाना॥
अमर शब्दका पावे भेदा। कहैं कबीर प्रवान अच्छेदा॥
बीज एक धरती कहँ दीन्हा। पान सुपारी नरिअर कीन्हा॥
सो प्रसाद संतन कहँ आई। सत्त सुकृत के लोक सिधाई॥
तीन लोक सों भिन्न पसारा। बाहर भीतर शब्द पसारा॥
दूधी दुर्मत चित सों मेंटो। एकहि चीन्ह कबीरहि भेंटो॥
यही शब्द मिष्टान्न चढावा। कदली पत्र जो आन धरावा॥
सवा सेर मिष्टान्न मंगावहु। सत्य पुरुषकहँ आन चढावहु॥
सत्य सुकृत कहँ आन चढाई। दीन भाव कर बिन्ती लाई॥

धर्मदास वचन ।

अर्ज एक अब सुनो हमारी । तुम गुरु लीन्हा जीव उबारी ॥
शोध देव हम सकल शरीरू । पीरा मेंटे बाप कबीरू ॥
केते लाख चूक जो परई । किहि कारण नरिअर अनुसरई ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम सुनों ये वाणी । ताकर भेद कहौं परवानी ॥
सवा लाख चूक जो परई । तिहि कारण नरिअर अनुसरई ॥
बहुत भांति सों तत्त्व लखावे । मृत्युलोकमें बहुरि न आवे ॥

सुमिरन नरिअर तिलकको ।

मृत्यु लोक यम को स्थाना । खैंच कबीर ने मारा बाना ॥
बान मार जक यश लीन्हा । तिलक काढ धर्मन कहँ दीन्हा ॥

साखी—पाक नारिअर मोरेके, हंस उतारो पार ।
कंचन कपूर मिलायके, साहिब जीवको करो उधार ॥
खिरचा अबवन लेके, यकटक सुमरो ध्यान ।
कहैं कबीर धर्मदाससों, सोहं शब्द प्रवान ॥

सम्पूर्ण ।

चौपाई ।

तबही दीपक आन प्रकाशा । मानो सत्य लोक कियो बाशा ॥
अब शब्द का पावे भेदा । कहे कबीर तब छोत अछेदा ॥
तबहि पानका लिखनी नीका । अब शब्दका पावे टीका ॥
सत्यका अंक तहाँ लिख दीन्हा । मंत्र उचार एक तब कीन्हा ॥
सुख सागर मोरो स्थाना । तहँवा सेत चढाए पाना ॥
सेत पानका अम्मर काया । सीपमांहि जिमि स्वातिसमाया ॥
भर्मत पवन बिहरत संसारा । निर्मत पवन हंस रखवारा ॥
तबही तिनका बेग तुसावा । जन्म २ के पाप बहावा ॥

सुम्रन तिनका तुरावेका।

असन वसन मन कल्पना, देखो सर्वहि भूत।
कहे कबीर सतगुरु मिले, मिथ्याके मुख थूंक॥

सम्पूर्ण।

चौपाई।

तबै प्रवाना दीजो आनी। मुक्ति होय हंसा पहिचानी॥
दाहिने छोड धर्म स्थाना। बांये दुर्गदानी को थाना॥
आगे चित्र गुप्तिके भारा। नाम सुनायके हंस उबारा॥
टूटे घाट अठासी क्रोरी। हंसा उतरै नामकी डोरी॥

साखी-कितरे वृक्ष कितरे पक्षी, कहां बिलमेउ आय।
कहे कबीर जो गुरु मिले, हंस देहि पहुँचाय॥

चौपाई।

दे परवाना हंस बचावा। ज्ञान परम पद घटहि समावा॥
घट की परिचय कोई पाया। जाते जीत चले यमराया॥
तव ज्ञान का शब्द सुनावा। बिना शब्द पानी नहिं पावा॥
बिना शब्द जो पीवे पानी। मानहु मदिरा रुधिर समानी॥

सुम्रन जल पीवनेका।

आगम सरोवर बिमल जल, हंसा पिये अघाय।
काया कंचन मन मगन, कर्म भर्म मिटजाय॥

सुम्रन स्नानका।

सत्य सुकृत के नीर मँगावा। धर्मके बालक स्नान करावा॥
कर स्नान पुनि शशि नवावा। साहिबके चरणन चित लावा॥
कहे कबीर सुनो धर्मदासा। आदि अंत इक ज्योतिनिवासा॥

साखी-आदि अंत यक ज्योति है, अमरनाम स्थीर।
चौदह भुवन नौ खंडमें, एकहि सत्य कबीर॥

सम्पूर्ण।

सुमरन प्रसाद मालूम करनेका।

निर्भय पदका चौका दीन्हा। शील संतोष ले मज्जन कीन्हा ॥
प्रेम प्रतीत परम उजियारा। सत्य सुकृत है जेवन हारा ॥
सत्य सुकृत की फिरी दुहाई। जल भयो पाक संतन सुखदाई ॥
सब सन्तन मिल कियो प्रसादा। जेवै कबीर जिवावै धर्मदासा ॥
सब संतन प्रसाद जब लीन्हा। मुक्ति अभयपदकहँ तब चीन्हा ॥

साखी–कहे कबीर धर्मदास सों, आरतिकोंपरमान।
ये विधि सेवक जो करै, पावै पद निर्बान ॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

धर्मदास विनती कर जोरी। स्वामी सुनिये विनती मोरी ॥
कवन वस्तु आरति महँ धरई। कवन शब्द ले सेवा करई ॥
सो सब मोहिं कहौ समुझाई। आरति विधि मैं करौं बनाई ॥

सद्गुरु वचन।

प्रथमहि मंदिर सेत सम्हारा। सुर्त निर्त भक्त चितधारा ॥
कञ्चन केर थार बनवाओ। तामें मोती आन धराओ ॥
मुक्ता तो अन बेधे होई। ऐसी विधि प्रकार है सोई ॥
झारी एक कञ्चन की होई। ता महँ दल प्रसाद कर सोई ॥
नरिअर इकसत एक प्रवाना। सवा तीन मन ले मिष्ठाना ॥
पाटम्बर धोती तहँ चहिये। दीपमालिका बहुतक लहिये ॥
नई वेद तहँ आन धराई। कञ्चन और कपूर मँगाई ॥
जरी केर तहां छत्र तनावा। पान सहस्र द्वादश बनवावा ॥
लौंग सुपारी लायची लीजै। मेवा अष्ट भांति धर दीजै ॥
ता पछि प्रसाद सहिदानी। सुखपुञ्ज साधन कर जानी ॥
आरति फल तबही जिव पावै। सवा सेर महा कंद मँगावै ॥
सोना केर कलस धरवाई। तहां प्रवाना लिखे बनाई ॥

परमाना बालक कहँ दीजे। इस रूप ताकहँ कर लीजे॥
ऐसी आरती धरे धर्मदासू। सोई पावे लोक निवासू॥
मन में बहु आनन्द बढाई। आरत फल साईं पुन पाई॥
अपने स्वार्थ आरती करई। भवसागर तें कैसे तरई॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास विनती अनुसारा। तुम सतगुरु मोरे करतारा॥
ऐसी बिधि आरति नहिं करई। सो जिव किम भवसागर तरई॥
कलि में जीव दरिद्री होई। द्रव्य विना किमि भक्ति सँजोई॥
जिहि बिधि होय हंस मुक्ताऊ। सो मोहे स्वामी भेद बताऊ॥

सद्गुरु वचन।

तब साहिब अस कहिके दीन्हा। यही मती हम तुम कहँ दीन्हा॥
एतिक बिधि जापे नहिं होई। सहज भाव आरति करै सोई॥
सवा सेर मिष्टान मँगावे। नरिअर इक तहँ आन चढावे॥
सवासो पान कहे परवाना। लौंग अयची एही बैंधाना॥
धोती एक आन तहँ धरई। सतगुरु केर निछावर करई॥
साधन सों बहु प्रेम बढावे। सत्य रूप होय ज्ञान सुनावे॥
ज्ञान गम्य कर शब्द बुझावे। सन्तन सों बहु प्रेम बढावे॥
पाँचों पद ताही महँ लावे। साधन की सेवा मन लावे॥
ऐसी बिधि सों आरति करे। सो प्राणी भवसागर तरे॥

धर्मदास वचन

जो इतना नहिं करे कडिहारा। ताको मोसो कहो विचारा॥
हे साहिब मोहे कहो पुकारी। बन्दी छोड जाउँ बलिहारी॥

सद्गुरु वचन।

जो इतना नाहीं बन आवे। सो कडिहार पार किमि पावे॥
बारह आरति जो नहिं करै। दो आरति सेवा चित धरे॥

फागुन ओ भादों परवाना। दो आरति नहिं छोड सुजाना ॥
साधन को परवाना देई। वर्ष रोज के कर्म नसाई ॥

साखी–पान प्रवाना पावही, सतगुरु महिमा जान ।
तवही हंसा सत्य है, और झूठ सब ज्ञान ॥

चौपाइ।

धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊं। आरति भेद ज्ञान समझाऊं ॥
अक्षर सार आरती सोई। बिन अक्षर सब गए बिगोई ॥
अक्षर भेद जान परसंगा। ताके काल रहै नहिं संगा ॥
आरति बहुत भांति सो करई। अक्षर भेद हिये नहिं धरई ॥

साखी–अक्षर भेद जाने नहीं, बातें कहै बनाय ।
ताको कहो न मानिये, आपन जीव नशाय ॥

चौपाई।

आरति भक्ति औ अक्षर सारा। और सकल सब झूठ पसारा ॥
जा कहँ अक्षर परिचय होई। आरति फल पावत है सोई ॥
मूल शब्द घट माहिं विराजे। शून्य शिखर अक्षरधुन साजे ॥
ताकी महिमा तुलै न कोई। ऐसा साधू विरला होई ॥
सो कडिहार जो अक्षर जाना। और गुरू सब झूठ ब[illegible] ॥
गुरु सोई जो अक्षर जाना। बिन अक्षर सूरखसम जाना ॥
कडिहार वही जीवन कहँ तारै। अक्षर बिन जिव नरकहि डारै ॥
जो गुरु दगा शिष्यकहँ देता। नरक परै गुरु शिष्य समेता ॥
अक्षर बिन गुरु आरति करई। धर्मराय के फन्दा परई ॥
इतना भेद न जानत प्रानी। पेट के कारण ज्ञान बखानी ॥
जैसे ठगिया करै ठगिहारी। जैसे जानहु सो कडिहारी ॥
अक्षर की परिचय नहीं पावे। आपहि आप जो गुरू कहावे ॥

छंद–कड़िहार सोई सांच है, जिन शब्द सों परिचय करी।
सूरत निर्त्त समेट के सोई, नाम निह अक्षर धरी ॥
रहन सूरे ज्ञान पूरे, पंथ परमारथ ठहो।
दुष्ट मित्र समान यकचित, दुतिय भाव न चितवहो ॥
सोरठा–सद्गुरु सिन्धु कबीर, उन पटतर अब को ठहै ॥
सुनियो धर्मनि धीर, सरिता सब कड़िहार हैं ॥

इति श्रीग्रंथ अमर सूल चौका बंधान वर्णन।

षष्ट विश्राम।

धर्मदास वचन–चौपाई।

यह सुन धर्मदास हर्षाना। जिमि पंकज विकसे लखि भाना ॥
हे सतगुरु मोपर दया कीन्हा। जन्म स्वारथ अब मैंने चीन्हा ॥
धर्मदास कहै कर जोरी। स्वामी सुनिये विन्ती मोरी ॥
यक संशय मोरे घट मांहीं। कौनउ विधि सों छूटत नाहीं ॥
मृतलोक में पाखंड धर्मा। कैसे जीव होय निह भर्मा ॥
तुम सतगुरु निज ज्ञान सुनाया। शिष्य पाखंड तजे नहिं माया ॥
सो मोहे सतगुरु भेद बताओ। तासों जीव होय मुक्ताओ ॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास तुम सुनो बिचारी। पाखंडी गति सब निर्वारी ॥
सत्य शब्द घट नाहिं समावै। ता लग सब पाखंड कहावै ॥
तुम जानतहो शब्द प्रवाना। बिना ज्ञान नहिं शब्द समाना ॥
पाखंड जिव मुक्ति न होई। कितो उपाय करै पुनि सोई ॥
पाखंड जाके हृदये होई। सो हंसा कर मुक्ति बिगोई ॥
जप तप ज्ञान बहुत करजाना। नेम धर्म बहुतक लिपटाना ॥
इतना कष्ट कीन्ह अधिकाई। तो पाखंड भेट नहिं जाई ॥

नाम शब्द घट मांहि समाना। सो पावेगा पद निर्वाना॥
माथे तिलक गले जयमाला। हिय पाखंड न मिले भुपाला॥

साखी—कहैं कबीर विचारके, सुनियो हो धर्मदास।
सत्य शब्द जिहिं घट बसे, तहँ पाखंड विनास॥

चौपाई।

धर्मदास तुम सत्त के जानहु। पाखंड भर्म हृदय मत आनहु॥
जाको मन पाखंड सों राता। सोई नरक कहँ निश्चय जाता॥
पाखंड हिये भक्ति ना होई। सत्य वचन मानो घट सोई॥
दान देय औ पूजा करई। पाखंड धर्म जीव नहिं तरई॥
योग यज्ञ तीरथ फिर आवे। पाखंडी जिव ठौर न पावे॥
धर्मदास निश्चय सुन लीजे। सत्य शब्द में वासा कीजे॥

साखी—धर्मदास सुन लीजिये, सत्य शब्द उपदेश।
बिना सत्य पहुँचे नहीं, सत्य लोक निज देश॥

चौपाई।

सत्य शब्द सत्त पुरुषहि जानो। नाम बिना सब झूठ बखानो॥
नाम छोड़ नहिं औरहि जानो। निर्गुण सगुण एकही मानो॥
निर्गुण सगुणतें नाम नियारा। जो चीन्हे सो हंस हमारा॥
जहँ देखे तहँ शब्द स्वरूपा। बोलन हारको अचरण रूपा॥
अचरज बात कहनकी नाहीं। बिन सतगुरु नहिं पावे थाहीं॥

साखी—निह अक्षर निज पावही, मिटि है सकल अँदेश।
निह अक्षर जाने बिना, घटही में परदेश॥

धर्मदास वचन—चौपाई।

धर्मदास विनती अनुसारा। अजें एक सुनिये करतारा॥
सकल भेद गुरु मोहि बताया। बिना ज्ञान भेद नहिं पाया॥

ज्ञान रूप काहे सों कहिये। ज्ञान भेद कैसे के लहिये॥
बिन सत गुरुको भेद बतावे। किहिं विधि मनकी संशय जावे॥

सद्गुरु वचन।

ज्ञान शब्द सत गुरु सों पावै। बिन सतगुरु को भेद बतावै॥
ज्ञान नाम है बीज स्वरूपा। बिना ज्ञान सो यह् को रूपा॥
ज्ञान बीज प्रथम अनुसारा। ज्ञान बीजतें सकल पसारा॥
ज्ञान बीज सों द्वीप निमोया। अभी अंकुर ज्ञान उपजाया॥
प्रथमहि तहां पुरुष को मूला। जिहिं तें भए सकल स्थूला॥
सोलह सुत जब भये उतपानी। ज्ञान बीज तें सबकी खानी॥
कुम्ह सहज धर्मबल जोरा। धर्मराय को माया तोरा॥
सुरतनाम ज्ञानी अनुसारा। धर्म लोक तें दीन्ह निकारा॥
विषम सरोवर आन बिराजा। अति अहंकार महा बल गाजा॥
भांति भांति के बाजन बाजा। रंग छत्तीसों होत अवाजा॥
पांच तत्त्व गुण तीन बनाया। तातें सकल सृष्टि निर्माया॥
जात पांच यहि तें उतपानी। ब्राह्मण क्षत्री शूद्र बखानी॥
ब्रह्मा सों जब जाति पसारा। चार वर्ण कीन्हें निर्धारा॥
मुख सों ब्राह्मण कीन्ह उचारा। भुज सों क्षत्री कीन्ह पसारा॥
जंघ सों वैश्य करी उतपानी। पांव सों शूद्र कीन्हें सहिदानी॥
चार वर्ण को सकल पसारा। वर्तमान बर्तें संसारा॥
ब्राह्मण धर्म ब्रह्मको जाना। तातें ब्राह्मण वेद बखाना॥
ब्राह्मण जानो शूद्र समाना। बिन जाने बूडे अभिमाना॥
गायत्री जप हैं दिन राती। समझत नहीं ज्ञान की पाँती॥
गायत्री जप कर अभिमाना। हमसम और कोइ नहिं आना॥
संध्या तर्पण औ षट कर्मा। वेद बिचार शाश शुचि धर्मा॥
सुमति विचार के ज्ञान बखाने। धर्म विधान कथा बहु आने॥

पिण्डापार तर्पन कहि दीन्हा। आपनमन अहंकार बड कीन्हा॥
पित्र भक्ति कीन्हीं ज्योनारा। मन में कीन्ह बहुत अहंकारा॥
हम तो पित्र भक्ति ल्वलाई। हम सम भक्त और नहिं भाई॥
हम सम नाहीं कोइ कुलीना। पित्र भक्ति बहुतक ल्वलीना॥
जेंवहिं ब्राह्मण पुण्य बड होई। कुटम समान और नहिं कोई॥
वेद शास्त्र पढ ज्ञान जो जाना। भाषा ज्ञान सुने नहिं काना॥
साध संत जो द्वारे आई। तिनकहँ देखे बहुत रिसआई॥
इन तो नष्ट कर्म बढ कीन्हा। मूँड मुड़ायके टोपी दीन्हा॥
जाति पांतिको लजा त्यागी। निस दिन फिरहिं ब्रह्म अनुरागी॥
तातें इनहिं न मानत कोई। पेट के कारण जाति बिगोई॥
जाति समान न और बिचारा। जातें ब्राह्मण जाति सम्हारा॥
यह सब मत ब्राह्मणने कीन्हा। जातें सृष्टि कर्म्म में दीन्हा॥
जिन प्रभु रचा सकल संसारा। तिनहिं बिसार बूड अहंकारा॥
प्रभुही छोड अन्तचित बासी। जन्म अनेक फिरहिं चौरासी॥
ब्राह्मण प्रभुकी भक्ति न जानी। ब्रह्म रूप नाहिन पहिचानी॥
ब्रह्मविद स्मृति पढके राता। ज्ञानहीन मिथ्या मद माता॥
ब्राह्मण तो ऐसहि चलि गयऊ। ब्रह्म धर्म काहु नहिं गहेऊ॥

साखी-ब्रह्म भेद जानें नहीं, बहुत करें अभिमान।
ताते ब्राह्मण बूडहीं, कहें कबीर बखान॥

चौपाई।

क्षत्री धर्म सुनो व्यवहारा। गो ब्राह्मण त्रियको रखवारा॥
गाय मार दैत्यन सब खाई। क्षत्री धर्म सबै नस जाई॥
ब्राह्मण से भरवाकत पानी। क्षत्री धर्म कहां रहु जानी॥
आनकी त्रिया आन घर जाई। द्रव्य आन को आन लुटाई॥
न्यायहु पै ठाढा नहिं होई। क्षत्री धर्म सहज ही खोई॥

धर्म न चले न गुरुकहँ माने। अपने मन महँ ज्ञान बखाने॥
जो गुरु मिलै तो ज्ञान लखावै। बहुरि न योनी संकट आवै॥
एक नाम को करे नबेरा। चारों वर्ण तासु के चेरा॥
एक धर्म कहँ चिन्हे प्रानी। चार वर्ण साधन कहँजानी॥
साधन की सेवा नहिं करई। बहु अभिमान हिये में धरई॥

साखी—भक्त रूप चीन्हत नहीं, चाल चले कछु आन।
क्षत्री गए अभिमान में, कहें कबीर निदान॥

चौपाई।

तातें परसराम औतारा। उन क्षत्रिनको कीन्ह सँहारा॥
बारन बूडन के भए काला। क्षत्री मार विप्र प्रतिपाला॥
सूझे लोग सब करे बखाना। सत्यभक्ति परचित नहिं आना॥
कोटिन हत्या क्षत्री करई। तिनकी लोग बडाई धरई॥
क्षत्री धर्म को होय निबाहा। तो नहिं छोडे कालको चाहा॥
धर्मराय तिन करे सँहारा। जारे बार करे जर छारा॥
क्षत्री सोइ क्षमा जिहि आवे। परजा दुखी आप दुख पावे॥
वैश्य धर्म अब वेद बखाने। विष्णु ज्ञान मन ओर न आने॥
भूखा देख दया चित धरई। वैश्य धर्म व्यवहारहि करई॥
तीरथ ब्रत करैं विधि नाना। प्रभुकी भक्ति नहिं चितआना॥
जैनी जीव करे प्रतिपाला। जैनागमगत आहि शिशाला॥
पानी छान पियें दिन राती। नहिं ज्योनारक करें निशि पाँती॥
हरिप्रतीतमन माहिं न आने। सूखे काठ सों मन चितअने॥
भक्ति रूप न्यारो धर्मदासू। जाते मिटे कालकी फांसू॥
जीव श्वास ना धर्म चलावे। नाटक चेटक ज्ञान बतावे॥
लिंग पुजावे पर २ जाई। कामिनी सों बहु प्रेम बढाई॥
कामिनि काम न चितसों छूटे। यहि विधि पर यम निशिदिन लूटे॥

जब तप माया कीन्ह खुआरा। ऐसे जीव अटक यमद्वारा ॥
पारसनाथ पूजा मन लाई। बहुत भांति सों पूजहि जाई ॥
पारसनाथ परम गुरु ज्ञानी। ताकी नहिं पावैं सहदानी ॥
ताके कर्म काट सब जाई। सतगुरु चरण रहै लवलाई ॥
जब सतगुरु की दाया होई। अक्षर भेद पाय नहिं सोई ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य बखाना। अक्षर भेद नहीं पहिचाना ॥

साखी–अक्षर भेद जानैं नहीं, करें बहुत अभिमान।
वैश्य सबै वे नष्ट हैं, सत्य वचन परमान ॥

चौपाई।

चारवर्ण में शूद्र अधीना। सेवा कर सवतैं लवलीना ॥
इनहि भक्ति सतगुरु की पाई। चार वर्ण महँ सो अधिकाई ॥
ब्राह्मण की सेवा अनुसारे। कामक्रोध औ लोभ निवारे ॥
क्षत्री सों बहु करै मिताई। नित नये प्रेमसहि अधिकाई ॥
वैश्य धर्मही विधि कर पूजे। सत्यधर्म दाया चित कीजे ॥
ऐसे शूद्रहि ब्रह्म बखाना। ब्रह्मलोक में सेवा माना ॥
कलियुग शूद्र धर्म अधिकारा। तीन धर्म को भयो संहारा ॥
धन्य शूद्र जो सेवा करई। गुरुके चरण हृदय महँ धरई ॥

साखी–यहतौ करनी शूद्रकी, सुनियो हो धर्मदास।
सतगुरु चरण जो सेवई, सत्य लोकमहँ वास ॥

चौपाई।

धर्मदास तुम शूद्र औतारा। जाते सतगुरु भक्ति चित धारा ॥
तुम्हरे पीछे ब्राह्मण तारि हैं। तुम्हरे पीछे क्षत्रि उबारि हैं ॥
चारों वर्ण मुक्ति पद लैहैं। जो तुम्हरो चरणोदक लैहैं ॥
कबहूँ न भव जल आवैं तेई। मुक्ति पदारथ पावैं जेई ॥

साखी–जो प्राणी जन्मत भये, शुद्र सकल संसार ।
कहैं कबीर जब बाचि हैं, करि हैं ब्रह्म बिचार ॥

चौपाई।

यह तुम सुनहु वर्णका लेखा। मुक्ति भेद तुम करहु विवेका ॥
तुम्हरे शिष्य शब्द जो पावैं। बिना शब्द नहिं शिष्य कहावैं ॥
शब्द भेद जो पावैं अंगा। ताको काल नहीं परसंगा ॥
बिन अक्षर सबकहँ दुख होई। येही विधि सब जांय बिगोई ॥
और सकल हैं यमको द्वारा। तिनको धर्मराय जो मारा ॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास बिन्ती कर जोरी। स्वामी सुनियो बिन्ती मोरी ॥
तुम्हीं दयाल हो अन्तर्यामी। करहु कृपा अब मोपर स्वामी ॥
तुम्हरे वचन मुक्ति हम पाई। हमरे वंश कस मुक्ति न पाई ॥

सद्गुरु वचन।

तब कबीर जो कहिबे लीन्हा। अब मैं कहौं वंशकर चीन्हा ॥
जिहि विधि मुक्ति होय रे भाई। सब अब तुम्हें कहौं समुझाई ॥
प्रथमहि वंश ज्ञान मन लावै। सहज समाधि परमपद पावै ॥
निर्मोही हो जगसों रहई। मोह प्रीति मन हर्ष न करई ॥
जो मानै तौ अति भल जाना। नहिं मानै तो समता ज्ञाना ॥
जो कोई नाम कबीरहि लेही। तिनसों कछू न अंतर देही ॥
आपा छोड नाम लव लावै। देह छोड सतलोक सिधावै ॥
जो मन में करि है अहंकारा। निश्चय बूडे सब परिवारा ॥
सत्य भक्ति सत्यहिमन लावै। आप तरे जीवन मुक्तावै ॥
जो कोइ माया आन चढाई। साधन कहँ सब देय खवाई ॥
सत्य वचन सबही सों भाखै। सत्यनाम मनमें अभिलाखै ॥
कबहुँ न क्रोध करै मन मांही। जो बोलै सो नाम की छांहीं ॥

ज्ञान विचारै शब्द सुनावै। सब जीवन कहँ लोक पठावै ॥
तुम्हरे वंश जो आगे होई। तिन के गर्व बहुत मन सोई ॥
गर्व के किये भक्ति नहिं होई। बिना भक्ति सब जाँय बिगोई ॥
सात पिढी लग सर्व भुमाना। आठे पिढी भक्ति परवाना ॥
पावै सार शब्द परवाना। तब पुनि पावै लोक ठिकाना ॥
सात बाउ जो तुम्हरे होई। तब उपरहे अभिमान समोई ॥
शब्द पेठ कै करहि धिंगाई। पंथहि मेंट अपंथ चलाई ॥
आठे वंश तबै औतारा। तिनसों होय पन्थ उजियारा ॥
बे गुरु आइ करै संसारा। तीन लोक महँ बास पसारा ॥
स्वर्ग माहि नामी जिहि आहीं। धर्मराय तिन की सुधि पाहीं ॥
तब अपना यह दूत पठाहीं। बहुतक छल करहै तिनपाहीं ॥
सार शब्द सों निकट न जाई। भागे दूत रहै पछताई ॥
वंश तुम्हार केर यह लेखा। बिना नाम नहिं होय विवेका ॥
जाकहँ अमरनाम मिलि गयऊ। सो प्राणी निहसंशय भयऊ ॥
अमरशब्द जो घट परकाशा। तहँवा है हमरो निज बासा ॥

छंद–जो अमरनाम न पाय है, सो अंध है पछताय हो।
जन्म जन्मत कष्ट बहुतक, जरा मरन समाय हो ॥
हंस वंशन हंस पंगत, कही सब दरसायके।
यह रहन रहै सो लोक पहुँचै, कहैं कबीर समझायके ॥

सोरठा–दीन्ह जक्त को राज, धर्मन तुम्हरे वंश कहँ।
कराहि जीव को काज, सत्यनाम समझायके ॥

इति श्री ग्रंथ अमरसूल चारवर्णवर्णन वंश महिमा वर्णन।

सप्तम विश्राम।

धर्मदास वचन चौपाई।

धर्मदास कहे कर जोरी। स्वामी सुनिये बिन्ती मोरी॥
जो तुम कही सोइ परवाना। गुरुके बचन सत्य हम जाना॥
हम जानी पुरुष रु गुरु मांही। तुमहिं पुरुष कुछ अन्तर नाहीं॥
हमरे दिल यह पारख आई। तुम्हरी दया हंस मुक्ताई॥
हमरे बालक तुम्हरे पाछे। तुम्हरी दया नाम मिल आछे॥

सद्गुरु वचन।

तब साहिब अस कहि समुझाई। वंश तुम्हार मुक्ति घर जाई॥
जो कोइ बालक होय तुम्हारा। तिनसों भक्ति होय उजियारा॥
पंथ माहिं जे बालक आवैं। ते तुम वंशन माथ नवावैं॥
तिन सों भक्ति मर्यादा होई। सार शब्द चलि है निज सोइ॥
नौंद केरि बालक जो होई। तिनकी मुक्ति नाम सों साइ॥
नाँद के बालक शब्दहि जाना। भवसागर तज लोक पयाना॥
बिन्द कु बाल रहें अरुझाई। मान गुमान और प्रभुताई॥
ये तो कहँ हम सम नहिं आना। सतगुरु बचन प्रतीत न ज्ञाना॥
सत्य शब्द जिहि बालक जानी। सोई पावे लोक सहिदानी॥
जेहो बालक प्रवाना पावा। तिन कहँ जानहु वंश स्वभावा॥

साखी—हमरे बालक नामके, और सकल सब झूंट।
सत्य शब्द कहँ जानहीं, काल गहे नहिं खूंट॥

चौपाई।

धर्मदास सुन शब्द पसारा। बिना शब्द नहिं उतराहि पारा॥
बिना शब्द तुम मुक्ति न पाओ। केतो ज्ञान गम्य फैलाओ॥
वंश हमार शब्द निज जाना। बिना शब्द नहिं वंशहि माना॥
धर्मदास निर्मोह हिय गेहु। वंश की चिन्ता छांड तुम देहु॥
तुम तो भयऊ शब्द समाना। यही बचन तुम चित नहिं आना॥

धर्मदास वचन।

तुमहिं कही अस वस्तु गुसाईं। मैं बूझों यह संशय जाई॥
तुम्हरी दया आज जो पाऊं। तो सब बालक लोक पठाऊँ॥

सद्गुरु वचन।

तब साहिब अस कहि समुझाई। बिना नाम नहिं लोक पठाई॥
नाँद बिन्द के बालक दोई। बिना नाम कोइ मुक्ति न होई॥
के तो पढ़े गुणे ओ गावे। बिना नाम भव भटका खावे॥
हमरे माया मोह न होई। सब संसार सत्य कर सोई॥
धर्मदास तुम बड़े हो ज्ञानी। यह संशय कस मन महँ आनी॥
गुरु को भार सबन कर होई। तुम मन में पछतावा न कोई॥
तारन तरन सत्य हम सोई। बिन सत गुरु बूड़ा सब कोई॥
सतगुरु तो सब सृष्टि उबारा। तुम बालक अब कौन है भारा॥
तुम जिन चिन्ता मन महँ करहू। सतगुरु नाम हृदय में धरहू॥
एक काल आवे जब भाई। सबै सृष्टि यह लोक सिधाई॥
जहँ लग जीव जन्तसब कहिये। तहँ लग सब सतगुरुमहँ लहिये॥
सबे भार सतगुरु के कांधे। पार लगावहिं यम नहिं बांधे॥
यमका अमल छूट जब आई। सतगुरु शरण जीव सब आई॥

साखी–कहे कबीर विचारके, सुनियो हो धर्मदास।
अमरमूल जो जान है, ताको सत परकाश॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

धर्मदास बिनवें कर जोरी। स्वामी सुनिये बिनती मोरी॥
तुम्हरे कहे जगत तर जाई। कौन मताबों लोक सिधाई॥
ज्ञान दिव्य जो घट नहिं होई। सोइ कवन बिधि लोक समोई॥
तब मैं जानों ज्ञान तुम्हारा। सकल सृष्टि को होय उबारा॥

सद्गुरु वचन।

कहे कबीर तबे समुझाई। यह संशय तुम कवन कराइ॥
तुम तो आपन हंस उबारो। जीवन शोच कहा निर्धारो॥
सतगुरु लीन्ह जगतको भारा। तेई करि हैं सृष्टि उबारा॥
आपर गुरु चितवें चितलाई। ताकर हंस बिगोय न जाई॥
जब यह सृष्टि कीन्ह परकाशा। हंस अनंत सतलोक निवासा॥
अबहूँ अनंत लोक कहँ जाई। सत्यलोक महँ जाय समाई॥
तुमको संशय कछू न भाई। आपन हंस करौ मुक्ताई॥

साखी–सतगुरु तारनहार हैं, कहैं कबीर विचार।
तुम क्या शंका करत हो, आपन करो उबार॥

धर्मदास वचन–चौपाई।

धर्मदास विनवें कर जोरी। बिनती साहिब सुनिये मोरी॥
तुम शिर आहि जक्तको भारा। सब जीवनको करो उबारा॥
हमको नहिं गुरुवाई दीजे। आपन भार आप शिर लीजे॥

सद्गुरु वचन।

तब सतगुरु अस वचन उचारा। तुम कहँ दीन्ह जक्तको भारा॥
तुम्हरे सुहर चले संसारा। अक्षर अक्षर करे पुकारा॥
तुम्हरे कहे खोज जो करई। अक्षर पाय हंस निस्तरई॥
जो नहिं मानै कहा तुम्हारा। सो चल जैहैं यम के द्वारा॥
धर्मदास बिनती अनुसारी। हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी॥
तुम तो सत्य लोक के बासी। किहिं कारण आये अविनासी॥
मृत्यु लोक में कवने काजा। धर्मराय बड पापी राजा॥
तहँवां कवन काज पगु धारा। सो मोहिं स्वामी कहो विचारा॥
तुम साहब सत पुरुष कहाए। मृत्यु लोक में काहे आए॥

सद्गुरु वचन।

तब साहिब बोले बिहसाई। अब यह ज्ञान सुनौ मन लाई॥
जब नहिं हते शुन्य बे शुन्या। तब नहिं हते पाप औ पुन्या॥
तब नहिं धरती गगन अकाशा। मेरु मन्दर नाहीं कैलासा॥
तब नहिं चन्द्र सूर्य औतारा। तब नहिं शेष सकल विस्तारा॥
तब नहिं इन्द्र कुबेर समोई। वायु वरुण तहँवां नहिं कोई॥
सात बार पन्द्रह तिथि नाहीं। आदि अंत नहिं कालकी छाहीं॥
तब नहिं ब्रह्मा विष्णु महेशा। आदि भवानी गौरि गणेशा॥
आदि पुरुष तब हते अकेला। उनके संग हता नहिं चेला॥
आप पुरुष अस कीन्हो साजा। शब्दहि माहिं लोक उपराजा॥
प्रथमहि शब्द सुतं अनुसारा। तेहि पीछे सब द्वीप सवांरा॥
तेहि पीछे पुन मूल बनाया। तेहि पीछे सोहं उपजावा॥
ता पीछे अचिन्त जो कीन्हा। ते पीछे अक्षर रच लीन्हा॥
ता पाछे कूर्महि निर्मयऊ। ताहि भार पृथ्वीको दयऊ॥
तब जल रंगसुतं इस भाखा। सत पाताल के नीचे राखा॥
जिहितें भयो जलको विस्तारा। सकल सृष्टि को भयो पसारा॥
तिहि तें तेज तत्त्व अनुसारा। जेहि गुण तें काल अवतारा॥
पांच तत्त्वतें सब निर्मावा। तीनों गुण तिहि माहिं समावा॥
तीनों गुण स्वरूपके धामा। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नामा॥
रज गुण तें ब्रह्मा उतपानी। सतगुण भाव विष्णु कर जानी॥
तमगुण शिव संहार पसारा। इनते भयो सकल संसारा॥
तेजके गुणहि काल उतपानी। तासों भये जीव दुखदानी॥
तातें पुरुष दया चित आई। हंसन कारण मोहिं पठाई॥
यातें मृत्यु लोकही आए। धर्मदास तुम दर्शन पाए॥
तुम जीवन के बंद छुडाये। सुमरन सत्य नाम समुझाये॥

तुम्हरे हाथ सृष्टि तरजाई। सार शब्द हम तुम्हें लखाई॥
या कारण संसारहि आये। नाम पान सों हंस बचाये॥
जो तुम कहो कहा अस कीन्हा। आज्ञा मान पुरुषकी लीन्हा॥
पुरुष शब्द तें जीव उबारा। तुम कहँ कवन बातकर भारा॥
यह चरित्र कछु कहा न जाई। अचरज खेल पुरुष निर्माई॥
आपहि पुरुष आपही काला। आपहि काल कीन्ह बेहाला॥
आपहि सकल सृष्टि निर्माई। आपहि न्याव करै सब काई॥
आपहि कर्म कुकर्म बखाने। आपहि आपन आप पहिचाने॥
यही ज्ञान धर्मन सुन लेहू। इत उत चित जप मत देहू॥
जिमि बालक मंदिरहि सवाँरा। आपहि भेंट आपहि हारा॥
माता सों तब रुदन कराई। मंदिर अब मम देहु बनाई॥
यही खेल विधाता कीन्हा। यही मता कोइ विरले चीन्हा॥
धर्मदास तुम सत्यहि मानो। हमरो वचन झूठ जिन जानो॥
यह चरित्र मैं तुम्हें सुनावा। लीला पुरुष केर समुझावा॥
आपहि पुरुष आपही नारी। आपहि काम विषय अधिकारी॥
आपहि सृष्टि कीन्ह उतपानी। आपहि कर्म धर्म लपटानी॥
कर्म भर्म आपहि उपजाई। आपहि स्तुति कीन्ह बडाई॥
आपहि निंदक आपहि ज्ञानी। आपहि धर्म अधर्म बखानी॥
आपहि अपनी स्तुति करई। आपहि मूर्ख चतुरता धरई॥
आप कुलीन आप अकुलीना। आप धनाढ्य आपही दीना॥
सतकुल आपहि असत बनाया। आपहि सत्य असत्य समाया॥
यह तो भेद पाय है सोई। सतगुरु मिले जाहि कहिं होई॥
यही भेद धर्मनि लेव जानी। निर्मल जल गंगा सम मानी॥
यहै ज्ञान मैं तुम्हें सुनावा। विरला जन बूझे यह भावा॥
येही मता गुप्त तुम राखहु। हमरी बात अंत जिन भाखहु॥

जो कोइ शब्दका खोजी होई। ता कहँ भेद बतावहु सोई॥
इक मन इक चित आकर होई। ता कह ज्ञान न भाषहु सोई॥
दुतिया मन जाही कर भाई। तासों राखो भेद छिपाई॥
जो गुरु सौं कोइ अन्तर राखा। धमरायक मुग्दर चाखा॥
स खी-गुरुकी महिमा अगम है, अकह कही नहिं जाय।
गुरु पद रज हियमें धरे, सत्यलोक कहँ जाय॥

चौपाई।

सत्यलोक सतगुरुको बासा। ब्रह्म इन्द्र गुरु माँहि निवासा॥
गुरुके चरण रहे लवलाई। ताकी महिमा बर्णि न जाई॥
गुरु औ शब्द एक कर जाना। ताकी त्रास धर्म भय माना॥
जो कोइ यह भेद न जानै। धमराय ता कहँ सन्मानै॥
आतम ज्ञान जाहि कहँ होई। ताकों काल न चापे कोई॥
ऐसी धरण धरो धर्मदासू। भवसागर तैं होउ उदासू॥
सकल पसारा शुन्य समाना। शुन्यहि माहीं शब्द बखाना॥
शुन्य शिखरकी डोरी पावै। देह छोड सतलोक सिधावै॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास कह सुनो गुसाई। आतम ज्ञान गम्य नहिं पाई॥
आतम ज्ञान मोहिं समुझाऊ। जासों सकल हंस मुक्ताऊँ॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास यह मता अपारा। ताकर जो मैं कहौं विचारा॥
तब साहिब दया चितलाई। आतम ज्ञान तुम्हें समुझाई॥
गम्य अगम्य जान जब पावै। आतम ज्ञान तब घटहि समावै॥
सत्य शब्द जब रहे समाई। सबही ठाम लोक है भाई॥
शत्रु मित्र एकहि कर जाना। सांच झूठ एकहि कर माना॥
सांच झूठ दोनों मिट गयऊ। दिव्य ज्ञान जाके घट भयऊ॥

आपहि गुरू आपही शिष्या । आपहि पाय आपही दिष्या ॥
आपहि आप लगावे ठेका । आपहि व्यापे अगम अलेखा ॥
आपहि स्वर्ग नर्क भर्मावे । आप ज्ञानि हिय मुक्ति समावे ॥
आपहि दाता आपहि भुका । आपहि अकुत आपही कुत्ता ॥
आपहि जन्म मरण उपजावे । आप मृत्यु है लोग रुवावे ॥
आपहि जिन्दा जग उपजावा । आपहि आशा तृष्णा लावा ॥
आपहि आप धर्म है काला । दोहू दीन ज्ञान तब चाला ॥
आपहि कुल अरु आपहि आता । आपहि सूरत आपही पांती ॥
आपहि डाल आपही बेला । आपहि गुरू आपही चेला ॥
साखी-कहैं कबीर विचारिके, आपहि सकल पसार ।
आप आप महँ रम रहे, आपहि सत्य अपार ॥

धर्मदास वचन-चौपाई ।

धर्मदास कहैं सुनो गुसाई । यहे भेद तुम मोहि सुनाई ॥
ऐसा शब्द जो मोहि सुनावा । जन्म मरणकी त्रास मिटावा ॥
एक वचन मैं बूझों सांई । सोइ शब्द तुम मोहि सुनाई ॥
तुम जो कहेउ ब्रह्म समाना । जीवरूप किमि होय अज्ञाना ॥
कबहुँ अज्ञान रूप है बर्त्तै । ज्ञानी होय ज्ञान पुनि कर्त्तै ॥
कबहुँ कहे यह ब्रह्म समाना । कहुँ राजा कहुँ भिक्षुक जाना ॥
कबहुँ जीव स्वभाव उपजावे । कबहुँ ब्रह्म हो सबहि बुझावे ॥
ब्रह्म एक काहे अस कीन्हाँ । साहिब मोहि बतावहु चीन्हाँ ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासू । यह सब भेद कहौं तुम पासू ॥

सद्गुरु वचन ।

ब्रह्म रूप है बीज समाना । पारब्रह्म अंकुर प्रमाना ॥
ताही माहिं पत्र दोय कीन्हा । एक शक्ति एक सब चीन्हा ॥
डार पात तब प्रकृति समाना । मूल वृक्ष ईश्वर सम जाना ॥

ता महँ पांच डार निर्मावा। आकाशादि तेज उपजावा ॥
प्रथमहिं वायु रूप जो कीन्हा। वायु के मध्य तेज धर दीन्हा ॥
तेज के मध्य नीर निर्माया। जैसे बीज से वृक्ष जमाया ॥
ऐसे उत्पति सब की होई। धोखा में सब गए बिगोई ॥
सतगुरु जा कहँ दाया कीन्हा। सकल भेद ते पावैं चीन्हा ॥
तत्व मांहि निहतत्त्व लखावै। हद्द मांहि अनदह कहँ पावै ॥
अनर्थ मेंटके अर्थ बतावै। लघु दीरघ पूरा समझावै ॥
पूर्णज्ञान जाही घट होई। सतगुरु भेद को पावै सोई ॥
ब्रह्म ज्ञान बिन मुक्ति न होई। कैसे संत कहावै सोई ॥
जाकी महिमा कही न जाई। ज्ञान गम्य तैं शब्दहि पाई ॥
शब्द सार निर्मोलक पावैं। सो हंसा सतलोक सिधावैं ॥

साखी--सो पहुँचे सतलोक कहँ, काल मर्म नहिं जान।
ते हंसा अवरन भये, सत्यपुरुष के ध्यान ॥

धर्मदास बचन—चौपाई।

धर्मदास कहैं सुनो गुसांई। आप अपन पर सब बिसराई ॥
सतगुरु आपै दाया कीन्हाँ। तिन पायो निज बिजको चीन्हा ॥
सूक्ष्म रूप दरश जन आवै। लघुता बिडै दीर्घ पद पावै ॥
लघुतामति प्रभु आवत कैसे। समझ परै घट कहिये तैसे ॥

सद्गुरु बचन।

कहँ कबीर सुन सुकृति बानी। यह घट समझ लेहु सहिदानी ॥
सूक्षम रूप शब्द कर आही। सतगुरु मिलहिं लखावहिं ताही ॥
सुर्त्त निर्त्त जब शब्द समाना। अहंकार मन केर बिलाना ॥
दीन भाव गति तबही आई। सब घट आतम एक समाई ॥
पूरण ज्ञान जाहि घट होई। तब यह भेद पाय है सोई ॥
ज्ञानी महिमा एही जाना। सब घट आतम एक समाना ॥
सो हंसा सतलोक सिधावे। दुबिधा भाव सबै बिसरावे ॥

छन्द–भाव दूसर तजहु धर्मनि, एक ब्रह्म विचारकै ।
इमि जीव जग्रमें देखिये, जलबिन्दु लहर समहारिकै ॥
परमातमसो आत्मा, जिमि भानु किरण प्रकाश हो ।
उलट कर जब आप चीन्है, भाव दूसर नाश हो ॥
सोरठा–जिमि तिल मध्ये तेल, कंचन औ आभूषणा ।
जिव ब्रह्म इमि मेलु, पुहुप मध्य जिमि बासना ॥

इति श्री अमर मूल आत्मज्ञान वर्णन ।

अष्टम विश्राम ।

धर्मदास वचन–चौपाई ।

अबे एक अब करों गुसाई । कृपा सिन्धु मो कहँ समुझाई ॥
जीव सीव कर भेद न जाना । कैसे ज्ञान करों परवाना ॥
जीव सीव कर भेद बताओ । यहे ज्ञान मोकहँ समझाओ ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास सुनियो चितलाई । जीव सीव मैं कहौं बुझाई ॥
पांच तत्त्व गुण तीन जो साजा । तातें सृष्टि कीन्ह उपराजा ॥
शुद्ध सतोगुण सीव कहावे । रज तम मिश्रित जीव बनावे ॥
सतरज तम तीनो सोइ पारा । पारब्रह्म सबही तें पारा ॥
पारब्रह्म अस कीन्ह समाजा । त्रिगुण रूप कर सृष्टि उपराजा ॥
उपजा सृष्टि गुण की खानी । तात जीव बुद्धि कर जानी ॥
रज तम सत एक है भाई । बिना ज्ञान भूली दुनियाँई ॥
तत्त्व ज्ञान जाके घट होई । जीव सीव कहँ जानें सोई ॥
बिना तत्त्व जाने नहिं कोई । केतो यत्न करे नर लोई ॥
भर्म भर्म भूला संसारा । आप न चीन्हैं भूल गँवारा ॥
सब अभिमान छूट जब जाई । ब्रह्म भेद कहँ पावै भाई ॥

ब्रह्म ज्ञान जाके घट होई। परम पुरुष कहँ जाने सोई॥
सत्य शब्दका मर्म जिन जाना। और सकल जग झूठ बखाना॥
सब में ब्रह्म रह्यो भर पूरी। बाहर भीतर तत्त्व हजूरी॥
दूजा काहु न देखै कोई। सत्य शब्द जाके घट होई॥
जोकों सतगुरु दाया कीन्हाँ। सो पावेगा शब्दका चीन्हा॥
अगम भेद लख पावै जोई। सतगुरु सांच और सब छोई॥
सतगुरु महिमा ही लख पाई। सो सतलोक पहुँचि है जाई॥
यहै ज्ञान धर्मन सुन लेहू। सब कहँ सत्य शब्द कह देहू॥
मिथ्या ज्ञान करहु उपदेशा। तो नहिं पावहु लोक सन्देशा॥
जो तुम काज आपना चाहू। तो जीवन कहँ सत्य लखाहू॥
जो कोइ शब्द सुनैं तुम पासा। सोई करि है लोक निवासा॥
जाके सत्य ज्ञान घट भयऊ। कर प्रीति निज घरकहँ गयऊ॥
अनमोलिक हीरा निज जाना। ताका मोल नहीं परमाना॥
सोहं सम निर्मोलक भयऊ। साहिब सेवक इक मिलगयऊ॥
कञ्चन और अभूषण जाई। ऐसे ब्रह्म जीव मिल जाई॥
दूजा भाव न एका रहिया। संशय मेट अमरपद लहिया॥
अमर मूल अमर भई काया। अमरशब्द जिन हंसन पाया॥
अमर शब्द सतगुरु सों पावै। बिन सतगुरु सब मूल गँवावै॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासू। ऐसा भेद करो परकासू॥
यहै भेद संसार सुनावहु। सब जीवनकहँ लोक लेजावहु॥
तुम कहँ दीन्ह जक्त कड़िहारी। तुम्हरी बांह उत्तर भवपारी॥
जा कहँ तुम बकसो सहिदानी। सो कड़िहार जक्त महँ जानी॥
जापर दाया तुमने कीन्हा। सोई जीव मुक्ति कहँ चीन्हाँ॥
मुक्ति भेद जब पावै प्राणी। सतगुरु ने दाया उतपानी॥
रजगुण तमगुण त्याग कराई। सतगुण धर्महिं परसैं भाई॥
सतगुण धर्म कर पावै भेदा। कहैं कबीर सोइ हंस अछेदा॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास विन्ती अनुसारी। हे सतगुरु मैं तुम बलिहारी॥
सतगुण धर्म मोहिं समुझाई। जिहि तें मन संशय बलिहारी॥

सद्गुरु वचन।

धर्मदास चित केहु बिचारी। सतगुरु धर्म कहौं निरवारी॥
प्रथमहि भोजन सब परिहरही। रजगुण भोजन मध्यम करही॥
उत्तम तंदुल आन धरावै। बार छानके तहाँ मँगावै॥
उत्तम चौका दीन्ह बहु भाँती। शब्द बोल मल कीन्हो स्वाँती॥
दुग्ध खांड घृत असन कराया। तासों कहिये सतगुण भाया॥
जितनी क्षुधा होय घट प्रानी। लेव अहार सोई अनुमानी॥
शब्द बोल परसाद चढावै। भाजी बनै तो अति मनभावै॥
भाजी नहीं तो जल भर आना। गुरुकहँ देय अधिक सुख माना॥
उग्गर लेय बहुत मन मानी। यह विध कहिये सात्विक ज्ञानी॥
तीसर भाग अभ्यागत देई। तब प्रसाद पवित्र कर लेई॥
अभ्यागत नहिं आपहु पावै। राजस धर्म नर्क कहँ जावै॥
सतगुरु धर्म छूट जब जाई। राजस तामस आन समाई॥
सतगुण धर्म करो प्रतिपाला। निश्चय पावै लोक रसाला॥
चैतन्य पुरुषमें जाय समाई। दुबिधा भाव सबै मिट जाई॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहिये। सब मिट जाय ज्ञान जो पइये॥
सब कहँ भर्म भूत करडारा। झूठी बात मेट औटारा॥
सबै ब्रह्म ना दूसर कोई। दूजा भर्म मिट गए सोई॥
वेद शास्त्र सब कहँ बखानी। बचन बिलास कहँ सब ज्ञानी॥
छउ शास्त्र मिल झगरा कीन्हा। ब्रह्म रूप काहू नहिं चीन्हा॥
चीन्हे तो जो दूसर होई। भर्म विवाद करैं सब कोई॥
एकै ब्रह्म अखंडित कहई। खंडित ज्ञानमहँ निस दिन रहई॥

ताकी बात कहत परवाना। झूठ न छोड़ै मूर्ख अज्ञाना ॥
मूरख किमि कर कहिये भाई। ब्रह्म सकलमें रहा समाई ॥
आपहि मूरख आपहि ज्ञानी। आप कथा सब कहे बखानी ॥
आपहि ऊँच नीच दिखलावै। ज्ञानी होय जगत समुझावै ॥
आपहि बूझ आपही नाहीं। आप आपमहँ सकल समाहीं ॥
आपहि सृष्टि करे बनाई। जप तप ज्ञान आप ठहराई ॥
स्वर्ग नर्क सब आपहि वासा। बाजीगर है करे तमासा ॥
आप तमासा आप भुलाया। आपहि है सब माँहि समाया ॥
आप आप को चीन्हे नाहीं। आपहि ज्ञानी आप समाहीं ॥
साखी–आप अपाको चीन्हिके, आप ब्रह्म हो जाय।
आप न चीन्हे आप कहँ, परो भर्म महँ जाय ॥

चौपाई।

अकह कहन कही नहिं जाई। आप अकथ हो कथा सुनाई ॥
आपहि मनका रूप बनाया। दूजा होके जगत दिखाया ॥
ऐसा भाव बिधाता कीन्हा। ताते कोइ न पावे चीन्हा ॥
साखी–आप आपको चीन्हिके, सब संशय मिटजाय।
कहैं कबीर निशंक भये, ब्रह्म स्वरूप समाय ॥

चौपाई।

जबही ब्रह्म रूप कहँ जाना। तब संसार झूठ कर माना ॥
कितहूँ न देखे दूजा नाऊ। सब घट ब्रह्म जो रहा समाऊ ॥
जाहि ज्ञान अनुभव परगासा। सकल कर्मको भयो तब नाशा ॥
कर्म धर्म जो दोउ मिटाये। ना कहूँ गये ना कहूँ आय ॥
जैसा रहा तैसा है सोई। बीचको भर्म मेंट सब खोई ॥
कर्म धर्म की छूटी आशा। एकै नाम करहु बिश्वासा ॥
नाम छोड़के और न जाने। तीरथ व्रत कछु मन नहिं आने ॥

आपहि तीर्थ आपही देवा। आपहि आप लगावै सेवा॥
आपहि मूरत पिंड बंधावै। आप जन्त्रि है जन्तर लावै॥
आपहि महिमा सबकी कीन्हा। आपहि निन्दक मिथ्या चीन्हा॥
साखी—आप सकल जग व्यापिया, आपहि अलख अपार।
आपहि जग उपजावही, आपहि दस औतार॥
चौपाई।
आपहि देव दैत्य संहारा। आप युद्ध कीन्ह असरारा॥
आपहि महाभार्थ करवाया। पांडोको शुभ ज्ञान सुनाया॥
आपहि कौरव पांडव भयऊ। आपहि द्रोह सबनसौं कियऊ॥
आपहि है अहंकार स्वरूपा। आपहि रय्यत आपहि भूपा॥
आपहि चाकर हो सेवा लावा। आप पंडित हो वेद पढावा॥
आपहि भला बुरा अनुसारा। आप अमीर न्याव निर्वारा॥
आप ले आवै आपहि लाई। आप अतीत आप सिवकाई॥
आपहि न्याव आपहि बादा। आपहि तीता आपहि स्वाद्‌॥
आपहि खाटा मीठा भयऊ। आपहि सर्वस्वादकर लयऊ॥
आपहि लघु दीरघ हो देखा। आपहि दूर निकट हो लेखा॥
आपहि सकलो वेद पुराना। आपहि पोथी आप बखाना॥
आपहि छऊ शास्त्र बनावा। बाद विवाद कर ज्ञान सुनावा॥
आपहि जीत आपही हारा। आपहि तरे आपही तारा॥
साखी—ऐसी महिमा ब्रह्म की, कहत कही नहिं जाय।
जो कोइ यह मति समझ है, तेही ब्रह्म समाय॥
चौपाई।
ब्रह्म अखंड खंड नहिं होई। खंडित ब्रह्म ध्यावे सब कोई॥
आप कहै है ब्रह्म अखंडा। आपहि खंडित कह सब खंडा॥
आपहि मनुष्य रूप कहावै। आपहि दूजा भाव स्वभावै॥

आप अवचन वचन नहिं आवे । आप वचन कहि सब समुझावे ॥
आप अरूप रूप नहिं कोई । आपहि सकल स्वरूप है सोइ ॥
आपहि निर्गुण रूप जो कहिये । ज्ञान गम्यतें यह मत लहिये ॥
आपहि ज्ञान मुक्तिके दाता । आपहि दाता आपहि मुक्ता ॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा । ऐसा ज्ञान घट करो प्रकाशा ॥

धर्मदास वचन ।

धर्मदास बिनती अनुसारी । हे साहिब मैं तुम बलिहारी ॥
यह मत मोकहं अगम लखावा । हृदय कमल अब आन जुडावा ॥
एक बात मैं बूझहु साई । सोइ कहौ जिहिं संशय जाई ॥
तुम सब ब्रह्म कहो समुझाना । मोरे मन निश्चय यह आवा ॥
औरन सों कह कहो गुसाँई । यह तो ज्ञान कहौं नहिं जाई ॥
मैं जाना सब तुम्हरी दाया । और जीव नहिं शब्द समाया ॥
ताकर मोह कहो उपदेशा । सो हंसन सों कहों सन्देशा ॥

सद्गुरु वचन ।

धर्मदास तुम ज्ञान सुनाऊँ । जो मानैं सो सन्त स्वभाऊ ॥
जो नहिं माना शब्द तुम्हारा । फिर पछते है बारम्बारा ॥
धर्मदास तुम आपन सोधो । तब तुम सकल सृष्टि परबोधो ॥
जो तुमरो मन थिर नहिं होई । तब लग पंथ चले नहिं कोई ॥

साखी—जब मन कहँ परबोध हु, सकल भर्म मिटजाय ।
एक नाम कहँ सेवहु, आवा गमन मिटाय ॥

चौपाई ।

धर्मदास मैं कहौं नवेरा । जासौं हंस मुक्त होय तेरा ॥
मुक्ति होय सत नामहि पावै । बहुर न योनी संकट आवै ॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास कहैं सुनो गुसाईं। मुक्ति वस्तु सो मोहि सुनाई॥
तुम तो मुक्ति भर्म कर डारा। तुमते पायँउ ज्ञान भंडारा॥
मुक्ति करों जो बंधा होई। यह तो हंस निरन्धक सोई॥
नहिं कोइ बंधा नहिं कोइ छूटा। संशयके बस सब जग लूटा॥
तुम्हरी दाया सो हम जाना। मुक्ति अमुक्ति दोउ भर्माना॥

सद्गुरु वचन।

अब तुम्हरे जीव निश्चय आई। हम जाना तुम सिख हौ भाई॥
निज मंत्रहि जानहु धर्मदासा। अब कह बूझहु सत्त विलासा॥
जो कहिये सो वचन विलासा। यह तो साखी पद परकासा॥
ग्रंथ कहेउ सब जगत प्रबोधा। जो बूझे सो पावे सोधा॥
जो बूझे ग्रंथनकी बानी। तब पावे गम निज सहिदानी॥
जब पावे शब्दहि कर लेखा। तब जानहु जैसे सब धोखा॥
धोखा योग यज्ञ तप कीन्हा। धोखा दान पुण्य सब लीन्हा॥
धोखा कर्म करे संसारा। धोखा कोटिन ज्ञान पसारा॥
धोखा पुरान सकल जहांना। धोखा शास्त्र वेद मत ठाना॥
धोखा साखी पद है भाई। धोखा कह सब ज्ञान सुनाई॥
धोखा प्रथम सांच कर माना। समझे धोखा सबै नसाना॥
जब निर्गुण तब सर्गुन माना। निर्गुन सर्गुण एक समाना॥
अगुण सगुण दोनों मिट गयऊ। आदिब्रह्म सो परिचय भयऊ॥
धर्मदास यह मति सुनि लेहू। धोखा ज्ञान चित्त मत देहू॥
प्रथमहि भक्त रूपकर ज्ञाना। ता पीछे फिर तत्त्व समाना॥
जबही तत्त्व समाना भाई। तबही जीव लोक कहँ जाई॥
जबही सत्तशब्दे महँ आवे। धोखा रूप सबै मिट जावे॥
जब तुम अपना तत्त्वहि जानो। गुरु औ शिष्य दोउ पहिचानो॥

तुमही शिष्य गुरू हो सोई । तुम गुरूही शिष्य सब कोई ॥
गुरु अरु शिष्य एककर जाना । दूजा भाव सो सबै बिलाना ॥
दूजा भाव बसत है जाके । नहीं शिष्य नाहीं गुरु ताके ॥

साखी–गुरु शिष्यकी महिमा, कहैं कबीर बिचार ।
अमरमूल जो जान हो, उतरौ भौ जल पार ॥

चौपाई ।

तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा । सो हंसन सौं कहो पुकारा ॥
शब्द सार का सुम्रन करिहै । सहजै सत्यलोक निस्तरि है ॥
सुम्रन का बल ऐसा होई । कर्म काट सब पल महँ खोई ॥
जाके कर्म काट सब डारा । दिव्य ज्ञान सहजै उजियारा ॥
जा कहँ दिव्यज्ञान परकाशा । आपहिमें सब लोक निवासा ॥
लोक अलोक शब्द है भाई । जिन जाना तिन संशय जाई ॥
तत्त्व सार सुम्रन है भाई । जातें यमकी तपन बुझाई ॥
सुम्रन सौं सब कर्म बिनाशा । सुम्रन सौं दिव्यज्ञान प्रकाशा ॥
सुम्रन सौं जैहै सतलोका । सुम्रन सौं मिट है सब धोखा ॥
धर्मन सुम्रन [illegible] लखाई । जासों हंस सबै मुक्ताई ॥
गुरु धोबी सिख कपडा जानी । सुम्रन साबुन है परवानी ॥
बस्तर को तब मैल नसाई । तैसे ज्ञान हिये दरसाई ॥
हृदे ज्ञान परकट जब होई । कर्म भर्म सब मिटगए दोई ॥
ज्ञान दीप जबही परकाशा । मोह तिमिरको भयो विनाशा ॥
सत्य पुरुष महँ जाय समाना । हंस पुरुष एकहि कर जाना ॥
दुतिया धोखा मिट तब गयऊ । एक रूप महँ एकसम एऊ ॥

धर्मदास वचन–

धर्मदास बिन्ती अनुसारी । हे सतगुरु तुम्हरी बलिहारी ॥
एक बात अब बूझौं साई । जिहितें मनकी संशय जाई ॥

तुम तो एक एक ठहरावा। एक महातम निज हम पावा ॥
सत्य लोक का कहो ठिकाना। केतक है विस्तार प्रमाना ॥
केतक ऊँच नीच है भाई। सो मोहिं साहिब देहु बताई ॥
केतक लंबा औ चकराई। सो सब लेखा कहु समुझाई ॥

सद्गुरु वचन ।

कहैं कबीर सुन सुकृत बानी। लोक कथा सब सुन बिलछानी ॥
सब विस्तार तोहि समझाऊं। लेखा नहीं अलेख लखाऊं ॥
कहिये तो लेखा हो भाई। अलेख बात मुख कही न जाई ॥
जासों कहिये अगम अपारा। ताको अंश न पावहिं पारा ॥
जहँ लेखा तहँ परलय होई। अलेख अंत न पावहि कोई ॥
एक समय ऐसो धर्मदासा। अपने चितको कहौं प्रकाशा ॥
जब हम सत्यलोक में रहिया। सो वृत्तान्त तुम्हें नहिं कहिया ॥
सत्यलोक तें आगे भयऊ। अचरज तहँवा देखत भयऊ ॥
सो अचरज अब कहो न जाई। तुम पूछो तो देहुँ बताई ॥
ऐसी बात नहिं काहु जानी। ना काहू फिर पूछी आनी ॥
धर्मदास प्राण हित मोरा। सुनहु ज्ञान यह दीप अँजोरा ॥
केतक सत्यलोक में देखा। पुरुष प्रमाण न जात बिशेखा ॥
ऐसा लोक यही व्यवहारा। ऐसहि रूप तहँ पुरुष सवारा ॥
तहवां देख सुर्त सो जाई। जिन मोहिं दीन्हा अगम लखाई ॥

साखी–अनंत कला तहँ देखऊ, सत्यलोक विस्तार ।
गिन्ती कहँ लग कीन्हिये, धर्मदास निर्धार ॥

चौपाई ।

गिन्ती कहा गिनो निज धामा। को वर्णै सो पुरुष प्रनामा ॥
गिन्ती की मर्याद मिटाई। सार शब्द सब घटन समाई ॥

साखी--जो कछु विन्ती आवही, ताको है सब नाश।
परै न गिन किम गीनिये, ऐसा शब्द प्रकाश॥

चौपाई।

बचन भेद कर कथा सुनावा। बिहितें तुम्हरा मन पतिआवा॥
ब्रह्म अखंड लेख किम जानी। खंडित कर किमि ज्ञान बखानी॥
तहँ लग धुनी सो माया जानी। जो देखा सो भर्म बखानी॥
कहिये जो तो दुतिया होई। दुतिया भर्म मेंट सब कोई॥
एक ब्रह्म दुतिया नहिं कोई। कैसे दुतिया कहिये सोई॥

साखी--नहिं उत्पत्ति नहीं प्रलय, नहिं आवै नहिं जाय।
नहिं मिन्ती अनगिनत वह, बूझ के शब्द समाय॥

चौपाई।

तब हम आगे कीन्ह पयाना। जहँ देखा तहँ हंस समाना॥
अक्षर एक हम सब में देखा। भाव अनेक कहां का लेखा॥
तब हम चले आप स्थाना। ऊर्ध्वलोक सों कीन्ह पयाना॥
मारग में अचरज एक देखा। ताकर अब मैं कहौं विवेका॥
अद्भुत लीला वर्णि न जाई। कहे सुने सो को पतिआई॥
धर्मदास मैं तुमहिं सुनाऊँ। अकथ कथा कथ ज्ञान बुझाऊँ॥
तहँवां देख कबीर कर ठोका। असंख्य कबीर कर देखा थोका॥
हम जाना की हमहि कबीरू। जहँ देखा तहँ कबीर शरीरू॥
तब अपने चित कीन्ह विचारा। एकहि रूप सकल विस्तारा॥
दूजा और आय नहिं कोई। सब घट में कबीर समोई॥

साखी--हम कबीर हम कर्ता, सकल सृष्टि धर्मदास।
दूजा और न देखिये, सत्य शब्द प्रकास॥

चौपाई।

नहीं कबीर नहीं धर्मदासा। अक्षर एक सकल घट वासा॥
सत्य पुरुष वाही सों कहिये। आदि अंत अक्षर गह रहिये॥
अक्षर मूल ओर सब डारा। शाख रमेनी पत्र पसारा॥
कथा जो कहि २ ज्ञान सुनावा। यही भांति संसार बुझावा॥
जिन बूझा तिन धोखा माना। सकल बात मिथ्याकर जाना॥

साखी-कथै कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार।
चिन्ह यह मन कहँ बूझिया, आवागवन निवार॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्म दास बिनती कर जोरी। वंदिछोर सुन बिन्ती मोरी॥
निश्चय ज्ञान मोहिं समुझायो। निश्चय सकल हम तुमसों आयो॥
सो यह बात अब बूझों सांई। सो साहिब मोहि देहु बताई॥
आवागवन कवन विधि होई। बन्दी छोर सुनावहु सोई॥

श्रीसाहिब कबीर-वचन।

तब साहिब कहवे अनुसारा। कहौं विचार तासु व्यवहारा॥
पांच तत्त्वका पुतरा बनावा। तामहँ परगट आप समावा॥
त्रिगुण आत्मा रूप बनाई। दुख सुख ताहि सबै भुगताई॥
इन महँ मन राजा कर दीन्हां। तातें जीव बुद्धि गह लीन्हां॥
आपन रूप आप नहिं चीन्हां। तातें आवा गवन कर लीन्हां॥
ना कोइ आया ना कोइ गया। मनके मते जन्मते भया॥
मनही ज्ञानी मूरख कहिये। मनही ब्रह्मरूप यह लहिये॥
मनका है यह सकल पसारा। मनही पाप पुण्य बिस्तारा॥
मनही मोह काम उपजावै। मनही आशा तृष्णा लावै॥

मनही देहरा देव पसारा। मनही पूजै पूजन द्वारा॥
मनही नार पुरुष कर जाना। मनहि पुत्र मन बाप बखाना॥
मनहीं राजा रय्यत कहिये। मनहि दिवान मनहि मिलरहिये॥

साखी–कहैं कबीर यह मनहि है, मनका सकल पसार।
मन चीन्है ते अमर हैं, गह निहअक्षर सार॥

चौपाई।

कहँलग कहिये मनकी बानी। झूठ पसारा मनहिं बखानी॥
एक ब्रह्म सब घटहि समाई। नहिं कहुँ आवै नहिं कहुँ जाई॥
मनकी वृत्ति यह कथा सुनावा। मनही वेद पुरान पढावा॥
मनहि शास्त्र शुभ घडी बिचारी। उत्तम मध्यम कह निर्वारी॥
मनही भाव वृत सब करई। मनके भाव योग तप धरई॥
मनके भाव यज्ञ जो कीन्हा। मनके भाव ज्ञान जो दीन्हा॥
मनके भाव प्रतिग्रह लेई। मनके भाव तुला सब देइ॥
यह सब है मन केर खुदाई। सतगुरु मिल सब कर्म छुटाई॥

साखी–यह सब मनकी दौर है, मनका सकल पसार।
ज्ञान चीन्ह मन अचल है, कहैं कबीर विचार॥

चौपाई।

मनकी कथा कहेउ प्रसंगा। अचरज बात कहेउ सब रंगा॥
यह मत तो हम तुमसों कहिया। ज्ञानी होय कोइ कोई लहिया॥
इक अक्षरका यह है लेखा। ज्ञानी होँ सोइ शब्द विवेका॥
धर्मदास अक्षर दृढ जानो। दूजा भाव न मनहूँ आनो॥
दूजा कहिये मनका भाऊ। तातें सत्य ज्ञान समझाऊँ॥
झूठा है मनका पेसारा। तातें चित्त महँ शब्द सँभारा॥

साखी-कहे कबीर विचारके, सुनियो संत सुजान।
हम तुम कहँ निज भाखऊ, सत्य शब्द परवान ॥

चौपाई।

घर्मदास सुन सत्य सँदेशा। सत्य शब्द कहियो उपदेशा॥
जाके पास होय दिव्य ज्ञाना। सोई पावहि पद निर्वाना॥

छंद-निर्वान पद कहँ पाय है सोइ ज्ञानदीपक उर धरै।
अज्ञान तम को नाश कर परकाश आतमको करै॥
जिमि भानु है आकाशमें प्रतिबिम्ब सब घट देखिये।
ब्रह्म जीव है भेद इतनो धर्मदास विवेकिये॥

सोरठा-सत्य नाम परवान, कहैं कबीर विचारके।
पहुँचै लोक ठिकान, यहै भेद जो पावही॥
इति श्रीअमरमूल, जीव सीव भेद लोक वर्णन।

नवम विश्राम।

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मदास उठ पांयन परई। सतगुरु सौं विनती अनुसरई॥
सत्यलोक मोहे बरन सुनावा। बचन तुम्हारे सब लखि पावा॥
तुम तो कहे अबचन है साँई। चरचा शब्द कहो किमि होई॥
जब तुम शब्द जो कहि समुझावा। बचन भावमें सब जो आवा॥
अबचन बात बचन किमि कहिये। सो मोहे स्वामी भेद बतइये॥
अथमहि तो तुम शब्द सुनावा। ता पीछे फिर ज्ञान दृढावा॥
जो तुम कहे बचन अनलेखा। हम सेवक किमि करे विवेका॥
एक बचन कहिये समुझाई। जिहिते चित्त अन्त नहिं जाई॥

साहिब कबीर–वचन।

तब कबीर अस कहिवे लीन्हा। ज्ञान भेद सकल कहि दीन्हा॥
धर्मदास मैं कहौं विचारी। जिहितें निबहै सब संसारी॥
प्रथमहि शिष्य होय जो आई। ता कहँ पान देहु तुम भाई॥
जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना। ता कहँ कहहु शब्द प्रवाना॥
शब्द माँहि जब निश्चय आवै। ता कहँ ज्ञान अगाध सुनावै॥
अनुभवका जब करै विचारा। सो तो तीन लोकतें न्यारा॥
अनुभव ज्ञान प्रकट जब होई। आतम राम चीन्है है सोई॥
शब्द निःशब्द आप कहलावा। आपहि बोल अबोल सुनावा॥
आपहि चुप जो बोलत रहिया। आप वचन अवचन जो कहिया॥
आप गुरू है शब्द सुनावे। आप शिष्य है सुर्त लगावे॥
आपहि गुरू शिष्य जो होई। देखे सुने आपही सोई॥

साखी–देखे सुने कहै सबै, आपहि रूप अपार।
आप न चीन्हे आप कहँ, भूला सब संसार॥

चौपाई।

यह मति तो हम तुम कहँ दीन्हा। बिरला शिष्य कोइ पावै चीन्हा॥
धर्मदास तुम कहो सन्देशा। जो जस दीख ताहि उपदेशा॥
बालक सम जाकर है ज्ञाना। तासों कहहू वचन प्रवाना॥
जा कहँ सूक्ष्म ज्ञान है भाई। ता कहँ सुमन देहु लखाई॥
ज्ञान गम्य जा कहँ पुनि होई। सार शब्द जा कहँ कहु सोई॥
जा कहँ दिव्य ज्ञान परवेशा। ता कहँ तत्त्व ज्ञान उपदेशा॥
अनुभव ज्ञान जाहि कहँ होई। दूसर कितहु न देखे सोई॥
उग्र ज्ञान जा कहँ परकाशा। आतमराम घट माँहि निवासा॥
आतमरामकी परचय होई। आपहि आतमराम है सोई॥

दूजा कितहूँ न देखहि भाई । आप रहा सब ठाँव समाई ॥
यही भाँति तुम जग समुझावो । जो समझै तिहिं लोक पठावो ॥
आत्मारामकी परिचय पाई । ताके निकट लोक है भाई ॥
हम तो एक लोक कहँ दीन्हा । अनंतलोक घट नांही चीन्हा ॥
अनंतलोककी परिचय पावै । कहँ कबीर भव बहुरि न आवै ॥
एक बचन तोहि देउँ लखाई । जिहि तैं तुमरी संशय जाई ॥
एक समय सत लोकहि रहिया । सत्यपुरुष इक मोसन कहिया ॥
हे कबीर हम तुम हैं एका । दूजा भाव मति राखहु ठेका ॥
सुर्त स्वरूप तुम्हारा भाई । शब्द रूप हमही निर्माई ॥
सुरत शब्द निकट इक भाखा । पर्दा अंतर कछू न राखा ॥
ब्रह्म स्वरूप मोहिं कहँ जानो । केवल ब्रह्म स्वरूप बखानो ॥
शब्द मोहिं यक सुर्त उतपानी । सो मोकों तुम निश्चय जानी ॥
धर्मराय है मेरो अंशा । सो निज जानहु हमरो वंशा ॥
आदि भवानी रूप बनावा । तामें निश्चय जाय समावा ॥
तीनों गुण हैं मोर प्रकाशा । पांच तत्त्व महँ मोर निवासा ॥
जीवन रूप कियो हम भाई । आतम रूप जु हमहिं बनाई ॥
पांच तत्त्व परकट हम कीन्हा । निश्चय वास तहां हम लीन्हा ॥
आपहि सों सब खलक बनाई । आपहि आप जो रहे समाई ॥
आपहि मनुष्य रूप अवतारा । राम कृष्ण परकट संसारा ॥
यह सब रूप मोर है सांचा । इनहि चीन्ह सो यमसों बाचा ॥
यम माहीं है मोरो रूपा । सब पृथ्वी महँ मोर स्वरूपा ॥
चौरासी लख योनी कीन्हा । आप वास योनी महँ लीन्हा ॥
हम से दूसर नाहिन कोई । भर्म माँहि सब रहे समोई ॥
भर्म रूप हम सृष्टि बनाई । भर्म माँहि सब रहे समाई ॥
सुर नर मुनिगण यक्ष अपारा । राची सृष्टि भर्म व्यवहारा ॥

इनते भर्म न छूटत भाई। ब्रह्मादिक से रहे भुलाई ॥
हे कबीर हम तुमसौं कही। निश्चय जान बात यह सही ॥
पुरुष बात यह मोहि सुनाई। सो मैं तुम कहँ आन जनाई ॥
धर्मदास निरखहु निज नैना। निश्चय जान परख मम बैना ॥

धर्मदास वचन।

धर्मदास बिनवे कर जोरी। साहिब सुनहुँ बिनती मोरी ॥
यहे कथा तुम मोकहँ भाखी। दूसर और कवन है साखी ॥

सद्गुरु वचन।

सब कबीर बोले अस बाणी। सत्य बात यह सुनियो ज्ञानी ॥
यहे कथा हम त्रेता भाखी। मधुकर विप्र ताहिकर साखी ॥

साखी—यहे कथा त्रेता कही, मधुकर सों समुझाय।
और न दूजा जानही, धर्मदास सुन भाय ॥

धर्मदास वचन—चौपाई।

अमृत कथा मोहि समुझावा। हृदयकमल मम आन जुड़ावा ॥
सतगुरु सम्रथ की बलिजाऊँ। बहुर न भव सागर महँ आऊँ ॥
स्तुति कवन एक मुख करऊँ। सतगुरु चरण हृदय महँ धरऊँ ॥
गद २ गिरा नयन भर द्रयऊ। अहो नाथ मोहि बड सुख भयऊ ॥
बहुत अनंद भयउ मन माहीं। अवरज सुख कछु कही न जाहीं ॥
बचन सुधा रवि किरण समूहा। मम संशय यामिनि गत जूहा ॥
बहुत अनंद भयउ हियमाहीं। ब्रह्म अनंद कहो नहिं जाहीं ॥
बिनती एक सुनो गुरु ज्ञानी। तुम महिमा किमि कहौं बखानी ॥
जो अब दाया करो गुसाईं। सोई शब्द महँ रहों समाई ॥

श्रीसाहिब कबीर वचन।

कहे कबीर सुनो धर्मदासू। हम तुम एक शब्द महँ बासू ॥
दूसर भाव नहीं है आज्ञा। सोई कबीर सोई धर्मदासा ॥

एक रूप धर्मदास कबीरा। लखचौरासी एक शरीरा॥
काया बीर नाम है धीरू। सब घट रहे समाय कबीरू॥
जो बोलत सो शब्दप्रवाना। शब्दहि रूप कबीर समाना॥
शब्दहि रूप कबीर कहाई। शब्द रूप है रहे समाई॥
निजही शब्दकबीर है सारा। जाका है निज सकल पसारा॥
एके रूप शब्द पुन एका। एक भाव दुतिया नहिं बेका॥
एकहि हम तुम एक शरीरा। एक शब्द है मति के धीरा॥
एको रूप एकै अनुहारी। एकहि पुरुष सकलविस्तारी॥

साखी-रंग रूप सब एक है, एकहि सकल पसार।
एक ज्ञान सोई एक है, दूजा यह संसार॥

बिनती एक करो कर जोरी। सतगुरु संशय मेंटहु मोरी॥
जो तुम ऐसा ज्ञान सुनावा। हृदय कमल मम आन जुड़ावा॥
इक संशय उपजी मन माहीं। चार कर्म देखे जिव पाहीं॥
कर्म ज्ञान कहे सब कोई। कर्म करे सो निश्चय होई॥
कर्म सकल जीवन कहँ फांसा। कर्म संग यह भयो बिनाशा॥
कर्म करे तैसा फल पाई। ऊँच नीच योनिन भरमाई॥
काल पाय कोई ज्ञान बिचारा। काल पाय सब कर्म सँवारा॥
ऐसी कथा सुनी सब ठाईं। सोइ कहौं जिहि संशय जाई॥
तुम तो एक २ ठहरावा। दूसर भाव कवन उपजावा॥
सब घट ब्रह्म एक ठहराई। तो किमि कष्ट सहै जिव आई॥
जो तुम कहौ सब ब्रह्म समाना। कोई जीव होहिं अज्ञाना॥
जो कहिये सब एकहि आई। तो कस ज्ञान कथा अब गाई॥
एक ब्रह्म तो सबघट चीन्हा। गुरू शिष्य काहे कहँ कीन्हा॥
यह तो आप २ ठहराई। काहे कहँ तुम पंथ चलाई॥

जो अस कहो सकल प्रभु कीन्हा। ज्ञान गम्य कैसे के चीन्हा ॥
काहे कहँ तुम कथा सुनाई। काहे कहँ अब ज्ञान बताई ॥
काहे कहँ गुरु शिष्य कहावा। कर्म अंक काहे फल पावा ॥
को बूझे अरु कवन बुझावै। कवन गुरूको शिष्य कहावै ॥

साखी—यह संशय गुरु मेटहू, विनती सुनो हमार।
बलिहारी तुव नाम की, क्षणमें लिन्ह उबार ॥

साहिब कबीर वचन—चौपाई।

तब सतगुरु बोले इक बानी। अचरज बात लेहु पहिचानी ॥
कर्म रेख तुम पूछेउ आई। सो सब कथा तुम्हें समझाई ॥
मात पिता मिल कर्म कमावा। ताही कर्म देह बनि आवा ॥
ब्रह्मलोक सों जब जिव आवा। कर्म रहित निर्मल पद पावा ॥
जलनिधि वारी मेघ लै आई। बूंद बून्द निर्मल बर्षाई ॥
भूमि परी डाबर पहिचानी। इनि जीवहि माया लपटानी ॥
पवन लगे निर्मलता होई। माया मलिन दूर सब खोई ॥
जलकहँ पवन जीव कहँ ज्ञाना। ज्ञान भयतें कर्म नसाना ॥
कर्मनसे निर्मल पद पावा। ज्योंका त्यों तब आप कहावा ॥
आप चीन्ह भव जलतैं न्यारा। तन छूटे पहुँचे दरबारा ॥
जब जन्मा तब कर्मका लेखा। तन छूटा तब आवन देखा ॥
जन्म मरनतें थिर नहिं कीन्हीं। ऐसी विधि है कर्मको चीन्हीं ॥
जाहि समय जैसी बनि आई। ताहि समय तैसा है आई ॥
तिहितैं कर्म काल ठहराना। तब शाखन लिख कीन्ह बखाना ॥
जीव रूप ताहिसों जानी। आपको आप नहीं पहिचानी ॥
तातै ज्ञान सुनायउ आई। जीव बुद्धि जातैं मिट जाई ॥
गुरू शिष्य यह कारण आई। कर्म अंक लिखनी मिट जाई ॥
तातें पंथ चलाएउ आई। यह कारण हम ज्ञान सुनाई ॥

एही तें है सकल पसारा। याहीतें है सब व्यवहारा॥
आतम राम चीन्ह जब पावा। सकल पसारा मेंट बहावा॥
आतम परमातम मिल जाई। जैसे सरिता सिन्धु समाई॥
जब लग यह चीन्हें नहिं आतम। तब लग नहिं मिलि है परमातम॥
शब्द बिना आतम दृग हीना। सतगुरु संघ यही कहि दीना॥
शब्द नेत्र जबहीं लख पावा। सतगुरु मिल निज घरहि सिधावा॥
ऐसी मति जाहि घट होई। हंस हिरम्मर कहिये सोई॥
तिनकहँ जानहु हमहिं स्वभाऊ। इमहुं नहीं कछु ताहि दुराऊ॥
धर्मदास यह बूझहु ज्ञाना। जातें हंस होय निर्वाना॥
जा कहँ आतम ज्ञान प्रकाशा। वही कबीर वही धर्मदासा॥
आतम राम देख जिन पाई। आप आप सब ठांव समाई॥
जहँ देखा तहँ आप समाना। ब्रह्म छोड दूसर नहिं आना॥
सोई २ सत्य कबीरा। शब्द मंत्र है प्रगट शरीरा॥
यही ग्रंथ मैं मंत्र सुनावा। चारहि वेदका मूल बतावा॥
षटे शास्त्र मिलकरहिं बिचारा। प्रगट ब्रह्म यह ज्ञान विचारा॥

साखी–ऐसा ज्ञान जब ऊपजे, सुनहु हो धर्मदास।
परकट ब्रह्म स्वरूप है, एक नाम बिश्वास॥

चौपाई।

यहै ग्रंथ सब सुनै सुनावै। निश्चय प्रेम भक्ति को पावै॥
जो ज्ञानी है बूझे ज्ञाना। निश्चय है है ब्रह्म समाना॥
चार पदारथ को फल होई। निश्चय जानहु यह मत सोई॥
ऐसो ज्ञान अखंडित भारी। अमरमूल मैं कहेउँ बिचारी॥

साखी–अमर मूल यह ग्रंथ है, सकल ज्ञान भंडार।
सुनत अमर पद पावहीं, कहँ कबीर विचार॥

धर्मदास वचन-चौपाई।

धर्मन हिय में अतिही हर्षेउ। गद्गद गिरा नयन जल वर्षेउ ॥
सतगुरु चरण गहे हिय माहीं। भानुउदय पंकज विकसाहीं ॥
मोह निशा व्याकुल अति भारी। तामहँ सोवत नाहिं सम्हारी ॥
गुरु दयाल मोहिं लीन्ह जगाई। आवा गमन रहित घर पाई ॥
अब सन्देह रहा कछु नाहीं। शब्द तुम्हार बसा हियमाहीं ॥
स्तुति कहा तुम्हारी कीजे। अमृत कथा श्रवण भर पीजे ॥

छंद-तुम आदि ब्रह्म अपार सतगुरु, जीवकारण आयऊ।
काट फंदा सकल यमके, अमरलोक पठाएऊ ॥
भवसिंधु कठिन कराल भारी, पार काहू ना लयो।
तुम कृपा गोपद जान सोई, पार धर्मनि कर दयो ॥

सोरठा-दीन्हों मोहि लखाय, परमातम आतम सकल।
अमर मूल समुझाय, अमर वस्तु गुरु दीन्हेऊ ॥

इति श्रीग्रन्थ अमरमूलधर्मदास सम्बोधन विज्ञात मतवर्णन।
दशम विश्राम सम्पूर्ण।
इति अमरमूल ग्रन्थ समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.

संक्षिप्त सूची-कबीरपंथी-ग्रन्थ।

नाम.	की. रु. आ.
कबीर साहबका बीजक-(रीवाँनरेश महाराज विश्वनाथसिंहजीकृत पाखण्डखण्डनी टीका सहित (ग्लेज ...	४-०
तथा रफ कागज	३-१२
कबीरबीजक-(कबीर साहबका मुख्य ग्रन्थ) कबीरपंथी महात्मा पूरनसाहेब-कबीरसाहेबके समान होगये उन्हीं महात्माकी टीकासमेत-यह ग्रन्थ नूतन छपा है कबीरपंथियोंको अवश्य संग्रह करना चाहिये.	५-०
कबीरमनशूर-अर्थात् स्वसम्वेदार्थप्रकाश सिद्ध श्री १०८ वंशप्रतापी पं० श्रीउग्रनामसाहबकी आज्ञानुसार उर्दूका हिन्दी अनुवाद।	१५-०
कबीरसागर-संपूर्ण ११ जिल्दोंमें इसमें ४१ ग्रंथ हैं पृष्ठसंख्या २०५६ है पुस्तक देखने योग्य है। इसके अलग अलग भी भाग हैं।	१६-०
कबीरोपासनापद्धति-(कबीर पंथियोंको सदाचार और नित्य कर्म सिखानेवाली पुस्तक इसके समान दूसरी नहीं है) इसमें सुमिरण, स्तोत्र, अर्जनामा, आरती संज्ञा, चितावनी, ज्ञानगूदडी, दयासागर आदि सैकडों विषय हैं। अन्तमें पूर्णसाहिबकृत विनयके शब्द हैं	१-०
कबीर कसौटी-(कबीर साहिबका जीवनचरित्र)	०-४
कबीरैकोत्तरशतक सटीक-इसमें "कबीर" नामकी महिमाको महादेव पार्वतीके संवादमें १०१ श्लोक दिये हैं जिसपर अखयरामने घनाक्षरी छन्दमें भाषाटीका की है	०-६

नाम.	कि. रु. आ.
कबीरउपदेश-इसको श्रीमहन्त दीनादास साहबकी आज्ञानुसार ज्ञानप्रकाश व सुखनिधान ग्रन्थोंमेंसे उत्तमोत्तम ६१ शब्दियोंका संग्रह कर बेगमसराय निवासी ठाकुरदासजीने बनाया है	०-४
निर्णयसार (कबीरपन्थी)-वेदके सिद्धान्तसे जीवहीको भ्रमरहित होनेपर परब्रह्म रूप बतायाहै वह सदा निर्लेप नित्य सुखी है। अज्ञानी देहहीको सब कुछ मानतेहैं उनके भ्रम, गुरुशिष्योंके प्रश्नोत्तरोंसे इसमें दूर कियेगये हैं.	०-६
पञ्चग्रन्थी-कबीरसाहबके मूल बीजकग्रन्थकी टीकारूप इसमें-पञ्चकोश, समष्टिसार, मानुषविचार, गुरुबोध, द्वारशब्द, टकसार, रमैनी, निर्णयसार, वैराग्यशतक, कबीरपरिचयकी साखी, ग्यारहशब्द, एकईस प्रश्न, पारखविचार आदि विषय हैं	२-८
आत्मउपदेश-अर्थात् संत कबीर साहिबका ककहरा कबीरके जीवन चरित्र सहित	०-३

पुस्तके मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयकी परमोपयोगी स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें।

यह विषय आज ३० । ४० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस यन्त्रालयकी छपीहुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे-वैदिक वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहते हैं। शुद्धता स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बँधाई देशभरमें विख्यात है। इतनी उत्तमता होनेपरभी दाम बहुतही सस्ते रक्खे गये हैं और कमीशनभी पृथक् काट दिया जाता है। ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभव है संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मंगानेमें त्रुटि न करना चाहिये. ऐसा उत्तम, सस्ता और माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है. 'सूचीपत्र' मंगा देखो।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.